थॉमस पेन के राजनैतिक निबंध

(Common Sense and other Political Writings by *Thomas Paine*)

सपादक

नेल्सन एफ एडकिन्स

अनुवादक

भागीरथ रामदेव दीक्षित

पर्ल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई—१

मूल्य ५० नये पैसे

अनुक्रमणिका

———●———

परिचय

टॉम पेन मानव-समाज के हितो की रक्षा करने वाली उन महान आत्माओं में से एक था, जो अपने युग में अत्यधिक आलोक भर दिया करती हैं। अतएव उसके राजनैतिक और सामाजिक चिन्तनो का अध्ययन करते समय उसे मुख्यत: मानव-प्रेमी मानना चाहिए। मनुष्य के दु खो को देखकर पेन के हृदय मे स्वभावत जीवन-भर विद्रोहात्मक भावनाएँ उत्पन्न होती रही। राज्य के कार्यों मे अत्यधिक रुचि रखनेवाले अपने सक्रिय मस्तिष्क के सहारे पेन ने सायास इस बात का पता लगाया कि विश्व में अन्याय और अत्याचार के कारण क्या हैं। पेन अपने जीवन मे कभी भी निराशावादी नही रहा; सर्वाधिक दु खपूर्ण घडियो मे भी वह अपने साथियो का कम-से-कम कुछ विश्वास अवश्य करता था। उसका अडिग विश्वास था कि यदि जनता को अच्छे प्रशासन के सिद्धान्तो से अवगत करा दिया जाय तो निश्चय ही उसके दु खो को दूर किया जा सकता है। उसकी आँखो के सम्मुख यह स्पष्ट था कि "हम जिन्हे सभ्य देश कहते हैं, वहाँ के अधिकाश मानव निर्धनता और दयनीयता की स्थिति मे हैं।" पेन ने मानवीय दयनीयता के इस क्षोभकारक चित्र के लिए अत्याचारी शासन को दोषी माना। वह पूछता है कि क्या कारण है कि निर्धनो के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति को कदाचित् ही प्राण-दण्ड दिया जाता है। जहाँ तक 'सरकार' का प्रश्न है, पेन की मान्यता थी कि राजतत्र (Monarchy) मानवतावाद के विरुद्ध है; क्योकि राजतत्र सर्वदा कुछ सीमित व्यक्तियो के हितो के लिए कार्य करता है। सरकार और मानव-जाति की उन्नति में घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह पेन का निश्चित मत था जिसकी अत्यन्त स्पष्ट घोषणा उसके इस कथन में है कि "किसी राष्ट्र की सच्ची महानता मानवता के सिद्धान्तो पर आधारित है।" पेन के कथनानुसार इन सिद्धान्तो को किस प्रकार उचित रूप से व्यवहार में लाया जा सकता है, उसके जीवन और कृतियो के आधार पर इसी विषय का सक्षिप्त अध्ययन इस 'परिचय' का लक्ष्य है।

यदि हम यह कहे कि पेन जैसे महान मानवतावादी व्यक्ति के गुण जन्म-जात अधिक रहे होंगे तो हमें उन अगणित तत्त्वो पर विचार करने से चूकना भी नहीं

सम्बन्ध सत्रहवी शती के दो महान विचारकों, लाके और न्यूटन के साथ स्थापित करना अधिक उपयुक्त होगा जिनके सिद्धान्तो का अठारहवीं शती में गहरा प्रभाव पडा था। उसने कही कही न्यूटन की जो विशेष चर्चा की है उसका उसकी राजनीति के सिद्धान्तो से सर्वाधिक सम्बन्ध है। मनुष्य के अधिकार, भाग दो में पेन लिखता है—"राजतत्र की मूखता को न देखना विवेक की उपेक्षा करना अथवा बुद्धि को पतित करना है। प्रकृति का हर कार्य सुव्यवस्थित होता है। किन्तु यह एक ऐसी शासन-पद्धति है, जो प्रकृति के विपरीत कार्य करती है।"

'प्रकृति अपने सभी कार्यों में व्यवस्था रखती है,' इसे दृढतापूर्वक व्यक्त करके वास्तव में पेन ने न्यूटन की सृष्टि-सम्बन्धी व्यवस्था की ओर सकेत किया है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि राजतत्र न्यूटन की सृष्टि-विषयक व्यवस्था का विरोध किस प्रकार करता है। पेन का यह कथन भी अधिक काल्पनिक प्रतीत होता है कि 'विपत्ति का सम्पूर्ण भार उसी स्थिति में दूर किया जा सकता है जब कि केवल इन सिद्धान्तो के आधार पर सभ्यता की ऐसी व्यवस्था की जाय कि वह 'चरखी की पद्धति (System of Pulleys) के अनुसार कार्य कर सके।' यद्यपि हम सृष्टि-विषयक न्यूटन के सिद्धान्तो के प्रति पेन की कृतज्ञता को स्वीकार कर सकते हैं, तथापि राजनीति और सरकार के विषय में उसके द्वारा प्रयुक्त तर्क की इस प्रणाली से हम पूर्णतया सहमत नही हो पाते।

पेन अपनी रचनाओ में जॉन लॉके का अधिक उल्लेख नही करता है। जीवन के अन्तिम दिनो में उसने उस अग्रेज विचारक की जो अत्यल्प चर्चाएँ की हैं, वे जेम्स चीथम के इस कथन का विरोध करती हैं कि 'सामान्य बुद्धि' तथा 'मनुष्य के अधिकार' लिखते समय पेन लॉके से बहुत अधिक प्रभावित था।

उसका कथन है—"मैंने लॉके अथवा अन्य किसी व्यक्ति से विचार ग्रहण नही किये। सन् १७७३ ई. के लगभग इग्लैड में जॉन बुल के मूर्खतापूर्ण कथन ने, सर्वप्रथम, मेरे मस्तिष्क को सरकारी पद्धतियो की ओर आकृष्ट किया। प्रशिया के तत्कालीन सम्राट् महान फ्रेडरिक के विषय में जॉन बुल ने लिखा कि 'सम्राट् के पद के लिए वे उपयुक्त व्यक्ति हैं; क्योकि उनमें

का जन्म ऐसे माँ-बाप के घर में हुआ था, जो बडी कठिनाइयों के साथ उसे स्कूल भेज सके। तेरह वर्ष की अवस्था में उसने अपने पिता के साथ काम करना प्रारम्भ किया। कई वर्षों तक अपनी परिस्थिति को सुधारने के लिए उसे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। २५ वर्ष की अवस्था में वह आबकारी-विभाग का एक कर्मचारी नियुक्त हुआ, किन्तु तीन वर्षो बाद ही इस पद से हटा दिये जाने पर उसने केनसिंगटन के एक स्कूल में अध्यापन-कार्य किया। सन् १७६८ ई० में पुन वह आबकारी-विभाग में पदाधिकारी नियुक्त हुआ। वहाँ उसने यह अनुभव किया कि कर्मचारियो को उचित वेतन नही दिया जाता। अत कई सहकारी पदाधिकारियो द्वारा उत्तेजित किए जाने पर उसने तत्कालीन ससद् के नाम 'आबकारी-विभाग के अधिकारियो की दशा' नामक पत्रक प्रकाशित किया, जिसमें उसने उस समय के आबकारी विभाग मे काम करने वाले व्यक्तियो की हीन दशा का वर्णन किया है। इस पत्रक में व्यक्त विचारो से पेन के *मानवतावादी दृष्टिकोण का पूर्वबोध होता है।*

पेन ने ससद् के सदस्यो को व्यक्तिगत रूप से इस विषय में प्रभावित करना चाहा। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने उस पर अशान्ति पैदा करने का आरोप लगाकर सन् १७७४ ई० में उसे नौकरी से अलग कर दिया। तत्पश्चात् पेन पर और भी कई कठिनाइयाँ आयी और वह अत्यत निर्धन बन गया। फ्रैंकलिन उन दिनो लदन में थे। जब उन्हे पेन की दशा का ज्ञान हुआ तो उन्होंने उसकी बडी सहायता की। उसी वर्ष के अन्त में सैंतीस वर्षीय पेन अमेरिका पहुँचा, जहाँ उसके जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ।

जैसा कि हमने देखा, पेन मानवता को शाश्वत रूप से पीडित करनेवाली बुराइयो को भली-भाँति जान चुका था। अमेरिका में प्राप्त अनुभवो द्वारा अपने जीवन-विषयक मानवतावादी तथा प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तो को तीव्र बनाने का कार्य पेन के लिए शेष था। यदि हम अमेरिका में लिखी गयी पेन की प्राथमिक रचना को पढें और तत्पश्चात् उसकी अनुगामी कृतियो का क्रमिक अध्ययन कर लो हम उनके चिन्तन को बल प्रदान करनेवाली प्रमुख प्रेरणा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

कदाचित् पूर्वकथित 'मित्र-सघ' के सिद्धान्तों ने पेन के अमेरिका पहुँचने के शीघ्र ही बाद हबशियो की दासता सम्बन्धी बुराइयो की ओर उसके ध्यान को

सकता है, और अमेरिका के वाणिज्य को सुरक्षा प्रदान की जा सकती है।' सन् १७८२-८३ ई. में उसने रोड द्वीप (Rhode Island) के नाम छः पत्र लिखे, जो 'प्रॉविडेन्स गज़ट' मे प्रकाशित किये गये थे। उन पत्रों में उसने इस बात पर बल दिया कि हमारी शक्ति 'सघ' में ही अवस्थित है। इस प्रयत्न में, पेन नागरिको का सम्बन्ध सर्वप्रथम उनके राज्यों से और तत्पश्चात् सयुक्त राज्य से सिद्ध करने का प्रयत्न करता है।

'अमेरिका के प्रत्येक निवासी की नागरिकता दो प्रकार की है। वह जिस राज्य में रहता है उसका नागरिक है, और सयुक्त राज्य का भी। यदि वह औचित्य और सचाई के साथ इस द्वितीय नागरिकता का निर्वाह नही करता तो अनिवार्यत. वह अपनी प्रथम नागरिकता को नष्ट कर देगा। प्रथम प्रकार की नागरिकता के द्वारा वह अपने पड़ोसियो के बीच सुरक्षित रहता है और दूसरी के द्वारा ससार के बीच।'

सन् १७७५ ई. और १७८७ ई. के बीच, जबकि उसने इंगलैण्ड के लिए प्रस्थान किया, पेन ने अमेरिकी राजनीति में जो भाग लिया उसकी सक्षिप्त चर्चा भी इस स्थल पर वाछनीय है। 'प्रतिरक्षात्मक युद्ध-विषयक विचार' और 'मित्र-संघ' के सदस्यो के नाम लिखे गये पत्र' (जो 'सामान्य-बुद्धि' के नवीन सस्करण में जोड दिये गये हैं) में पेन ने उन सदस्यो की शान्ति-स्थापना सम्बन्धी प्रवृत्ति की निंदा की, क्योंकि वह उस प्रवृत्ति को युद्ध-निर्वाह के लिए बाधा समझता था। सन् १७७६ई. में 'पेंसिल्वेनिया' के सविधान के समर्थन में लिखे गये पेन के कई निबन्ध अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। औपनिवेशिक राजनीति में सक्रिय भाग लेने के नाते सन् १७७३ ई में काग्रेस के द्वारा वह वैदेशिक कार्यों के लिए नियुक्त समिति का सचिव चुना गया। पेन व्यवहार-कुशल नही था। वह तुरत फ्रास-स्थित अमेरिकी कमिश्नर 'सिलसडीने' (Silas Deane) के साथ भयकर वाद-विवाद में उलझ गया। पेन का कहना था कि सिलसडीने ने फ्रास की सरकार के साथ व्यवहार करने में आर्थिक लाभ किया है। निस्सदेह पेन ने निष्कपट भाव से काग्रेस को उस आर्थिक क्षति से बचाना चाहा जो, उसके मत में, सिलसडीने के कारण हुई थी। किन्तु, वैदेशिक-समिति के सचिव के रूप में उसे जिन लेखों को गुप्त रखना चाहिए था उनमें से भी उसने, भावातिरेक के कारण, सूचनाएँ प्रकाशित कर दीं। सन् १७७८-७९ ई. के

स्थिरता प्रदान कर सकती है।" स्पष्टत , पेन धनियो का साथ दे रहा था। उसकी इस आर्थिक नीति के विषय में सार्वजनिक मत विगड गया ; कुछ लोगो का कहना था कि पेन सामान्य मनुष्य के हित को भूल गया। हमारी वर्तमान चर्चा के लिए यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है। अस्तु, इतना कहना पर्याप्त है कि पेन ने इस विषय में, तत्कालीन आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति करनी चाही। उसने स्पष्ट रूप से यह समझा कि केवल सोने और चाँदी के प्रामाणिक मूल्य को बनाये रखकर ही इकाई के रूप मे नवीन राष्ट्र के उद्भव और विकास सभव हैं। यदि इसीको सामान्यजन के हित का परित्याग कहा जा सके, तो बात दूसरी है।

क्रान्ति की समाप्ति के साथ पेन ने अमेरिका मे अपना काम समाप्त समझा। अपने 'क्राइसिस' पत्रक के उपसहार में, पेन ने सकेत किया था कि 'इसके बाद चाहे मैं किसी भी देश मे रहूँ।' हेनरी डी. थोरो (Henry D. Thoro) ने वाल्डन (welden) में प्राप्त अपने अनुभव को जीवन का केवल एक अभ्यास माना जिसने उसे कई अन्य जीवन जीने के लिए छोड दिया। उसी प्रकार पेन ने इस समय स्वतत्रता के रक्षार्थ अन्य देशो में जाना चाहा। अमेरिका में उसके प्रथम प्रवास का परीक्षण मानवता-विषयक उसकी पूर्व मान्यताओ की निरन्तर बढती हुई सीमाओ को प्रकट करता है। क्रान्ति की समाप्ति के एक वर्ष पूर्व उसने एबे रेयनल (Abbe Raynal) के नाम पत्र प्रकाशित किया, जो विश्वबधुत्व तथा सहयोग—जिस पर पेन ने विचार करना आरम्भ कर दिया था—की ओर कुछ सकेत प्रस्तुत करता है। एबे ने अमेरिका की क्रान्ति के विषय मे जो कुछ लिखा था, उसकी त्रुटियो को दूर करने का स्पष्ट प्रयत्न करते हुए पेन ने विश्व को वाणिज्य और विज्ञान द्वारा एकता के सूत्र में पिरोने की ओर सकेत किया।

क्रान्ति के बाद अपने अवकाश-काल में पेन कतिपय आविष्कारो की ओर प्रवृत्त हुआ जिनमें सर्वाधिक महत्त्व का था—स्तम्भविहीन लौह पुल। उस पुल के एक नमूने को अपने सन्दूक में रखकर पेन सन् १७८७ ई० के अप्रैल मास में फ्रास के लिए चल पडा। यह सत्य है कि विदेश में उस पुल ने लोगो का ध्यान आकर्षित किया, किन्तु हमारे अध्ययन के लिए यह तथ्य

था। फ्रांस की क्रान्ति के आरम्भ होने पर एडमण्डबर्क ने सन् १७९० ई० में फ्रांस के क्रान्ति विषयक विचार' प्रकाशित किया। इसके पूर्व पेन बर्क का मित्र था; परन्तु ब्रिटिश राजतंत्र के बचाव के साथ बर्क ने फ्रांस की क्रान्ति के ऊपर जो प्रहार किया, उसने पेन को क्षुब्ध कर दिया और सन् १७९१-९२ ई० में पेन ने 'मनुष्य के अधिकार' को दो भागों में प्रकाशित किया। बर्क के प्रति इस पाण्डित्यपूर्ण विरोध ने पेन के सभी राजनैतिक और सामाजिक चिन्तनों को एक ग्रंथ में, उसकी किसी अन्य कृति की अपेक्षा कदाचित् अधिक परिमाण में, व्यक्त किया। 'मनुष्य के अधिकार' मुख्यतः फ्रांस और इंग्लैण्ड की राजनीति से सम्बन्धित है। तो भी, आज का पाठक उसे पढ़ते समय यह अनुभव करता है कि यदि पेन को अमेरिका में राजनैतिक अनुभव के बारह वर्षों—जब कि उसने क्रान्ति के समय और उसके उपरान्त प्रस्तुत होनेवाले कतिपय आर्थिक एवं राजनैतिक संकटों में बड़ी लगन के साथ काम किया था—का बल न प्राप्त होता तो कदाचित् वह विश्व को ऐसी कृति न दे पाता। वास्तव में वह निर्माण-गत प्रजातंत्र के अन्तर्गत रह चुका था। अमेरिका-निवासी के रूप में राजतंत्र के बंधन में बद्ध इंग्लैण्ड के प्रति अपने विचारों को अधिकार व्यक्त करना वह अपना विशेषाधिकार समझता था। पेन के अनुसार राजनैतिक विश्व में अमेरिका ही एक ऐसा देश था, जहाँ सार्वजनिक सुधार के सिद्धान्त उत्पन्न हो सकते थे। अमेरिका प्रजातंत्र का गौरवपूर्ण जन्मस्थल है। उसने वाशिंगटन जैसे महान व्यक्ति को उत्पन्न किया। वास्तव में 'मनुष्य के अधिकार' का प्रथम भाग संयुक्त राज्य अमेरिका के अध्यक्ष को समर्पित किया गया। उस समर्पण में पेन ने लिखा था—'आपके अनुकरणीय उदात्त गुणों ने स्वतंत्रता के जिन सिद्धान्तों की स्थापना में अत्यधिक महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया, उनके समर्थन में मैं आपको यह लघु कृति समर्पित करता हूँ।'

कम-से-कम पेन के लिए अमेरिकी-क्रान्ति ने परंपरा के वातावरण को साफ करके विश्व में राजनैतिक सुधार के लिए मूल आधार की स्थापना की। पेन का विश्वास था कि राजतंत्र और कुलीनतन्त्र की सभी पद्धतियाँ निर्बल और अरक्षित आधार पर स्थित हैं। संक्षेप में, वे प्रकृति के सिद्धान्त का विरोध

करती हैं। मनुष्य के अधिकार प्राकृतिक अधिकार हैं। इसे समझने के लिए हमें पेन द्वारा स्थापित 'प्राकृतिक-अधिकार' और 'नागरिक-अधिकार' के अन्तर की परीक्षा करनी चाहिए। उसका कहना है कि प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व से है। सभी बौद्धिक अधिकार, मस्तिष्क के अधिकार तथा व्यक्तिगत रूप से अपने आनन्द एव सुविधा के लिए कार्य करने के वे सभी अधिकार, जो दूसरो के प्राकृतिक अधिकार के लिए बाधक नही हैं—इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। दूसरी ओर नागरिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो मनुष्य को समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त होते हैं। निर्विवाद रूप से प्रत्येक व्यक्ति को कुछ प्राकृतिक अधिकार प्राप्त हैं, उन्हें क्रियान्वित करने में अथवा उन्हें सफल बनाने में प्राय. वह व्यक्ति के रूप में शक्तिहीन रहता है। इसलिए दैनिक जीवन को सभव बनाने के लिए वह अन्य व्यक्तियो का साथ करता है। पेन के अनुसार प्रत्येक नागरिक अधिकार किसी प्राकृतिक अधिकार से उत्पन्न होता है। प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को अपने बचाव और अपनी सुरक्षा को सभव बनाने का पूर्णअधिकार है; परन्तु यदि वह अकेला है तो उसे इस बात का बोध हो सकता है कि प्रकृति और अधिकार के अनुसार जो कुछ उसका है उसे वह प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए सामाजिक समझौते की, जो सामूहिक प्रयत्न द्वारा जीवन-निर्वाह को सम्भव बना सके, आवश्यकता उत्पन्न होती है। फिर भी, पेन की मान्यता थी कि इस सामाजिक समझौते को मनुष्य के वैयक्तिक अधिकारो पर आक्रमण नहीं करना चाहिए; क्योकि 'समाज के सभी महान नियम प्रकृति के नियम हैं।'

पेन की मान्यता है कि किसी भी राष्ट्र को उस सुख से वचित नही रखना चाहिए, जो एक 'राष्ट्रीय सघ' से प्राप्त होता है। 'जिस क्षण औपचारिक सरकार को समाप्त कर दिया जाता है, उसी क्षण समाज कार्य करना आरम्भ कर देता है। एक सामान्य सगठन उत्पन्न होता है, और सामान्य हितो के कारण सार्वजनिक सुरक्षा बनी रहती है।'

पेन आनुवशिक राजतन्त्र (Hereditary Monarchy) को अत्यंत घृणित इसलिए मानता था कि इस व्यवस्था के अनुसार शारीरिक और मानसिक रूप से निर्बल, एक बच्चा या एक वयस्क गद्दी का अधिकारी होता है। पेन ने लिखा है कि प्रेसीडेण्ट वाशिंगटन उन सभी व्यक्तियो को लज्जित करने में समर्थ है, जिन्हे

राजा कहा जाता है। अमेरिका ने वाशिंगटन को सर्व-सम्मति से अपना प्रसीडेण्ट चुना। अमेरिका का यह कार्य हालैण्ड अथवा जर्मनी से किसी व्यक्ति को बुला कर उसे राजा बनाने के कार्य से कितना भिन्न है। इस प्रकार प्रतिनिधि-प्रजातन्त्र (Representative Democracy) की स्थापना पर विचार करते समय पेन ने अपने निजी निरीक्षणो और अनुभवों का अत्यधिक सहारा लिया है। पेन की मान्यता है कि राजतन्त्र के निर्वाह में जो धन व्यय होता रहा है उसका उपयोग निर्धनो को आर्थिक सहायता प्रदान करने में हो सकता है। उसने एक स्थल पर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण से लिखा है कि "प्रतिष्ठा की सर्वाधिक सजग चेतना के साथ सार्वजनिक धन को छूना चाहिए। न केवल धनियों ने, अपितु निर्धनो ने अपने कठोर परिश्रम के बल पर इसका उत्पादन किया है। अभाव और दुःख की कटुता का भी इस सार्वजनिक धन के उत्पादन मे योग होता है। गलियो में या सड़कों पर घूमने वाला अथवा सिटनेवाला ऐसा एक भी भिक्षुक नही है, जिसका अंश उस राशि में नही है।" निर्धनो को आर्थिक सहायता देने और उनको अपेक्षाकृत अधिक सुखी बनाने के उद्देश्य से पेन ने कई विशिष्ट प्रस्ताव भी प्रस्तुत किये हैं।

'मनुष्य के अधिकार' के दोनो भागो का अधिक प्रचार हुआ। उन्हें इंग्लैंड की स्वतन्त्रता को बढाने के उद्देश्य से स्थापित संस्थाओ मे विशेष प्रसिद्धि मिली। किन्तु कुछ अव्यवस्थित लोगो, अनुमानत. सरकार द्वारा उत्तेजित व्यक्तियो, ने 'टॉम पेन' की प्रतिमा जलायी और उसके विरुद्ध अन्य प्रदर्शन किये। जून सन् १७९२ ई० मे पेन पर सरकार द्वारा राजविद्रोह का प्राविधिक अभियोग लगाया गया और मुकदमे की सुनवाई के लिए एक तिथि निश्चित की गयी। कहा जाता है कि अंग्रेज कवि विलियम ब्लेक (William Blake) ने उसे बता दिया था कि शीघ्र ही उसे गिरफ्तार किया जायगा। पेन तुरन्त फ्रास भाग गया और वहाँ से अपने अभियोग के विरुद्ध तीक्ष्ण भर्त्सनापूर्ण लेख लिखने लगा। यदि 'मनुष्य के अधिकार' में राजविद्रोह के बीज थे तो इस लेख में प्रत्यक्ष राजविद्रोह था।

इसी लेख मे 'पेन' ने इस आशय का भी एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव किया है कि एक राष्ट्रीय परिषद् (National Convention) बुलायी जाय जो, उचित रूप से, राष्ट्र के अधिकांश भाग के मत और बुद्धि को एकत्र कर सकेगी।

ब्रिटिश राजतन्त्र पर किये गये पेन के प्रहारो की चर्चा को समाप्त करते समय इतना समझ लेना आवश्यक है कि जन-मानस पर परपरा का जो प्रभाव पड़ता है, उसे समझने में 'पेन' असफल रहा। वही नही, वरन् सामान्यत. प्राकृतिक अधिकारो मे विश्वास रखनेवाले सभी सैद्धान्तिक इस बात को समझने में असफल रहते हैं। पेन प्राय: ऐसा महसूस करता था कि यदि मनुष्यो को राजनैतिक सिद्धातो से पूर्ण अवगत करा दिया जाय तो वे तत्क्षण सरकार के अत्याचारात्मक स्वरूपो को अस्वीकार कर देंगे। अठारहवी शती के कतिपय पूर्णतावादी (Perfectionist) व्यक्तियो के विपरीत—जो धैर्यपूर्वक एक सहस्र वर्षों के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे—'पेन' शीघ्र ही फल-प्राप्ति का इच्छुक था और पूर्ण आशान्वित था।

पेन ने, जिसके राजनैतिक सिद्धात ने अपने अत्यधिक सार्वजनिक मूल्यो का प्रदर्शन किया था, अपने युग की चिन्तनगत असगति के साथ दृढतापूर्वक कहा कि 'मै इस बात मे विश्वास नही करता हूँ कि यूरोप के किसी भी जाग्रत देश में राजतन्त्रीय तथा कुलीनतन्त्रीय सरकार आज से सात वर्षो तक अस्तित्व में रह सकती है।'

सन् १७८७ ई० में पेन के फ्रांस जाने के समय से लेकर सन् १७९३ ई० में लक्ज़म्बर्ग के कारागार मे बन्द होने तक का समय उत्साह और आनन्द के क्षणो मे बीता। इस अवधि मे उसने फ्रास और इग्लैण्ड के बीच कई यात्राएँ की। फ्रास मे पेन को जेफर्सन (Jefferson) से, जो कि सन् १७८९ ई० तक प्रधान मन्त्री रहे, मिलने का पर्याप्त अवसर मिला। इसके शीघ्र ही बाद, 'पेन' ने फ्रास की राज्य-क्राति के प्रत्यक्ष दर्शन किये। लेफाइएत (Leffayette) के साथ उसकी मित्रता थी; लेफाइएत ने कारागार की चाबी वाशिंगटन को भेट करने के लिए पेन को दी। कहा जाता है कि 'अधिकारो की घोषणा' की रूपरेखा तैयार करने में उसने पर्याप्त सहयोग प्रदान किया था। पेन ने, जो कि भावी इतिहास के मध्य मे अपने को रखना सदैव पसन्द करता रहा, फ्रास की क्राति मे त्यक्ष भाग लिया। सन् १७९१ ई० की जून मे लूइस के भागने के प्रयत्न के उपरात 'पेन' ने, राजा के 'गद्दीत्याग' की निन्दा करते हुए जनता को निरन्तर विद्रोह की प्रेरणा देने के निमित्त 'एक जनतन्त्रीय घोषणा-पत्र', जो कागज के पन्ने के एक ओर ही लिखा गया था—प्रकाशित किया, जिसमें उसने

राजतन्त्र की समाप्ति के लिए अपना परिचित तर्क प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि 'पेन' और डुशेटलेट (Duchatelet) ने पेरिस के मकानों की दीवारों पर इस 'घोषणा-पत्र' को चिपकाया और सभा-भवन के द्वार पर भी उसकी एक प्रति लटका दी।

इंग्लैंड से बच निकलने के बाद, पेन के फ्रान्स की क्रान्ति में भाग लेने का दूसरा अध्याय सन् १७९२ ई. में आरम्भ होता है। उपर्युक्त वर्ष के आरम्भ में सभा ने 'पेन' को नागरिक की पदवी प्रदान की और बाद मे वह राष्ट्रीय-परिषद् के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ। अपने भाषण में पेन ने अपने प्रति प्रदर्शित किये गये इस सम्मान को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया और अपने सह नागरिकों को बताया कि 'एक क्रान्ति (अमेरिका की क्रान्ति) के आरम्भ और पूर्ण स्थापना में अपने कर्तव्य को पूरा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।' किन्तु, पेन को फ्रांस की भाषा और इससे भी बढ़कर फ्रांस के मस्तिष्क का अल्प ज्ञान था; अतः वहाँ की राजनीति को समझने में वह असफल रहा और परिणाम-स्वरूप संकट में पड़ गया। पेन का जीवन-चरित्र लिखनेवालों में से कुछ का विश्वास है कि पेन का सम्बन्ध मुख्यतः जिराण्डिस्टों (फ्रांस की क्रान्ति के समय नम्र जनतन्त्रीय दल के सदस्यों) से था और ये 'जिराण्डिस्ट' पेन का उपयोग अपने राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के साधन स्वरूप करते थे। पेन ने जिन परिवर्तन-विरोधी कार्यों का समर्थन किया उनमें से राजा को प्राणदान देने का समर्थन एक था। राबेस्पियर (Robespierre) और जेकोबिन्स (Jacobins) के अधिकार प्राप्त करने पर पेन का प्रभाव कम हो गया। अब वह राष्ट्रीय-परिषद् की बैठकों में प्रायः कम जाता था। सन् १७९ ई. के अन्त में वह गिरफ्तार कर लिया गया। अमेरिका के मन्त्री गवर्नर मोरिस (Governer Morris) ने, जो कि पेन के कट्टर शत्रुओं में से थे, पेन को कारागार से छुड़ाने का कदाचित् कोई प्रयत्न नहीं किया। यद्यपि उन्होंने अमेरिकी सरकार को यह विश्वास दिलाया कि उन्होंने इस दिशा में कुछ उठा नहीं रखा। दस महीनों तक पेन कारागार में बन्द रहा और इस बीच में वह भयानक रोग से पीड़ित भी था। अन्त में नये राजदूत जेम्स मनरो (James Manaroe) ने, अत्यधिक राजनैतिक प्रयत्नों के बाद उसे कारागार से छुड़ाया।

अठारह महीनों तक मनरो के मकान में पेन स्वास्थ्य-लाभ करता रहा।

सन् १७६५ ई. में उसने फ्रास की राष्ट्रीय परिषद् में, जो इस समय सविधान पर विचार कर रही थी, अपना स्थान प्राप्त करने का पुनः प्रयत्न किया। इस विचार से कि उपर्युक्त परिषद् में उसके नाम पर उसका भाषण पढ़ा जाय, पेन ने 'सरकार के प्राथमिक सिद्धान्तो की चर्चा' (Dissertation on first Principles of Government) नामक पुस्तिका सन् १७६५ ई. में प्रकाशित की और उसे सदस्यो में वितरित किया। इस कृति में पेन के राजनैतिक विचारो का सारतत्त्व उपलब्ध होता है। 'मनुष्य के अधिकार' नामक लेख में व्यक्त अपने सरकार-विषयक कुछ प्रधान विचारो के सार-स्वरूप, इस कृति मे, पेन ने अधिकार-साम्य के सिद्धात पर जोर दिया है। उसने लिखा कि 'प्रतिनिधि के लिए मत देने का अधिकार वह मौलिक अधिकार है, जिसके द्वारा अन्य अधिकारो की सुरक्षा होती है।' सन् १७६५ ई० मे पेन परिषद् के सम्मुख खड़ा हुआ और एक सचीव (Secretary) ने फ्रेंच भाषा में उसका भाषण पढकर सुनाया। पेन ने अपने इस भाषण द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि मतदान पर प्रस्तावित (साम्पत्तिक) बन्धन 'अधिकार-घोषणा' का उल्लघन करते हैं। किन्तु किसीने न तो पेन का समर्थन किया और न सविधान की अन्तिम स्वीकृति के समय उसके प्रस्ताव पर ध्यान ही दिया। उसके बाद पेन कभी भी परिषद् की बैठको मे सम्मिलित नही हुआ।

पेन जितने दिनो तक 'मनरो' के मकान में रहा, उतने समय तक उसका जीवन दु खी रहा होगा। एक तो वह शारीरिक रोग से पीडित था, दूसरी ओर वह फ्रास मे जनतन्त्र की अपर्याप्त क्रियाशीलता के कारण स्पष्ट रूप से निराश भी था। किन्तु जब पेन ने यह सोचा कि फ्रास के कुछ आवेशग्रस्त व्यक्तियो के कारण ही वह लक्सेम्बर्ग के कारागार में बन्द नही रहा, वरन् सकट के समय उसने जिसकी सहायता की थी और अपने प्रकाशित लेखो द्वारा जिसकी अत्यधिक प्रशसा की थी, अमेरिका के उस व्यक्ति—जार्ज वाशिगटन—की क्षुद्रता और कर्तव्य-विमुखता के कारण वह इतने दिनो तक जेल में बन्द रहा, तो उसकी निराशा विरक्ति और कटुता में बदल गयी। सन् १७९६ ई० में पेन ने जॉर्ज वाशिगटन के नाम जो पत्र लिखा, उसे अमेरिका के निवासी प्रभावित हुए विना कदाचित् नही पढ़ सकते। फिर भी, यदि हम लोग इस विषय पर निष्पक्ष रूप से विचार करें, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि पेन के कारावास

की व्यक्तिगत जांच न करके वाशिंगटन ने संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेसिडेंट के कर्तव्यों की उपेक्षा की। गवर्नर मोरिस ने, जो कि अमेरिका के फ्रांस विषयक कार्यों के मत्री थे, वाशिंगटन को यह बताया कि पेन को कारागार से मुक्त करने के लिए सब सम्भव प्रयत्न किये गये थे, किन्तु इससे वाशिंगटन दोष-मुक्त नहीं हो सकते थे; क्योंकि वे मोरिस और पेन की शत्रुता को जानते थे। फिर भी पेन का पत्र, जो कि अस्वास्थ्य के द्वारा उत्तेजित कटुता की मानसिक स्थिति में लिखा गया था, स्पष्ट रूप से अविवेकपूर्ण था। जिस समय यह पत्र लिखा गया था, उस समय तक अमेरिका दो तीव्र विरोधी राजनैतिक दलो में, संघीय (federalists) और जनतन्त्रीय (Republicans) दलों में विभक्त था। पेन ने दूसरे दल (जनतन्त्रीय दल) से सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक समझा। यद्यपि पेन संघीय संविधान (Federal Constitution) से कुछ विषयों में असहमत था। फिर भी, जैसा कि उसने अपने उस पत्र के आरम्भ में लिखा है: राज्यो का 'संघ-सरकार' में सम्मिलित होने का समर्थन करने के नाते वह संघवादियो में से था। इसलिए उसे 'संघविरोधी' नहीं कहा जा सकता था, और वह तथा वाशिंगटन, आवश्यक रूप से राजनीति के क्षेत्र में एक दूसरे के नितान्त विरोधी नहीं थे। पेन ने अपने पत्र में लिखा है—"मैंने अमेरिका की क्रान्ति में जो भाग लिया वह सर्वविदित है।" पेन का यह कथन नितान्त सत्य है। विदेशों में राजनैतिक लेख लिखते समय उसने अमेरिका को सदैव मस्तिष्क में रखा। उसने अमेरिका की कभी उपेक्षा नहीं की।

कदाचित् अठारहवी शती के अन्त में 'पेन' ने यह समझ लिया था कि इंग्लैण्ड और फ्रांस की राजनैतिक प्रगति में उसे किसी प्रकार का योग प्रदान नहीं करना है। इसलिए उसने अमेरिका के बारे में पुनः सोचना आरम्भ किया। जिस समय जेफर्सन (Jefferson) का नाम प्रेसिडेन्ट के पद के लिए प्रस्तावित था, उस समय पेन ने राष्ट्रीय जहाज द्वारा अमेरिका जाने की अपनी इच्छा उन्हें पत्र लिख कर प्रकट की। निर्वाचित हो जाने के पश्चात् जेफर्सन ने अपने एक मैत्रीपूर्ण पत्र में लिखा कि आप 'मेरी लैण्ड' नामक युद्ध-पोत द्वारा सुरक्षित ढंग से अमेरिका आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने पेन को यह भी लिखा कि मैं आशा करता हूँ कि जब आप यहाँ आयेंगे तो

आप देश के विचारो एव भावो को पूर्व समय के अनुकूल पायेंगे। मेरी हार्दिक कामना है कि अपने उपयोगी प्रयत्नो को जारी रखने के लिए और पुरस्कार-स्वरूप राष्ट्र की कृतज्ञता प्राप्त करने के लिए आप अधिक दिनो तक जीवित रहें।

सन् १८०१ ई० मे पेन ने जेफर्सन के प्रेसिडेन्ट चुने जाने पर धन्यवाद देते हुए लिखा कि 'मेरी लैण्ड' द्वारा अमेरिका आना मुझे इस समय अस्वीकार है। दूसरे वर्ष के सितम्बर महीने में पेन बैल्टिमोर (Baltimore) पहुँच गया। किन्तु वाशिगटन के नाम लिखे गये अपने कुख्यात पत्र तथा 'बौद्धिक-युग' नामक लेख में विधिक धर्म पर प्रहार करने के कारण अमेरिका मे पेन को अधिकाश रूप से उपेक्षा ही प्राप्त हो सकी। पेन को यह भी ज्ञात हुआ कि जेफर्सन भी उसे अपने से दूर रख रहे हैं। किन्तु राबर्ट फल्टन (Robert fulton) और जान वेस्ली (John Wesley), जिनके घर में पेन पाँच महीनो तक रहा, उसके सच्चे मित्र सिद्ध हुए।

अमेरिका लौट आने पर राजनैतिक दल से सम्बद्ध होने तथा उसके सिद्धान्तो के लिए सघर्ष करने के अतिरिक्त पेन के लिए अन्य कोई मार्ग नही था। जेफर्सन के शासन-काल में पेन की राजनैतिक कृतियो में से 'संयुक्त राज्य के नागरिकों के प्रति' (To the citizens of United states) लिखे गये आठ सार्वजनिक पत्रो का सग्रह सर्वाधिक महत्त्व का था। अपने अन्य कतिपय निवन्धों और पत्रो के द्वारा पेन ने जनतत्रीय उद्देश्य के समर्थन का प्रयत्न किया। उनमें से 'अपने सिद्धान्तो को प्रकट करने के लिए संघवादियो को चुनौती' एक है। लक्सेमबर्ग में अपने कारावास और वाशिंगटन की निन्दा करने के बाद से, पेन की स्थिति पूर्ववत् नही रही। जो सदैव स्वाधीनता का उपयोग करने के लिए उत्पन्न हुआ था, उसका अन्त अत्यन्त अभाग्यपूर्ण रहा। अपनी वृद्धावस्था में वह एक देशहीन व्यक्ति के रूप मे रह गया। जेफर्सन की दृढ मैत्री भी अपने देशवासियो की दृष्टि मे 'पेन को उठा न सकी।' चिडचिडापन और विरक्ति में पेन ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

फिर भी 'टॉम पेन' का यह अतिम मूल्याकन नही होना चाहिए। हमें यह आशा है कि हमने यह प्रदर्शित किया है कि प्रतिभा के साथ अनिवार्यत. रहनेवाली मानवीय दुर्बलताओ के बावजूद भी पेन उन महान आत्माओ में से एक था, जो अपने युग मे अत्यधिक आलोक भर दिया करती हैं।

सामान्य बुद्धि

कुछ लेखकों ने 'समाज' और 'सरकार' को इस प्रकार मिला दिया है कि उनमें कोई भेद ही नही रह गया। किन्तु न केवल वे दोनो एक दूसरे से भिन्न हैं, वरन् उनके उद्गम भी भिन्न-भिन्न हैं। हमारी आवश्यकताएँ समाज को जन्म देती हैं, और सरकार को उत्पन्न करते हैं हमारे दुराचार। समाज हम में स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करके हमारे आनन्द की वृद्धि करता है; और सरकार हमारे दुराचारो का निग्रह करके उस आनन्द-वृद्धि में योग देती है। समाज पारस्परिक मेल-जोल को प्रोत्साहन देता है, और सरकार भेद उत्पन्न करती है। 'समाज' संरक्षक है और 'सरकार' दण्ड-विधायक।

समाज अपनी प्रत्येक दशा में एक वरदान है। किन्तु सरकार अपनी सर्वोत्तम स्थिति में भी, एक आवश्यक बुराई मात्र है। अपनी निकृष्टतम दशा में तो वह असह्य है; क्योंकि यदि हम किसी सरकार के द्वारा अथवा उसके अंतर्गत उन आपत्तियो को झेलें, जिन्हे किसी सरकार-रहित देश में झेलने की आशा करते हैं, तो यह सोच कर हमारा दुःख और बढ़ जाता है कि हम स्वयं अपने दुःख का साधन प्रस्तुत करते हैं। वस्त्र के समान सरकार भी निर्दोषता के लुप्त हो जाने का प्रमाण-चिन्ह है। स्वर्गिक कुंजो के भग्नावशेषों पर प्रासादो का निर्माण होता है। यदि हमारे अन्तःकरण की प्रेरणाएँ स्पष्ट तथा समान होती, और अबाधित रूप से उनका पालन होता तो मानव को अन्य किसी नियम-विधायक की आवश्यकता न पड़ती। किन्तु ऐसा न होने पर, अपनी सम्पत्ति के कुछ अंश को देकर शेष की रक्षा का साधन जुटाना वह आवश्यक समझता है, और ऐसा वह उसी विवेक की प्रेरणा से करता है, जो उसे प्रत्येक दशा में, दो बुराइयों में से कम को स्वीकार कर लेने का परामर्श देता है। इस प्रकार, सरकार का लक्ष्य सुरक्षा होने के नाते, यह निर्विवाद है कि सरकार का वही स्वरूप श्रेष्ठतम है जिसके द्वारा कम से कम व्यय पर अधिक से अधिक लाभ के साथ सुरक्षा की सर्वाधिक सम्भावना प्रतीत हो।

सरकार के स्वरूप एवं लक्ष्य को समझने के लिए कल्पना कीजिए कि एक मानव-समूह पृथ्वी के किसी निर्जन प्रान्त में, शेष संसार से दूर, अपनी

बस्ती स्थापित करता है। ये मनुष्य ससार अथवा किसी प्रान्त के आदिवासियों के समान होगे। प्राकृतिक स्वातन्त्र्य की इस दशा में, सबसे पहले, वे समाज के विषय में सोचेंगे। सहस्रो प्रवृत्तियाँ उन्हे उस दिशा की ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन देगी। मनुष्य की शक्ति उसकी आवश्यकताओ के समक्ष इतनी न्यून पडती है तथा उसका मस्तिष्क निरन्तर एकान्तवास के लिए इतना अनुपयुक्त है कि शीघ्र ही वह अन्य मनुष्य की सहायता प्राप्त करने के लिए विवश हो जाता है; और वह दूसरा व्यक्ति भी इसी प्रकार की सहायता का इच्छुक होता है। चार या पाँच व्यक्ति सम्मिलित रूप से उस निर्जन प्रदेश में एक साधारण घर बनाने में समर्थ होंगे; किन्तु एक व्यक्ति अपने जीवन-पर्यंत परिश्रम करने पर भी कुछ पूरा नही कर सकेगा। मकान बनाने की लकडी काट लेने पर भी वह अकेला उसे उठाकर नही ले जा सकता, और यदि किसी प्रकार उठाकर ले भी जाय, तो अकेला घर नही बना सकता। इसी बीच में भूख के कारण वह काम से विरत होने को विवश होगा, और इसी प्रकार उसकी प्रत्येक आवश्यकता उसे भिन्न दिशा में ले जाना चाहेगी। रोग या आपत्तिमात्र से उसकी मृत्यु हो सकती है। इन दोनो में से चाहे एक भी प्राणघातक न हो, किन्तु उसके कारण वह जीवन-निर्वाह में असमर्थ होकर क्रमश क्षीण होते-होते नष्ट हो जायगा।

अस्तु, आकर्षण-शक्ति के समान आवश्यकता हमारे इन नये निवासियों को समाज के रूप में बदल देगी। जब तक वे एक दूसरे के प्रति उचित रूप से व्यवहार करते रहेगे, तब तक उनके पारस्परिक सम्बन्ध के वरदान, सरकार तथा कानूनो को व्यर्थ सिद्ध करते हुए उनके बन्धनो को अनावश्यक प्रमाणित कर दगे। किन्तु स्वर्ग के अतिरिक्त दोप के लिए अगम्य कोई स्थल नही है। अत अनिवार्य रूप से यह होगा कि वे व्यक्ति निवास-सम्बन्धी अपनी प्रथम कठिनाइयो पर, जिन्होने उन सबोको एक सूत्र में बाँध रखा था, जिस अनुपात में विजय प्राप्त करेंगे, उसी के अनुसार वे एक दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यो और सम्बन्धो के निर्वाह में शिथिल होने लगेंगे। उनकी यह शिथिलता एक ऐसी सरकार स्थापित करने की आवश्यकता निर्दिष्ट करेगी, जो उनके भौतिक गुणो की कमी की पूर्ति कर सके।

कोई सुविधाजनक वृक्ष उनका संसद्-भवन होगा। उसकी शाखाओ की

छाया में समूची बस्ती सार्वजनिक विषयों पर विचार करने के लिए एकत्रित होगी। यह भी सम्भव है कि उसके प्रथम कानून सामान्य नियमन मात्र हों और सामूहिक तिरस्कार के अतिरिक्त अन्य कोई दण्ड भी न हों। इस प्रथम संसद् में प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकार के बल पर स्थान प्राप्त करेगा।

बस्ती के आरम्भ में जन-संख्या कम होगी; घरों की संख्या कम रहेगी और मनुष्यों के सार्वजनिक काम बहुत थोड़े तथा साधारण होंगे। किन्तु बस्ती के बढ़ने के साथ-साथ उनके सार्वजनिक कार्य भी बढ़ेंगे, और पहले की अपेक्षा उनके निवास-स्थान दूर-दूर होंगे। अस्तु, अनेक अवसरों पर सब मनुष्यों का एक स्थान पर, पूर्ववत् एकत्रित होना अपेक्षाकृत अधिक असुविधाजनक होगा। परिणामतः सुविधा के लिए वे सम्पूर्ण बस्ती में से कुछ चुने हुए व्यक्तियों के ऊपर विधान बनाने का कार्य-भार छोड़ देने के लिए सहमत होंगे। ये चुने हुए व्यक्ति उसी प्रकार कार्य करेंगे जिस प्रकार बस्ती के सभी मनुष्य उपस्थित रहकर कार्य करते; क्योंकि जिन आवश्यक कार्यों के लिए ये व्यक्ति चुने गये हैं वे काम चुनने वालों के ही नहीं हैं, वरन् इनके भी हैं। यदि बस्ती इसी प्रकार बढ़ती गयी, तो प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि करनी पड़ेगी। बस्ती के प्रत्येक भाग के हितों पर ध्यान दिया जा सके, इस दृष्टि से सर्वोत्तम यह समझा जायेगा कि पूरी बस्ती को कई सुविधा-जनक भागों में बाँट दिया जाय और प्रत्येक भाग उचित संख्या में अपने प्रतिनिधियों को भेजे। इन निर्वाचित सदस्यों के हित निर्वाचकों के हितों से भिन्न न हों, अतः बुद्धि यह स्वीकार करेगी कि समय-समय पर निर्वाचन होना उचित है; क्योंकि इस प्रकार वे निर्वाचित सदस्य कुछ महीनों के बाद लौट कर साधारण जनता में मिल जायेंगे, और इस विवेक के भाव कि हम कहीं अपने लिए ही अहितकार विधान न बना बैठें, वे जनता के प्रति सच्चे बने रहेंगे। बार-बार होने वाले इन परिवर्तनों से समाज के सभी भागों में सामान्य हित की स्थापना होगी और वे स्वाभाविक रूप से एक दूसरे की सहायता करेंगे। इसी पारस्परिक सहयोग पर सरकार की शक्ति और शासितों का आनन्द निर्भर है, न कि राजा के अर्थ-हीन नाम पर।

अस्तु, स्पष्ट है कि सरकार का मूल-स्रोत वह पद्धति है, जो विश्व का शासन करने में नैतिक गुणों की असमर्थता के कारण आवश्यक हुई। यहीं पर सरकार का लक्ष्य भी स्पष्ट है—अर्थात् स्वतन्त्रता और सुरक्षा। चाहे बाह्य प्रदर्शनों से हमारी आँखें चौंधिया जायँ, हमारे कान ध्वनि से छले जायँ, पूर्व

धारणाएँ हमारी इच्छाओ को मोड दे, स्वार्थ हमारी समझ को दूषित कर दे, फिर भी प्रकृति की सरल वाणी और बुद्धि इसे सत्य घोषित करेगी।

मैं सरकार के स्वरूप की कल्पना प्रकृति के एक ऐसे सिद्धान्त से प्राप्त करता हूँ जिसे कोई 'कौशल' गलत सिद्ध नही कर सकता। वह सिद्धान्त यह है कि कोई वस्तु जितनी अधिक सरल होती है, उतनी ही अल्प मात्रा मे वह अव्यवस्थित हो सकती है; और यदि अव्यवस्थित हो भी गयी तो उतनी ही सुगमता से वह सुधारी जा सकती है। इस सिद्धान्त को सम्मुख रख कर मैं इगलैण्ड के अति प्रशसित सविधान की सक्षिप्त आलोचना प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमे सदेह नही कि इंगलैण्ड का विधान अज्ञानता और दासता के उस युग के लिए श्रेष्ठ था जिसमें उसका निर्माण हुआ। जिस समय विश्व अत्याचार से पीड़ित था, उस समय उस अत्याचार से थोडा बच जाना बहुत बडी मुक्ति थी। किन्तु अत्यन्त सुगमता के साथ यह सिद्ध हो जाता है कि इगलैण्ड का संविधान अपूर्ण एवं सामाजिक और राजनैतिक विप्लवो के वशीभूत है। इससे जिस लक्ष्य की पूर्ति की आशा की जाती है उसके लिए यह सर्वथा अयोग्य है।

निरंकुश सरकारे, यद्यपि मानव-जीवन का तिरस्कार करती हैं, फिर भी वे सरल होती हैं। उनके द्वारा पीड़ित किये जाने पर लोग अपने दु ख के उद्गम-स्रोत को जानते है और उनका उपचार भी जानते हैं। वे नाना प्रकार के कारणो और उपचारो से व्याकुल नही होते। किन्तु इंगलैण्ड का विधान इतना अधिक जटिल है कि राष्ट्र वर्षो पीडित रहने पर भी यह न जान सकेगा कि शासन के किस अश में दोप है। कुछ व्यक्ति उस दोष को किसी स्थल पर देखेंगे तथा अन्य, दूसरे स्थल पर, और प्रत्येक राजनैतिक वैद्य उस दोष को दूर करने के लिए एक नया उपचार प्रस्तुत करेगा।

मैं जानता हूँ कि स्थानीय अथवा चिरकालीन पूर्वधारणाओ पर विजय प्राप्त करना कठिन है। फिर भी यदि हम इगलैण्ड के सविधान के भागो की परीक्षा करने का कष्ट करे तो हमें ज्ञात होगा कि वे प्राचीन अत्याचारो के अवशिष्ट आधार हैं; हाँ, इतना अवश्य है कि उनमें कुछ नवीन जनतत्रीय तत्वो का समावेश हो गया है। वे भाग इस प्रकार हैं:—

(१) राजा के रूप में राजतत्रीय अत्याचार के अवशेष।

(२) कुलीनो (Peers) के रूप मे कुलीनतत्रीय (Aristocratical)

अत्याचार के अवशेष।

(३) लोक सभा के सदस्यो (Commons) के रूप में नवीन जनतंत्रीय (Republican) तत्त्व जिस पर इगलैण्ड की स्वतंत्रता निर्भर है।

उपर्युक्त तीनों भागो में से प्रथम दो आनुवंशिक (Hereditary) होने के नाते, जनता से पूर्ण स्वतंत्र हैं और इसलिए सांविधानिक अर्थ में वे राज्य की स्वतंत्रता में किसी प्रकार का योग नही देते।

यह कहना कि इगलैण्ड का संविधान परस्पर एक दूसरे का निग्रह करने वाली तीन शक्तियों का संघ है, निरा हास्यास्पद है। या तो इन शब्दों का कोई अर्थ नही है अथवा ये पूर्ण विरोधात्मक हैं। इस कथन में कि लोक-सभा के सदस्य राजा पर नियंत्रण रखते हैं, निम्नांकित दो अभिप्राय अन्तर्निहित हैं। प्रथम, यह कि किसी नियंत्रण के बिना राजा का विश्वास नही करना चाहिए अथवा दूसरे शब्दो में, निरंकुश अधिकार की तृष्णा राजतंत्र की प्राकृतिक व्याधि है। दूसरा, यह कि राजा के नियंत्रण के लिए नियुक्त लोक-सभा के सदस्य राजा की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और विश्वास के पात्र हैं।

किन्तु, जो संविधान लोक-सभा के सदस्यों को यह अधिकार देता है कि वे पूर्ति (supplies) को रोक कर राजा का नियंत्रण करें, वही राजा को यह अधिकार देता है कि वह लोक-सभा के उन सदस्यों के अन्य विधेयको को अस्वीकृत करके उनका नियंत्रण करे। इस प्रकार यह संविधान यह भी स्वीकार करता है कि राजा उन लोक-सभा के सदस्यों से अधिक बुद्धिमान है, जिन्हें इसने राजा से अधिक बुद्धिमान माना है। यह क्या है? मूर्खता मात्र।

राजतंत्र (Monarchy) की रचना ही नितान्त हास्यास्पद है। एक ओर तो यह एक आदमी को सूचना-प्राप्ति के साधनों से दूर कर देती है और दूसरी ओर उसे उस स्थिति में काम करने का अधिकार प्रदान करती है, जहाँ सर्वोच्च न्याय की आवश्यकता होती है। राजा शेष जगत से अपरिचित रहता है, फिर भी उसे ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनके लिए संसार का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार ये भिन्न-भिन्न तत्त्व स्वाभाविक रूप से एक दूसरे का विरोध और विनाश करते हुए सम्पूर्ण चरित्र को मूर्खतापूर्ण एवं व्यर्थ प्रमाणित करते हैं।

कुछ लेखकों ने ब्रिटिश विधान को अन्य प्रकार से समझाया है। उनका कहना है कि राजा राजतंत्र का एक पक्ष है और जनता दूसरा पक्ष। लॉर्डों

(Peers) की सभा (House of lords) राजा-पक्ष मे है और लोक-सभा (House of Commons) जनता-पक्ष मे है। किन्तु यह भेद एक ही सभा का अन्तर्विभाजन है, और यद्यपि उपर्युक्त कथन सुन्दर ढग से कहा गया है, फिर भी परीक्षा करने पर वह अस्पष्ट ज्ञात होता है। प्रायः यह बात देखने में आयेगी कि शब्दो की सुन्दरतम रचना, यदि किसी ऐसी वस्तु का वर्णन करती है जिसका अस्तित्व या तो सम्भव नही है या जो अपनी दुर्बोधता के कारण वर्णन से बाहर है, तो वह निरर्थक होती है। उससे कानों को सुख मिल सकता है, किन्तु मस्तिष्क को किसी अर्थ का बोध नहीं होगा। उपर्युक्त व्याख्या के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रश्न निहित है।

उस अधिकार को, जिसे लोग राजा को सौंपने से डरते हैं, और जिसका निग्रह करने के लिए विवश होते हैं, राजा ने किस प्रकार प्राप्त किया ? ऐसा अधिकार बुद्धिमान लोगो द्वारा दिया हुआ नही हो सकता और जिससे नियन्त्रण मे रहना पडे ऐसा अधिकार ईश्वरप्रदत्त भी नही हो सकता है। फिर भी, सविधान की व्यवस्था इस प्रकार के अधिकार का अस्तित्व मानती है ।

किन्तु सविधान की यह व्यवस्था अपूर्ण है। साधन या तो लक्ष्य की पूर्ति कर नही सकते, अथवा करेगे नही। यह सारा कार्य-व्यापार एक प्रकार की आत्महत्या है। जिस प्रकार अधिक भार कम को प्रभावित करता है और जिस प्रकार यन्त्र-चक्र एक पुर्ज़े से परिचालित होते हैं, उसी प्रकार हमें यह देखना है कि सविधान में कौन-सी शक्ति गुरुतम है; क्योंकि यही शक्ति शासन करेगी। यद्यपि अन्य शक्तियो अथवा उनके किसी अश के द्वारा उसके गति वेग में बाधा स्तुत हो सकती है; किन्तु जब तक वे उसकी गति को पूर्णत. रोकने में समर्थ नही होते, तब तक उनके प्रयास प्रभावहीन होंगे। वह प्राथमिक गत्यात्मक शक्ति अन्त में विजयिनी होगी। उसके वेग की कमी की पूर्ति समय अपने आप कर देगा।

कहने की आवश्यकता नही कि राजा इंगलैण्ड के सविधान की सर्वोपरि सत्ता है। वह अकेला उच्च पदो तथा निवृत्ति-वेतनो (Pensions) को देकर अपना सम्पूर्ण प्रभाव प्राप्त करता है। इसलिए, यद्यपि निरकुश शासन को अस्वीकार करके हमने बुद्धिमानी की है, किन्तु साथ-ही-साथ राजा को

प्रमुख पद देकर पर्याप्त मूर्खता भी की है।

इसमें सन्देह नही कि अन्य देशो की अपेक्षा इंगलैण्ड में व्यक्ति अधिक सुरक्षित है, किन्तु जिस प्रकार से फ्रास में राजेच्छा नियम है उसी प्रकार से इंगलैण्ड में भी। अन्तर केवल इतना ही है कि वे नियम सीधे राजा के मुख से न निकल कर ससदीय विधान के अति भयकर रूप में जनता को प्राप्त होते हैं। चार्ल्स प्रथम के भाग्य ने राजाओं को अधिक न्यायशील नही, वरन् अत्यधिक चतुर बना दिया है।

अस्तु, सरकार की पद्धति और स्वरूप के विषय मे राष्ट्रीय अभिमान और पूर्व धारणाओ को किनारे रख कर इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार कर लेना चाहिए कि इग्लैण्ड में ब्रिटिश सविधान के राजा-पक्ष के कारण नही, वरन् लोक-पक्ष के कारण, राजा उतना अत्याचारी नही है, जितना तुर्किस्तान में।

इग्लैण्ड में सरकार का जो स्वरूप है, उसके सविधान की त्रुटियो की परख इस स्थल पर नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार पक्षपात के प्रभाव से हम अन्यो के साथ न्याय नही कर सकते, उसी प्रकार यदि हम दुर्दम पूर्व-धारणा के बन्धन में बद्ध हैं, तो हम अपने प्रति भी न्याय नही कर सकते; और जिस प्रकार वेश्यागामी व्यक्ति पत्नी चुनने या उसका न्याय करने के लिए अनुपयुक्त होता है, उसी प्रकार सरकार के दूषित संविधान के पक्ष में जब तक कोई पूर्व मान्यता बनी रहेगी, तब तक हम लोग किसी अच्छे सविधान का निर्णय नही कर सकते।

राजतंत्र और आनुवंशिक उत्तराधिकार

सृष्टि की व्यवस्था के अनुसार सभी मानव मूलतः समान हैं। इसलिए उनकी यह समानता किसी उत्तरगामी परिस्थिति के द्वारा ही नष्ट हो सकती है। अत्याचार और लोभ जैसे अप्रिय शब्दों का नाम लिए बिना भी, धनी और निर्धन के भेद का कारण समझाया जा सकता है। अत्याचार धन-प्राप्ति का साधन कदाचित् ही होता है; प्राय वह धन का परिणाम होता है। लोभ यद्यपि मनुष्य को अत्यन्त दरिद्र होने से बचा लेता है, किन्तु वह मनुष्य को इतना कायर बना देता है कि वह धनी नहीं हो सकता।

मनुष्यों में एक अन्य प्रकार का और इससे बड़ा भेद है जिसका कोई

प्राकृतिक या धार्मिक कारण निर्दिष्ट नही किया जा सकता। वह भेद है राजा और प्रजा। नर और नारी का भेद प्रकृतिजन्य है; अच्छा और बुरा स्वर्ग-निर्धारित भेद है। किन्तु यह परीक्षण का विषय है कि संसार में मनुष्यो का एक नवीन वर्ग शेष की अपेक्षा अधिक उन्नत किस प्रकार अवतरित हुआ, और इस वर्ग के मनुष्य मानव-जाति के आनन्द के साधन हैं अथवा दुःख के।

धर्म-ग्रन्थो के अनुसार, सृष्टि के पुरातन काल मे राजा नही हुआ करते थे। परिणामतः कोई युद्ध नही होता था। राजाओ के अभिमान से ही मानव-जाति अव्यवस्थित होती है। राजा के न होने के कारण ही हालैण्ड ने यूरोप के राजतन्त्रीय देशो की अपेक्षा अधिक शान्ति का आनन्द प्राप्त किया है। प्राचीन युग के प्रमाण भी इस बात का समर्थन करते है। 'पितृ-सत्ता-काल' मे मनुष्यो ने जिस शान्ति और ग्रामीण जीवन का आनन्द उठाया, वह उस समय लुप्त हो गया जिस समय यहूदियो ने राजत्व की स्थापना की।

मूर्तिपूजको ने सर्वप्रथम राजतत्र की स्थापना की। बाद में इज़राइल के निवासियो ने उनका अनुकरण किया। मूर्ति-पूजा को प्रोत्साहन देने के लिए यह महान दानवीय आविष्कार था। उन जगली मनुष्यो ने मृत राजाओ को दिव्य सम्मान प्रदान किया। ईसाई-जगत ने अपने जीवित राजाओ के प्रति वैसा ही भाव प्रदर्शित करके उस दिशा मे प्रगति की हैं। जो अपने समस्त वैभव के मध्य मिट्टी मे लुढक रहा हो, उस प्राणी को 'महाराजाधिराज' की दिव्य पदवी से विभूषित करना कितना अपवित्र कार्य है।

एक व्यक्ति का शेष मानव-जाति से इतने ऊपर उठ जाना जिस प्रकार मनुष्यो के प्राकृतिक अधिकार-साम्य के आधार पर न्याय नही कहा जा सकता, उसी प्रकार धर्म-ग्रन्थो के आधार पर भी इसका औचित्य सिद्ध नही किया जा सकता। गिड्यान (Gideon) और सिद्ध सैम्युअल (Samual) के अनुसार सर्वशक्तिमान ईश्वर की इच्छा स्पष्ट रूप से राजतत्र को अस्वीकार करती है। राजतत्रीय देशो में धर्म-ग्रंथो के उन सभी अशो की अनुकूल व्याख्या कर दी गयी है, जो राजतत्र का विरोध करते हैं। किन्तु जिन देशो मे सरकार का निर्माण अभी होने वाला है उन देशो को उन अशो पर ध्यान देना चाहिए। 'सीजर की वस्तुएँ सीजर को दो।', यह राज-दरबारो में लिखा हुआ धर्म-ग्रथ-सम्मत सिद्धात

है। फिर भी इस वाक्य से राजतंत्र का समर्थन नही होता; क्योंकि उस समय यहूदियो का कोई राजा नहीं था और वे रोम साम्राज्य के दासत्व में थे। 'मूसा' ने सृष्टि का जो वृत्तांत बताया है उसके अनुसार आरम्भ से लगभग तीन सहस्त्र वर्षों के अनन्तर, राष्ट्र-व्यापी मोह के कारण यहूदियों ने राजा के लिए प्रार्थना की। उस समय तक उनकी सरकार एक न्यायाध्यक्ष और जाति के वृद्धों द्वारा शासित एक प्रकार की जनतन्त्रीय सरकार थी। केवल असाधारण परिस्थितियों में कभी-कभी सर्वशक्तिमान ईश्वर हस्तक्षेप किया करता था। यहूदियों का कोई राजा नही था और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी को राजा के नाम से स्वीकार करना पाप माना जाता था। राजाओं को, मूर्तियों के समान, जो दिव्य सम्मान प्राप्त होता है उस पर यदि कोई गम्भीरतापूर्वक विचार करे तो उसे इस बात पर थोडा भी आश्चर्य नही करना चाहिए कि वह सर्वशक्तिमान ईश्वर अपने दिव्य विशेषाधिकार पर अपवित्रतापूर्वक आक्रमण करने वाली राजतन्त्रीय सरकार को अस्वीकार करता है।

धर्म-ग्रन्थो में राजतन्त्र यहूदियो के पापों में से एक पाप माना गया है और उसका अभिशाप उनके लिए सुरक्षित है। इस विषय की कथा सुनने योग्य है।

इज़राइल के निवासी जब मिडिएनाइटो से पीडित हुए तो गिड्यान एक छोटी-सी सेना के साथ उनके विरुद्ध लडने के लिए चला; और ईश्वर के हस्तक्षेप के कारण उसे विजय प्राप्त हुई। इस विजय से यहूदी बडे प्रसन्न हुए और गिड्यान के सेनापतित्व को इस विजय का कारण मान कर उन्होंने उसे राजा बनाने का प्रस्ताव करते हुए कहा—'आप, आपके लडके और आपके लडके के लड़के, हम पर शासन करें।' इस अवसर पर एक राज्य का ही नही वरन् आनुवंशिक राज्य का महान प्रलोभन प्रस्तुत था। किन्तु गिड्यान ने दयापूर्वक उत्तर दिया— 'न तो मैं और न मेरे पुत्र ही आप लोगो पर शासन करेंगे। ईश्वर आप पर शासन करेगा।' भाव स्पष्ट है। गिड्यान उस सम्मान को अस्वीकार नहीं करता है, वरन् वह यहूदियो के सम्मान प्रदान करने के अधिकार को अस्वीकार करता है। वह उन्हें बदले में धन्यवाद भी नहीं देता, वरन् मित्रों की नि.श्चयात्मक शैली में अननुरक्ति के साथ, वह उन्हें उनके वास्तविक स्वामी को सौंप देता है।

लगभग एक सौ तीस वर्षों के बाद यहूदियो ने पुनः वही गलती की। मूर्तिपूजकों की पूजा-पद्धति के अनुकरण-सम्बन्धी यहूदियों की उत्कण्ठा या

कारण अज्ञात है। किन्तु इतना निर्विवाद है कि उनमें ऐसी उत्कण्ठा थी। सैम्युअल के दो पुत्रों को कुछ लौकिक-कार्य सौंपे गये थे। उनके दुराचारो से अवगत होकर उन यहूदियो ने, एकाएक कोलाहल करते हुए, सैम्युअल के समीप आकर कहा—"आप वृद्ध हो गये हैं। आपके पुत्र आपका अनुसरण नहीं कर रहे हैं। कृपया हम लोगो के लिए एक राजा नियुक्त कीजिए, जो हमारा न्याय कर सके जैसा कि अन्य राष्ट्रो में होता है।" इस स्थल पर हम स्पष्ट देखते हैं कि यहूदियो का अभिप्राय बुरा नही था; क्योंकि वे अन्य राष्ट्रो अर्थात् जगली मूर्तिपूजको के समान होना चाहते थे, जबकि उनका गौरव उन मूर्तिपूजको से, यथासम्भव, भिन्न बनने में था। किन्तु जब उन्होने कहा कि हमारे लिए एक राजा नियुक्त कीजिए, तो सैम्युअल अप्रसन्न हो उठे और उन्होने ईश्वर से प्रार्थना की। ईश्वर ने सैम्युअल से कहा—"वे लोग तुमसे जो कहते हैं, उसे सुनो, क्योंकि उन्होने केवल तुम्हारी उपेक्षा नही की है। जिस दिन से मैंने उन्हें मिस्र से बाहर लाकर उनका पालन-पोषण किया, उस दिन से आज तक अपने सभी कार्यों के द्वारा उन्होने मेरी उपेक्षा करके अन्य देवताओ की उपासना की है। वैसा ही व्यवहार वे तुम्हारे साथ कर रहे हैं। अस्तु, उनकी बात को सुनो। फिर भी गम्भीरतापूर्वक उनका विरोध करो और राजा किस प्रकार से उनका शासन करेगा, इसे उन्हें समझाओ।" यहाँ राजा विशेष से अभिप्राय नही है, वरन् पृथ्वी के जिन राजाओ के अनुकरण की उत्कण्ठा यहूदियो को थी, उन राजाओ के सामान्य व्यवहार से तात्पर्य है। समयगत दूरी और प्रकार-भेद के होते हुए भी वे सामान्य व्यवहार आज दिन तक अक्षुण्ण बने हैं। सैम्युअल ने ईश्वर का कथन लोगो को कह सुनाया और कहा कि जो राजा तुम्हारा शासन करेगा उसके व्यवहार इस प्रकार के होगे—"वह तुम्हारे पुत्रो को अपने उपभोग के लिए सेवक, सारथी अथवा सईस बनायेगा। तुम्हारे कुछ लड़के उसके रथ के आगे-आगे दौड़ेंगे। (आजकल जनता से जो बेगार ली जाती है, वह इस व्यवहार से मेल खाती है।) वह किसी-किसी को सहस्रो अथवा पचासो का नायक नियुक्त करेगा। वह अपने खेतो को जोतने और फसलो को काटने के कामो में लोगो को लगायेगा। कुछ लोग उसकी रक्षा अथवा युद्ध के लिए सामान तैयार करेंगे। तुम्हारी लड़कियो से वह अपनी रसोई बनवायेगा। वह तुम्हारे खेतो को तथा सर्वोत्तम जैतून के बगीचो को लेकर

अपने सेवकों को देगा और तुम्हारे बीजों तथा अंगूरों का दशांश लेकर अपने कर्मचारियों और सेवकों को देगा। वह तुम्हारे सेवकों-सेविकाओं तथा सुन्दरतम गदहों के दशांश को लेकर उन्हें अपनी सेवा में नियुक्त करेगा। वह तुम्हारी भेड़ों का दशांश लेगा और तुम लोग उसके सेवक बनोगे। उस समय अपने चुने हुए राजा के कारण पीड़ित होकर तुम लोग त्राहि-त्राहि करोगे, किन्तु ईश्वर तुम्हारी पुकार नहीं सुनेगा।" इस प्रकार राजतन्त्र आरम्भ हुआ। उस समय से आज तक जो थोड़े-से अच्छे राजा हुए, उनके चरित्र राजतन्त्र के उद्गम सम्बन्धी पाप को न तो पवित्र बना सकते हैं और न नष्ट ही कर सकते हैं। डेविड की जो इतनी प्रशंसा की गयी है वह उसके राजा के पद के नाते नहीं, वरन् ईश्वर की पसन्द का व्यक्ति होने के नाते। यहूदियों ने सैम्युअल की बात नहीं मानी और कहा—"नहीं, हम लोगों को एक राजा चाहिए जिससे हम भी अन्य राष्ट्रों के समान बन सकें और हमारा राजा हमारा न्याय करे तथा हमारे आगे-आगे चलकर हमारी लड़ाइयाँ लड़े।" सैम्युअल उन लोगों से तर्क करता रहा, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। उसने उन सबकी कृतघ्नता को स्पष्ट किया, किन्तु उन यहूदियों पर इसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर कि वे अपनी मूर्खता पर अड़े हुए हैं, सैम्युअल ने कहा—"मैं ईश्वर से कहूँगा कि वे बिजली और वर्षा भेजें, (गेहूँ की फसल के समय यह एक प्रकार का दण्ड था) जिससे तुम लोग देख लो कि राजा की माँग करके तुमने महान बुराई की है।" तत्पश्चात् सैम्युअल ने ईश्वर से प्रार्थना की और उस दिन बिजली और वर्षा का प्रकोप रहा। तब मनुष्यों ने अधिक भयभीत होकर सैम्युअल से प्रार्थना की—"आप अपने सेवकों के लिए प्रभु से प्रार्थना कीजिए, जिससे हम लोग मरें नहीं। हम लोगों ने राजा की माँग करके एक पाप और किया।" धर्मग्रन्थ के ये अंश सरल और स्पष्ट हैं। इनमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं है। यदि धर्मग्रन्थ झूठा नहीं है, तो यह सत्य है कि प्रभु ने राजतन्त्र का विरोध किया। इस बात को स्वीकार करने के पर्याप्त कारण हैं कि पाप-सम्बन्धी देशों में धर्मग्रन्थों को जनता से दूर रखने में राजनीति पुरोहित-नीति के समान ही होती है, क्योंकि राजतंत्र प्रत्येक स्थिति में सरकार की महन्ती है।

राजतंत्र के दोषों में आनुवंशिक उत्तराधिकार का दोष और जोड़ दिया गया है। जिस प्रकार राजतन्त्र हम लोगों के लिए अपमान है, इसी प्रकार

आनुवंशिक उत्तराधिकार पर स्थापित राजतन्त्र हमारी सन्तति के लिए अपमान-जनक और ऊपर से लादी गयी वस्तु है। क्योंकि यत. सभी मनुष्य मूलतः समान है; अतः अन्य कुलो से अपने कुल को शाश्वत रूप से श्रेष्ठ मान लेने का जन्म-जात अधिकार किसी एक व्यक्ति को नही है। सम्भव है कि कोई एक व्यक्ति अच्छे गुणो के कारण अपने सामयिको के आदर का पात्र हो, किन्तु उसके उत्तराधिकारी उन गुणो के अभाव में आदर न प्राप्त कर सके। राजाओ के आनुवशिक अधिकार की मूर्खता को प्रमाणित करने के लिए सर्वाधिक सबल प्रमाणो में से एक यह है कि प्रकृति उसे अस्वीकार करती है। अन्यथा सिंह के स्थान पर प्राय गीदड़ उत्पन्न करके वह इस आनुवशिक अधिकार का उपहास न करती।

दूसरी बात यह है कि आरभ मे लोगो द्वारा प्रदत्त सम्मान के अतिरिक्त अन्य कोई सम्मान किसी व्यक्ति को प्राप्त न रहा होगा, और उस सम्मान को प्रदान करने वाले लोगो को अपनी सन्तति के अधिकारो को दे देने का कोई अधिकार नही था। यद्यपि उन्होने किसी एक व्यक्ति से कहा होगा कि हम आपको अपना मुखिया चुनते हैं, किन्तु अपने उत्तराधिकारियो के प्रति स्पष्ट रूप से अन्याय किये बिना वे यह नही कह सकते थे कि आपके वशज हमारे वंशजो पर सदैव शासन करे; क्योकि यह सम्भव था कि इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण, अन्याययुक्त तथा अप्राकृतिक समझौते के कारण उनके वशज किसी दुष्ट अथवा मूर्ख के द्वारा शासित होते। अधिकाश बुद्धिमान पुरुषो ने अपने वैयक्तिक मत के अनुसार आनुवशिक अधिकार के प्रति तिरस्कार का भाव प्रदर्शित किया है। फिर भी, यह उन बुराइयो मे से है जो एक बार स्थापित हो जाने पर सुगमतापूर्वक दूर नही की जा सकती। कुछ मनुष्य तो भय के कारण और शेष अपेक्षाकृत अधिक बलशाली लोग राजा के साथ जनता को लूटते हैं।

राजाओ के आनुवशिक उत्तराधिकार को मान लेना उनके उद्गम को सम्मानपूर्ण मान लेना हुआ, जबकि यह अधिक सम्भव है कि यदि हम प्राचीनता के घने आवरण को हटा कर राजाओ के उद्गम की झाकी प्राप्त करें, तो हमें ज्ञात होगा कि इनमें से सर्वप्रथम व्यक्ति आततायियो के किसी दल के उस मुखिया की अपेक्षा किसी भी रूप में अच्छा न रहा होगा, जिसने अपने अशिष्ट

व्यवहार या मर्मज्ञता में श्रेष्ठ होने के नाते, डाकुओं के प्रधान का पद प्राप्त कर लिया और जिसने अपनी बढ़ती हुई शक्ति और लूट के द्वारा, शान्त तथा असुरक्षित व्यक्तियों को भयभीत करके उन्हें प्राय: सुरक्षा-शुल्क देने को बाध्य किया। फिर भी, उसे अपना प्रधान चुनने वालों के मस्तिष्क में उसके वंशजों को आनुवंशिक अधिकार देने का विचार न रहा होगा। क्योंकि इस प्रकार शाश्वत रूप से अपने को अधिकार-वंचित रखना उनके उन स्वतंत्र और अनियन्त्रित सिद्धांतों के विपरीत था, जिन्हें उन्होंने अपने जीवन में स्वीकार किया था। इस कारण से राजतन्त्र के प्रारम्भिक युगों में आनुवंशिक उत्तराधिकार आकस्मिक अथवा रिक्त-पूर्ति की स्थिति के अतिरिक्त अधिकार के रूप में स्थापित नहीं हो सकता था। किन्तु चूंकि उन दिनों का कोई ज्ञात प्रमाण नहीं था और परंपरा-प्राप्त इतिहास कल्पित-कथाओं से भरा हुआ था इसीलिए कई पीढ़ियों के बाद आनुवंशिक अधिकार के सिद्धांत को असभ्य व्यक्तियों के गले के नीचे उतारने के लिए सुविधा एवं समय के अनुकूल, अंधविश्वास की कहानियों को गढ़ लेना अत्यन्त सुगम कार्य था। लुटेरों के मध्य निर्वाचन अधिक व्यवस्थित नहीं हो सकता था। कदाचित इसीलिए एक नेता की मृत्यु के उपरांत अन्य किसी को नेता चुनने के समय होने वाली भावी अव्यवस्था की आशंका ने पहले-पहल उनमें से बहुतों को उत्तराधिकार का आश्रय लेने की प्रेरणा दी होगी और उस समय जिसे सुविधा के नाते स्वीकार किया गया होगा, बाद में उसे अधिकार मान लिया गया।

इंगलैण्ड में 'विजय' के बाद से कुछ अच्छे राजा हुए। किन्तु संख्या में अपेक्षाकृत अधिक राजाओं से यह देश पीड़ित रहा। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि विजयी विलियम (William The Conqueror) के नाम पर राजाओं को अत्यन्त सम्मानपूर्ण अधिकार प्राप्त था। कुछ सशस्त्र डाकुओं के साथ आकर इंगलैण्ड के निवासियों की इच्छा के विरुद्ध अपने को वहाँ का राजा घोषित करने वाली फ्रांस की एक जारज संतान स्पष्ट शब्दों में अत्यन्त क्षुद्र तथा दुष्टतापूर्ण मूल है। निश्चित रूप से इस मूल में कोई दिव्यता नहीं है। राजतन्त्रीय आनुवंशिक अधिकार की मूर्खता के विषय में अब और कुछ कहना व्यर्थ है। इतने पर भी यदि ऐसे निर्बल व्यक्ति हैं, जो इसमें विश्वास करते हैं तो वे गधे और सिंह की भिन्न

उपासना तथा उनका स्वागत करे। मैं न तो उनकी दीनता का अनुकरण करूँगा, और न उनकी भक्ति में बाधा ही प्रस्तुत करूँगा।

फिर भी मैं उनसे इतना पूछूँगा कि उनकी मान्यता के अनुसार राजाओं का उद्भव किस प्रकार हुआ ? इस प्रश्न के केवल तीन उत्तर हो सकते हैं—अर्थात् भाग्य से, निर्वाचन से अथवा अपहरण से। यदि पहला राजा भाग्य के बल पर नियुक्त हुआ तो यह एक ऐसा प्रमाण है, जिससे आनुवशिक उत्तराधिकार का निषेध होता हैं। साउल (Saul) भाग्य से राजा बना, किन्तु उसके वंशज उसके उत्तराधिकारी नही हुए, और न तो उस समय के प्रबन्ध से यह पता चलता है कि उस समय लोगो में आनुवशिक उत्तराधिकार की इच्छा थी। यदि किसी देश का पहला राजा निर्वाचित हुआ था, तो वह अन्यो के लिए भी उसी प्रकार का प्रमाण स्थापित करता है। प्रथम निर्वाचको ने एक राजा नही, वरन् राजाओ के परिवार को चुनकर अपनी भावी पीढियो का अधिकार सदा के लिए छीन लिया, यह कथन धर्म-ग्रथो में उल्लिखित केवल उस प्रारभिक पाप-विषयक सिद्धान्त के समान होगा, जिसके अनुसार सब मनुष्यो की स्वतत्र इच्छा आदम (Adam) की स्वतन्त्र इच्छा के साथ-साथ नष्ट हो गयी। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का अन्य कोई सिद्धान्त धर्म-ग्रथो में नही मिलता। यह भी सत्य है कि इस समानता के होते हुए भी आनुवशिक उत्तराधिकार को कोई गौरव नही प्राप्त हो सकता। आदम का पाप सब का पाप माना गया और प्रथम निर्वाचको का मत सब का मत मान लिया गया। एक के अनुसार मानव-जाति शैतान के वशीभूत हुई और दूसरे के अनुसार राजा के। पहली दशा में हमारी निर्दोषता नष्ट हो गयी और दूसरी स्थिति में हमारे अधिकार नष्ट हो गये। इस प्रकार दोनो सिद्धान्त हम लोगो को अपनी पूर्व दशा एवं पूर्व अधिकारो को पुन: प्राप्त करने से रोकते हैं। अत: यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक पाप और आनुवशिक उत्तराधिकार के सिद्धान्त समान हैं। आनुवशिक उत्तराधिकार की यह उपमा यद्यपि अपमानपूर्ण एव लज्जास्पद है, किन्तु कोई भी व्यक्ति इससे अधिक उपयुक्त उपमा प्रस्तुत नही कर सकता।

जहाँ तक अपहरण का प्रश्न है, कोई भी व्यक्ति उसका समर्थन नही करेगा; और यह निर्विरोध सत्य है कि विजयी विलियम ने अपहरण किया था। सच्ची बात यह है कि इगलैण्ड के राजतन्त्र का इतिहास अच्छा नही रहा है।

मानव-जाति का सम्बन्ध इस आनुवंशिक उत्तराधिकार की मूर्खता से अधिक उसके दोषों से है। इसका द्वार मूर्खों, दुष्टों और अयोग्यों के लिए भी खुला हुआ है। इसलिए इसकी प्रकृति अत्याचारात्मक है। जो व्यक्ति यह समझते हैं कि वे शासन करने के लिए और अन्य मनुष्य शासित होने के लिए उत्पन्न हुए हैं, वे शीघ्र ही उद्धत हो जाते हैं। शेष मानव-जाति से उत्कृष्ट इन व्यक्तियों के मस्तिष्क महत्त्व से विषाक्त हो जाते हैं, और इनका संसार शेष जगत से वस्तुतः इतना भिन्न होता है कि उन्हें इसके वास्तविक हितों से अवगत होने का अवसर कम प्राप्त होता है। जब वे गद्दी पर बैठते हैं तो राज्य भर में प्रायः, सर्वाधिक अज्ञानी और अयोग्य सिद्ध होते हैं।

आनुवंशिक उत्तराधिकार का दूसरा दोष यह है कि इसके अनुसार किसी भी आयु का अवयस्क गद्दी का अधिकारी हो जाता है, और राज-प्रतिनिधि उसके वयस्क होने के काल तक राजा के नाम पर सारा काम करता है। विश्वासघात करने के लिए उसके सम्मुख सभी प्रकार के अवसर और प्रलोभन रहते हैं। इसी प्रकार की राष्ट्रीय आपत्ति उस समय उपस्थित होती है जब कि एक राजा मानवीय निर्बलता की अन्तिम दशा को प्राप्त होता है। उपर्युक्त दोनों दशाओं में जनता एक ऐसे दुरात्मा का शिकार होती है, जो वृद्धावस्था अथवा शैशव की मूर्खता को सफलतापूर्वक दूषित कर सकता है।

आनुवंशिक उत्तराधिकार के बचाव-पक्ष में दिये गये तर्कों में सब से अधिक सत्य प्रतीत होनेवाला तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह राष्ट्र को गृह-युद्ध से बचाता है। यदि यह तर्क सत्य होता तो निश्चित रूप से प्रभावशाली होता। किन्तु वास्तविकता यह है कि यह सफेद झूठ है। इंगलैण्ड का सम्पूर्ण इतिहास इसे अस्वीकार करता है। तीस वयस्क राजाओं और दो अवयस्कों ने इंगलैण्ड का शासन किया है। उस बीच, सन् १६८८ की क्रान्ति को मिलाकर, कम-से-कम आठ गृह-युद्ध और उन्नीस विप्लव हुए। इसलिए आनुवंशिक उत्तराधिकार को शान्ति-स्थापना के जिस आधार पर उचित कहा जाता है, वह उलटे उस आधार का ही विनाश करते हुए अपने को शान्ति के लिए अनुपयुक्त सिद्ध करता है। यार्क और लंकाशायर के घरानों के राजगद्दी और उत्तराधिकार-सम्बन्धी संघर्ष ने इंगलैण्ड में कई वर्षों तक रक्तपात का दृश्य प्रस्तुत किया। साधारण युद्धों तथा घेरों के अतिरिक्त हेनरी और एडवर्ड

के बीच बारह घमासान लडाइयाँ हुई। दो बार हेनरी एडवर्ड का और फिर एडवर्ड हेनरी का बन्दी बना। जब झगडे का आधार केवल वैयक्तिक स्वार्थ होता है, तो युद्ध की गति और राष्ट्र की प्रकृति अत्यन्त अनिश्चित होती हैं। हेनरी विजयी होकर कारागार से प्रासाद मे लाया गया और एडवर्ड प्रासाद से विदेश भाग जाने को विवश हुआ। किन्तु प्रकृति के सहसा परि-वर्तन कदाचित् ही स्थायी होते हैं। हेनरी भी गद्दी से उतारा गया और उसके स्थान पर एडवर्ड राजा बना। ससद् बराबर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली का पक्ष लेती रही।

यह झगडा हेनरी षष्टम के राजत्व-काल में आरंभ हुआ और तब तक पूर्ण रूप से समाप्त नही हुआ, जब तक दोनो वशो से सम्बन्धित हेनरी सप्तम् गद्दीपर न बैठा। इस प्रकार यह झगड़ा सन् १४२२ से सन् १४८६ ई० तक चलता रहा।

राजतन्त्र और उत्तराधिकार ने केवल किसी एक देश में नही, वरन् समस्त विश्व मे विनाश की लीला प्रस्तुत की है। ईश्वरीय कथन इस प्रकार की सरकार के प्रतिकूल है। इसके द्वारा सदैव रक्तपात होता ही रहेगा।

यदि हम राजा के कार्यों की परीक्षा करे तो हमें विदित होगा कि कुछ देशों में राजाओं को कुछ नही करना पडता है। उनके द्वारा न तो उन्हे स्वय कोई आनन्द प्राप्त होता है और न ससार को। इस प्रकार व्यर्थ जीवन बिता कर वे एक दिन इस लोक से विदा हो जाते हैं और अपने उत्तराधिकारियो को अपने उसी निष्क्रिय-पथ पर चलने को छोड जाते हैं। निरंकुश राजतन्त्र में असैनिक अथवा सैनिक सभी कार्यों का सम्पूर्ण भार राजा पर ही होता हैं। इजराइल के निवासियो ने जब राजा के लिए प्रार्थना की, तब उन्होने यही कहा था कि हमें ऐसा राजा दीजिए, जो हमारा न्याय करे और हमारा अग्रणी हो कर लडाइयाँ लडे। किन्तु इगलैण्ड के समान जिन देशो में वह न तो न्यायाधीश है और न सेनापति वहाँ उसके क्या काम है, इसे हम नही समझ पाते।

कोई सरकार जनतन्त्र के जितने निकट पहुँचती है, राजा के काम उतने ही कम होते हैं। इगलैण्ड की सरकार को कोई उपयुक्त नाम देना कुछ कठिन है। सर विलियम मेरिडिथ इसे जनतन्त्र कहते हैं। किन्तु अपनी वर्तमान स्थिति में वह 'जनतन्त्र' नाम के उपयुक्त नही है। उस पर राजा का भ्रष्ट प्रभाव है।

लोगों को पद देने का अधिकार राजा को है। इसके बल पर उसने इतनी प्रभावात्मक शक्ति प्राप्त कर ली है, और इंगलैण्ड के संविधान के जनतन्त्रीय अंश को—लोक-सभा के गुणों को—उसने इस प्रकार नष्ट कर दिया है कि इंगलैण्ड में ठीक उसी प्रकार का राजतन्त्र है, जिस प्रकार का फ्रांस या स्पेन में।

इंगलैण्ड के सभी निवासी संविधान के राजतंत्रीय अंश की नहीं, वरन् उसके जनतन्त्रीय अंश—अर्थात् अपने मध्य से लोक-सभा के लिए सदस्यों को चुनने की स्वतन्त्रता की प्रशंसा करते हैं। यह स्पष्ट है कि जब इस जनतन्त्रीय अंश के गुण नष्ट हो जाते हैं, तब दासता आरम्भ होती है। इंगलैण्ड का संविधान इसीलिए दोषपूर्ण है कि 'राजतन्त्र' ने 'जनतन्त्र' को विषाक्त कर दिया है। राजा ने लोक-सभा के सदस्यों को अपने प्रभाव के अन्तर्गत कर लिया है।

इंगलैण्ड में लड़ाई करने और पद देने के—जो स्पष्ट शब्दों में राष्ट्र को निर्धन बनाना और अपने इच्छानुसार उसकी व्यवस्था करना हुआ—अतिरिक्त राजा और कुछ नहीं करता है। आठ लाख स्टर्लिंग प्रतिवर्ष प्राप्त करने और साथ-साथ पूजित होने वाले व्यक्ति के लिए ये काम वास्तव में अत्यधिक सुन्दर हैं। ईश्वर की दृष्टि में और समाज के लिए, इंगलैण्ड के सभी लुटेरे राजाओं की अपेक्षा एक सच्चे मनुष्य का महत्त्व अधिक है।

अमेरिका की वर्तमान कार्य-स्थिति की विवेचना

अगले पृष्ठों में मैं जो कुछ कहूँगा वह सरल तथ्यों, स्पष्ट तर्कों और सामान्य बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ न होगा। आरम्भ ही में पाठकों से मुझे केवल इतना कहना है कि वे पक्षपात और पूर्वधारणाओं से मुक्त हो जायें; अपनी बुद्धि और अनुभूतियों को स्वनिर्णय के लिए छोड़ देने का कष्ट करें; मनुष्य के वास्तविक चरित्र को स्वीकार करें और वर्तमान युग की परिधि से बाहर जाकर उदारतापूर्वक अपने मत का विस्तार करें।

इंगलैण्ड और अमेरिका के युद्ध के विषय में कई ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। सभी श्रेणियों के मनुष्यों ने विभिन्न प्रेरणाओं और अभिप्रायों से इन वाद-विवादों में भाग लिया है। किन्तु सब कुछ प्रभावहीन रहा और विवाद का समय समाप्त हो गया। झगड़े का निर्णय करने के लिए अन्त में शस्त्रों का सहारा लेना पड़ा। इंगलैण्ड के राजा ने हम लोगों के लिए शस्त्र उठाने के

अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग छोड़ नही रखा था। अत. इस महाद्वीप ने उसकी चुनौती स्वीकार की।

कहा जाता है कि जब लोक-सभा में स्वर्गीय पेल्हम का (Mr. Pelham), जो योग्य मत्री होते हुए भी दोषो से मुक्त नही थे, विरोध इस आधार पर किया गया कि उनकी कार्रवाइयाँ अस्थायी हैं तो उन्होने उत्तर दिया कि मेरे समय तक वे स्थायी रहेगी। यदि इस प्रकार का प्राण-घातक और निर्बल विचार वर्तमान सघर्ष के युग मे उपनिवेशो में रहा तो आगामी पीढ़ियाँ अपने पूर्वजो को घृणापूर्वक याद करेंगी।

विश्व में इससे अधिक गौरवपूर्ण अवसर कभी भी प्रस्तुत नही हुआ था। यह एक नगर, एक प्रान्त अथवा एक राज्य का प्रश्न नही है, वरन् इसका सम्बन्ध निवास-योग्य पृथ्वी के अष्टमाश एक महाद्वीप से है। यह एक दिन, एक वर्ष या एक युग का कार्य नहीं है, वरन् भावी पीढियाँ इस सघर्ष से सम्बन्धित हैं, और उन पर आज के कार्यों का प्रभाव अल्प या अधिक मात्रा में, अनन्त काल तक पड़ेगा। महाद्वीपीय एकता, विश्वास और सम्मान के बीज-वपन का यही अवसर है। जिस प्रकार सिन्दूर वृक्ष के शैशव में उसकी कोमल छाल पर सुई की नोक से लिखा हुआ शब्द उसकी वृद्धि के साथ-साथ बढता जाता है, उसी प्रकार इस समय की अल्प क्षति को भावी पीढियाँ विशाल रूप में देखेंगी।

निर्णय के लिए, तर्क को छोड़कर शस्त्र का आश्रय लेने के कारण राजनीति का नवीन युग आरम्भ हो गया है। सोचने की एक नूतन पद्धति चल पडी है। उन्नीस अप्रैल के पूर्व की सभी योजनाएँ एव प्रस्ताव आदि गत वर्ष के पचाग के समान हैं, जो उस समय के लिए उपयुक्त होते हुए भी आज के लिए व्यर्थ है। अमेरिका और इगलैण्ड के सम्बन्ध-विषयक प्रश्न के उभय पक्षो में से प्रत्येक के समर्थको द्वारा जो कुछ प्रस्तुत किया गया, उन सबका पर्यवसान एक ही बिन्दु पर हुआ, और वह बिन्दु था—ग्रेट ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध स्थापित करना। उन उभय पक्षो में यदि कोई भेद था तो उस सम्बन्ध को कार्यान्वित करने की पद्धति के विषय में था। एक बल-प्रयोग का और दूसरा मित्रता का प्रस्ताव कर रहा था। पर अब तक हुआ यह कि पहला पक्ष असफल हो गया और दूसरे ने अपना प्रभाव उठा लिया।

समझौते के लाभ के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है और वह मनोरम स्वप्न के समान अदृश्य होकर हम लोगों को अपनी पूर्वस्थिति में ही छोड़ गया। अब तर्क के दूसरे पक्ष की परीक्षा करनी चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन से सम्बन्धित तथा उस पर निर्भर रहने में उपनिवेशों की जितनी भौतिक क्षतियाँ हुई हैं तथा सदैव होती रहेंगी, उनकी जाँच करना नितांत उपयुक्त है। हमें उस सम्बन्ध और आधीनता की परीक्षा प्राकृतिक सिद्धांतों और सामान्य बुद्धि के आधार पर करनी है। हमें देखना है कि यदि हम इंगलैण्ड से स्वतन्त्र रहते हैं, तो हमें किसका विश्वास करना है, और यदि उसके आधीन रहेंगे तो हमें क्या आशा करनी चाहिए।

मैंने कुछ लोगों को यह कहते हुए सुना है कि अमेरिका ने ग्रेट ब्रिटेन के साथ अपने पूर्व-सम्बन्ध के अंतर्गत उन्नति की है; इसलिए उसके भावी सुख के लिए वही सम्बन्ध आवश्यक है। इससे अधिक दोषपूर्ण तर्क दूसरा नहीं हो सकता। इस तर्क के अनुसार तो यह कहा जा सकता है कि क्योंकि एक शिशु दूध पर जीवित रहा है, इसलिए उसे माँस या अन्न कभी नहीं खाना चाहिए। अथवा हमारे जीवन के प्रथम बीस वर्ष अनुगामी बीस वर्षों के लिए प्रमाण स्वरूप हैं। किन्तु इतना भी मान लेना वास्तविकता से अधिक मान लेना है। मैं स्पष्ट रूप से इस तर्क का उत्तर दे रहा हूँ। यदि यूरोप की किसी भी शक्ति का सम्बन्ध अमेरिका से न रहा होता तो वह इतना ही नहीं, वरन् इससे अधिक उन्नत होता। जिस वाणिज्य ने उसे सम्पन्न बनाया है वह जीवन के लिए आवश्यक है, और जब तक यूरोप को भोजन की आवश्यकता है, तब तक अमेरिका का बाजार बना रहेगा।

कुछ लोगों का कहना है कि इंगलैण्ड ने हमारी रक्षा की है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि इंगलैण्ड ने हमें अपने भीतर रख लिया है, और उसने हमारे व्यय पर हमारी रक्षा की है। मैं यह भी मानता हूँ कि उसी निमित्त से अर्थात् व्यापार और साम्राज्य के लिए, वह तुर्किस्तान की रक्षा किए होता।

दुःख है कि हम लोगों ने प्राचीन पूर्वधारणाओं का अनुसरण बहुत दूर तक किया और अंध विश्वास के लिए बहुत बड़ा बलिदान किया। हमने ग्रेट ब्रिटेन द्वारा की गयी अमेरिका की सुरक्षा को गौरव प्रदान किया; किन्तु यह न सोचा कि इंगलैण्ड ने अमेरिका की सुरक्षा अपने हित की दृष्टि से की न कि अमेरिका के प्रति स्नेह-भाव के कारण। उसने हमारे शत्रुओं से, हमारे लिए, हमें नहीं

बचाया, वरन् अपने शत्रुओ से और अपने लिए, हमें बचाया। उसने हमें उन लोगो से बचाया जिनका हमसे किसी प्रकार का झगड़ा न था और जो उसी कारण सदैव हमारे शत्रु बने रहेगे। ब्रिटेन इस महाद्वीप पर से अपना अधिकार हटा ले या यह महाद्वीप अपनी परतत्रता की बेडी तोड फेके तो फ्रास और स्पेन तथा अमेरिका के बीच शान्ति रहेगी, भले ही ब्रिटेन से उसकी लडाई चलती रहे। हनोवर (Hanover) की अतिम लडाई से हम लोगो को सम्बन्धो के विरुद्ध शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

हाल ही में, ससद् में यह दृढतापूर्वक स्वीकार किया गया है कि पितृ-देश (ग्रेट ब्रिटेन) के माध्यम के अतिरिक्त उपनिवेशो के बीच कोई पारस्परिक सम्बन्ध नही है; अर्थात् पेन्सिलवेनिया (Pensylvania), जर्सीज (Jerseys) और इसी प्रकार शेष सभी उपनिवेश इगलैण्ड के माध्यम से ही सम्बन्धित है। निश्चित रूप से सम्बन्ध सिद्ध करने का यह प्रकार द्राविड प्राणायाम से कम नही है। किन्तु मेरा मत है कि शत्रुता सिद्ध करने का यह सक्षिप्त और सच्चा ढग है। फ्रास और स्पेन अमेरिका-निवासियो के न कभी शत्रु थे और न कदाचित् कभी रहे। हमसे उनकी शत्रुता केवल ग्रेट ब्रिटेन की प्रजा होने के नाते है।

किन्तु, कुछ लोग कहते हैं कि ब्रिटेन हमारा 'मातृ या पितृ-देश' है। यदि ऐसी बात है तो ब्रिटेन का चरित्र अधिक लज्जास्पद है। पशु भी अपनी सन्तानो को नही खाते; जगली एव असभ्य लोग भी अपने परिवार के साथ युद्ध नही करते। इसलिए यदि उपर्युक्त सम्बन्ध सत्य है तो वह ब्रिटेन के लिए लज्जा की बात है। किन्तु या तो यह सत्य नही है, और सत्य भी है तो अशतः। राजा तथा उनके चाटुकारो ने, पोप के समान, मानवी मस्तिष्क की श्रद्धात्मक निर्बलता पर अनुचित प्रभाव डालने के अभिप्राय से 'मातृ-देश' अथवा 'मातृ-पितृ-देश' जैसे शब्दो को छलपूर्वक गढ लिया है। इगलैण्ड नही, वरन् यूरोप अमेरिका का पितृ-देश है। यह नयी दुनिया यूरोप के प्रत्येक अश से आने वाले नागरिक एव धार्मिक स्वतन्त्रता के पीडित प्रेमियों के लिए प्रश्रय रही है। वे माँ की कोमल गोद मे से नही, वरन् राक्षस के अत्याचार से पीडित होकर यहाँ भागकर आये हैं, और इगलैण्ड के बारे में यहाँ तक सत्य है कि जिन अत्याचारो ने, सर्वप्रथम. कुछ लोगो को देश छोड़कर

विदेश में जाकर बसने के लिए विवश किया, वे अभी भी उनके वंशजो का पीछा कर रहे हैं।

पृथ्वी के इस विशाल कक्ष में, हम तीन सौ साठ मिल की विस्तार-सीमा (अर्थात् इगलैण्ड की विस्तार-सीमा) को भूल जाते हैं, और अपेक्षाकृत बड़े परिमाण में मैत्री स्थापित करते हैं। हम यूरोप के प्रत्येक ईसाई के साथ वन्धुत्व स्वीकार करते हैं और भावो की उदारता में गौरव का अनुभव करते हैं।

यह जान लेना वडा मनोरजक है कि विश्व के साथ जब हमारा परिचय बढ़ता है, तब हम किस नियमित क्रम में स्थानीय पक्षपातो या पूर्व धारणाओ की प्रभाव-सीमा से बाहर निकलते हैं। मुहल्लो में विभक्त इगलैण्ड के किसी नगर में उत्पन्न व्यक्ति स्वभावतः अन्य टोलो के मनुष्यो के साथ सम्पर्क स्थापित करेगा; क्योंकि कई स्थितियो में उनके हित समान होगे, और वह उन्हें पड़ोसी कहेगा। यदि वह उस नगर से कुछ ही मील दूर ऐसे किसी पडोसी से मिलता है, तो सड़क या गली के सकीर्ण विचार को छोडकर वह उसे अपने नगर का व्यक्ति कहेगा और उसका अभिवादन करेगा। यदि वह अपने प्रान्त के अतिरिक्त अन्य किसी प्रान्त में उससे मिलता है, तो वह 'नगर' या 'सड़क' के क्षुद्र अन्तर को भूलकर उसे अपने प्रान्त का निवासी या देशवासी कहकर पुकारेगा। किन्तु यदि वे फ्रांस या यूरोप के किसी अन्य भाग में मिलें तो उनके स्थानगत भेद लुप्त हो जायँगे, और वे एक दूसरे को इंगलैण्ड-निवासी के रूप में देखेंगे। ठीक इसी प्रकार अमेरिका में आकर मिलने वाले सभी यूरोप के अथवा पृथ्वी के अन्य किसी अंश के निवासी एक देश के रहने वाले हैं। जिस प्रकार छोटे परिमाण मे सड़क, नगर एव प्रान्त आदि के भेद हैं उसी प्रकार बृहद् परिमाण में सम्पूर्ण के समक्ष इगलैण्ड, हालैण्ड, जर्मनी और स्वेडेन आदि का स्थान है। यह भेद महाद्वीपीय मस्तिष्क के लिए अधिक संकीर्ण है। अमेरिका की सम्पूर्ण जनसख्या का, और इस पेंसिलवेनिया प्रान्त की आबादी का भी, तृतीयाश इंगलैण्ड की संतान नही है। इसलिए केवल ब्रिटेन को 'मातृ-देश या पितृ-देश' कहना झूठा, स्वार्थपूर्ण, सकीर्ण एवं अनुदार कथन है और मैं इसे अस्वीकार करता हूँ।

किन्तु, यदि यह मान लिया जाय कि हम सब इंगलैण्ड की संतान हैं तो

इसका क्या अर्थ हुआ ? कुछ नहीं। इस समय हमारा शत्रु होने के कारण ब्रिटेन ने अपने सभी 'नाम और पद' नष्ट कर दिये हैं, और यह कहना नितान्त हास्यास्पद है कि समझौता कर लेना हमारा कर्तव्य है। इंगलैण्ड के राजाओ की वर्तमान परम्परा का प्रथम राजा (विजयी विलियम) एक फ्रासीसी था, और इंगलैण्ड के आधे कुलीन उसी देश के वशज हैं। अस्तु, तर्क की उसी पद्धति के अनुसार इगलैण्ड को फ्रास के द्वारा शासित होना चाहिए।

इगलैण्ड और उपनिवेशो की सयुक्त शक्ति के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है; यहाँ तक कहा गया कि सम्मिलित रूप से वे सारे विश्व को युद्ध की चुनौती दे सकते हैं। किन्तु यह अनुमान मात्र है। युद्ध का परिणाम अनिश्चित होता है। ऐसे उद्गारो का कोई अर्थ भी नही होता। क्योकि एशिया, अफ्रीका या यूरोप में ब्रिटिश सेना की सहायता के लिए अपने निवासियो का नाश करना अमेरिका नही चाहेगा।

हमें विश्व को चुनौती देने की आवश्यकता भी क्या है ? हमारा काम वाणिज्य है, और यदि उसका सम्यक् निर्वाह हो सका तो इसके द्वारा हमें समस्त यूरोप की मैत्री और शान्ति प्राप्त हो सकेगी, क्योकि अमेरिका के साथ स्वतत्र व्यापार करने में यूरोप के सभी देशो को लाभ है। अमेरिका का व्यापार ही उसकी सुरक्षा है और सोने तथा चाँदी का न होना आक्रमणकारियो से बचाव है।

समझौते के कट्टर समर्थकों को मेरी चुनौती है कि वे ग्रेट-ब्रिटेन से सम्बन्धित होने पर इस महाद्वीप को होने वाले एक भी लाभ को बतावे। मैं अपनी चुनौती को दुहराता हूँ। समझौते से एक भी लाभ नही प्राप्त होगा। यूरोप के किसी भी बाजार में हमारे गल्ले बिकेंगे और हम चाहे जहाँ से माल मँगावें, हम उसका मूल्य दे सकेंगे।

किन्तु इगलैण्ड के साथ उस सम्बन्ध के द्वारा हमारी जितनी क्षतियाँ हुई हैं, वे असख्य हैं। सामान्य रूप से मानव-जाति के प्रति तथा विशिष्ट रूप से अपने प्रति, हमारा जो कर्तव्य है वह हमें उस सम्बन्ध को त्याग देने की शिक्षा देता है; क्योकि ब्रिटेन के किसी प्रकार के आधिपत्य को स्वीकार करना प्रत्यक्ष रूप से इस महाद्वीप को यूरोप के लडाई-झगडो में फँसा देने की ओर प्रवृत्त कराना है। हमारा यह कार्य हमें उन राष्ट्रो के विरोध में खड़ा कर देगा, जो अन्य

स्थिति में हमारी मित्रता के इच्छुक रहते और जिनके प्रति हमें न क्रोध है, न कोई शिकायत। हमारे वाणिज्य के लिए सारा यूरोप बाजार है। अतः इसके अंश-विशेष के साथ हमें कोई पक्षपातपूर्ण सम्बन्ध नही स्थापित करना चाहिए। यूरोपीय झगड़ो से मुक्त होकर अपना मार्ग निर्धारित करने मे अमेरिका का वास्तविक हित है; और जब तक ब्रिटेन पर अपनी निर्भरता के कारण अमेरिका ब्रिटिश राजनीति की तुला पर सन्तुलन-शक्ति के रूप में है, तब तक ऐसा करना उसके लिए सम्भव नही है।

यूरोप इतना घना है कि उसके राज्य अधिक समय तक शान्तिपूर्वक नही रह सकते। जब कभी इंगलैण्ड और अन्य किसी विदेशी शक्ति के बीच युद्ध छिड़ता है तो ब्रिटेन के सम्बन्ध के कारण अमेरिका का व्यापार नष्ट हो जाता है। सम्भव है कि दूसरा युद्ध पहले युद्ध के समान न हो; उस स्थिति में समझौते के समर्थक अलग हो जाने के लिए इच्छुक होगे। क्योकि उस दशा में तटस्थ नीति जहाजी बेडे से अधिक सुरक्षात्मक होगी। मृतकों के रक्त और प्रकृति के करुण स्वर पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि यह विच्छेद का समय है। सर्वशक्तिमान ईश्वर ने अमेरिका को इंगलैण्ड से जितनी दूरी पर स्थित किया है, वह भी इस बात का प्राकृतिक प्रमाण है कि ऐसा करने में प्रभु की इच्छा यह नही थी कि एक देश दूसरे पर शासन करे। इसी प्रकार इस महाद्वीप का अन्वेषण-काल उपर्युक्त तर्क को बल प्रदान करता है, और जिस प्रकार यह महाद्वीप आबाद हुआ उससे भी इसी का समर्थन होता है। धार्मिक-सुधार के पूर्व अमेरिका का पता लगा; मानों प्रभु ने कृपा करके उन पीड़ित लोगों के लिए आश्रय प्रस्तुत कर दिया, जिनको अपना घर न तो मैत्रीपूर्ण रहा और न सुरक्षात्मक।

इस महाद्वीप के ऊपर ग्रेट ब्रिटेन का प्रभुत्व एक ऐसी सरकार के रूप में है जिसका अन्त एक-न-एक दिन अवश्यम्भावी है। एक विचारशील एवं गम्भीर मस्तिष्क यह जानकर कोई आनन्द नही प्राप्त कर सकता कि दुःखद एवं निश्चित विश्वास के साथ जिसे वह वर्तमान संविधान कहता है, वह केवल अस्थायी है। हम यह जानते हैं कि यह सरकार इतने पर्याप्त समय तक रहने वाली नहीं है कि उसके द्वारा हमें ऐसा कुछ प्राप्त हो सके जिसे हम अपनी सन्तानों के लिए छोड़ जाय। अतः माता-पिता के रूप में हमें कोई आनन्द

नही मिल सकता। साधारण-सी बात है कि यदि हम भावी पीढी के ऊपर ऋण का भार लाद रहे हैं तो हमे उनके योग्य काम भी करना चाहिए, अन्यथा हम उनके साथ क्षुद्र एव दयनीय व्यवहार कर रहे हैं। अपने कर्तव्य-मार्ग को ठीक-ठीक निर्धारित करने के लिए हमे अपनी सन्तानो के हित का विचार करना चाहिए, और जीवन में अपने कार्य-काल को अपेक्षाकृत कुछ और वर्षों तक बढा देना चाहिए। ऐसा करने से हमें उस लक्ष्य का स्पष्ट दर्शन होगा जिसे कुछ वर्तमान भय और पूर्वधारणाओ ने छिपा रखा है।

यद्यपि मैं अनावश्यक दोषारोपण करना नही चाहता हूँ, फिर भी मुझे विश्वास हो चला है कि समझौते के सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले सभी व्यक्ति चार प्रकार के हो सकते है। प्रथम वे स्वार्थी व्यक्ति, जिन पर विश्वास नही किया जा सकता ; दूसरे वे निर्बल मनुष्य, जो कुछ सोच-समझ नही सकते; तीसरे वे व्यक्ति, जो अपनी पूर्वधारणाओ के कारण विचार ही नही करेंगे और चौथे, वे नम्र और मध्यम मार्ग का अवलम्बन करने वाले व्यक्ति हैं, जो यूरोप के बारे में, आवश्यकता से अधिक सोचते हैं। ये अतिम प्रकार के व्यक्ति अपने अविवेक के कारण इस महाद्वीप के लिए उपर्युक्त अन्य प्रकार के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक अनिष्टकर सिद्ध होगे।

बहुतो के लिए यह भाग्य की बात है कि वे दुःखपूर्ण दृश्यो से दूर हैं। उन्हें इस बात का अनुभव नही हो सकता कि अमेरिका की सम्पूर्ण सम्पत्ति किस अनिश्चित एव सकटपूर्ण स्थिति मे है। किन्तु बोस्टन (Bostan) के बारे में विचार कीजिए। उसकी दुर्गति हमे शिक्षा देगी कि हम उस सरकार का परित्याग कर दे जिस पर हमें कोई विश्वास नही है। उस अभागे नगर के नागरिक कुछ मास पूर्व शान्ति और समृद्धि का उपभोग कर रहे थे, किन्तु इस समय घर बैठ कर भूखो मरने अथवा बाहर जाकर भीख माँगने के अतिरिक्त उनके लिए कोई चारा नही है। यदि वे नगर मे रहते हैं तो उनके लिए मित्रो के क्रोध का सकट है और यदि वे नगर को छोडते हैं तो सैनिको द्वारा लूट लिये जाते हैं। अपनी वर्तमान स्थिति मे वे ऐसे बन्दी है, जिनके उद्धार की कोई आशा नही है। उनकी मुक्ति के लिए किये गये सार्वजनिक आक्रमण के समय, वे दोनो सेनाओ के तीव्र कोप के पात्र होगे।

कुछ सहिष्णु प्रकृति के व्यक्ति ग्रेट ब्रिटेन के अपराधो पर हलके ढग से

विचार करते हैं और भविष्य में उनसे अच्छे व्यवहारों की आशा करते हैं। ये व्यक्ति तत्परतापूर्वक कहते हैं कि हम लोग पुन मित्र के रूप में रहेंगे। किन्तु मानव-जाति के भावों और अनुभूतियो की परीक्षा कीजिए; समझौते के सिद्धान्त को प्रकृति की कसौटी पर रखिए, और फिर यह बतलाइए कि क्या आप, भविष्य में उस शक्ति को प्यार करेंगे और सम्मान देंगे अथवा विश्वास-पूर्वक उसकी सेवा करेंगे, जिसने आपके देश में विनाश का दृश्य प्रस्तुत किया है ? यदि आप यह सब नही कर सकते तो आप अपने को धोखा दे रहे हैं, और विलम्ब करके अपनी संतानों का विनाश कर रहे है। जिसे आप न प्यार करते हैं न सम्मान देते हैं, उस ब्रिटेन के साथ आपका भावी सम्बन्ध बलपूर्वक थोपा हुआ तथा अप्राकृतिक होगा। केवल वर्तमान सुविधा पर आधारित होने के कारण, थोडे ही समय में, वह अपेक्षाकृत अधिक बुरी स्थिति को प्राप्त होगा। किन्तु यदि आप फिर भी कहे कि मैं सम्बन्ध विच्छेद नही करूंगा, तो मैं पूछता हूँ कि क्या आपका घर जलाया गया है ? क्या आपके सम्मुख आपकी सम्पत्ति नष्ट की गयी है ? क्या आपके बाल-बच्चे दाने-दाने को तरसने के लिए विवश किये गये हैं ? क्या आपके माता-पिता या बच्चे उन लोगो के द्वारा मारे गये हैं और इस प्रकार विनष्ट एव आपदग्रस्त केवल आप बच गये हैं ? यदि आप कहते हैं कि 'नहीं' तो आप उन लोगो के न्यायकर्ता नही हैं जिनके ऊपर विपत्ति के बादल फटे हैं। यदि आपका उत्तर स्वीकारात्मक है, और फिर भी आप हत्यारो के साथ मिलने के लिए तत्पर हैं, तो आप पति, पिता, मित्र या प्रेमी होने के योग्य नही हैं; जीवन में आप चाहे किसी पद पर अथवा किसी वर्ग के हों, आपका हृदय कायर का है और आपकी आत्मा चाटुकारो की है।

इस प्रकार की बातें करके मैं न तो विषय को उत्तेजना प्रदान कर रहा हूँ, और न उसका वास्तविकता से अधिक वर्णन कर रहा हूँ; किन्तु उन अनुभूतियो और स्नेह-सम्बन्धों के आधार पर उसकी परीक्षा कर रहा हूँ, जिन्हें प्रकृति उपयुक्त ठहराती है, और जिसके बिना हम सामाजिक जीवन के कर्तव्यों के पालन अथवा उसके आनन्द के उपभोग के लिए सर्वथा अयोग्य हैं। प्रतिक्रिया को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से भय प्रदर्शित करना मेरा अभिप्राय नही है। मैं चाहता हूँ कि हम सब प्राणघातक और पौरुषहीन निद्रा से जाग जायें

और दृढतापूर्वक किसी निश्चित उद्देश्य की ओर अग्रसर हों। यदि अमेरिका अपनी भीरुता और दीर्घसूत्रता से स्वय को न जीते, तो उसे जीतना ब्रिटेन या यूरोप के वश की बात नही है। वर्तमान जाड़े के समय को यदि ठीक उपयोग किया जाय तो यही उपयुक्त अवसर है, और यदि इसे खो दिया गया या इसकी उपेक्षा की गयी तो सम्पूर्ण महाद्वीप दुर्भाग्य का भागी होगा। यदि कोई व्यक्ति इतने बहुमूल्य और उपयोगी समय को नष्ट करने का साधन बनता है, तो चाहे वह कोई भी हो, किसी भी पद पर हो अथवा कही भी हो, उसे जो कुछ दण्ड दिया जायगा वह थोडा होगा।

यह महाद्वीप अधिक दिनो तक किसी विदेशी शक्ति के आधीन रहेगा, यह मान लेना तर्क, सृष्टि की वस्तु-व्यवस्था तथा पूर्व युगो के सभी उदाहरणो के विरुद्ध होगा। ब्रिटेन के सर्वाधिक आशावादी व्यक्ति भी ऐसा नही सोचते। मानव का सम्पूर्ण बुद्धिवैभव सम्बन्ध-विच्छेद के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी योजना नही प्रस्तुत कर सकता, जो वर्ष पर्यन्त भी इस महाद्वीप की सुरक्षा का विश्वास दिला सके। समझौता, वर्तमान स्थिति में, एक भ्रान्त स्वप्न है। प्रकृति ने उस सम्बन्ध को त्याग दिया है। कला प्रकृति का स्थान नहीं ले सकती। मिल्टन ने बुद्धिमत्तापूर्वक कहा है कि जहाँ घृणा के प्राणनाशक घाव अधिक गहरे हो, वहाँ वास्तविक समझौता स्थापित नही हो सकता।

शान्ति-स्थापना के सभी शान्त उपाय व्यर्थ सिद्ध हो चुके हैं। हमारी प्रार्थनाएँ घृणा के साथ ठुकरा दी गयी हैं और उन्होने हमे यह मानने के लिए विवश किया है कि बार-बार की गयी प्रार्थनाओं के समान और कोई भी कार्य राजाओ के मिथ्याभिमान को प्रसन्न और उनके हठ को दृढ नहीं करता। हमारी बार-बार की प्रार्थनाओ ने यूरोप के राजाओ को जितना निरकुश बनाया है उतना हमारे अन्य किसी कार्य ने नही। डेनमार्क और स्वेडेन को देखिए। इस समय युद्ध के अतिरिक्त और कोई उपाय काम नही करेगा। अतः हम लोग अतिम रूप से सम्बन्ध विच्छेद कर लें और 'माता-पिता' तथा 'सतति' के भ्रष्ट एव अर्थ-हीन नामो के अन्तर्गत अपना गला घोटने के लिए भावी पीढी को न छोड़ें।

यह कहना कि भावी पीढियाँ सम्बन्ध विच्छेद का प्रयत्न नही करेंगी, व्यर्थ और काल्पनिक है। स्टैम्प अधिनियम (Stamp Act) के भग होने के

अवसर पर हमने कुछ इसी प्रकार की बात सोची थी, किन्तु एक या दो वर्षों में वह धोखा प्रकट हो गया। क्या हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक बार का विजित राष्ट्र फिर कभी युद्ध नही करेगा ?

जहाँ तक सरकार के कार्यों का प्रश्न है, ब्रिटेन के वश की बात नहीं है कि वह अमेरिका के साथ न्याय करे। अमेरिका के कार्य शीघ्र ही इतने भारी और जटिल होंगे कि हमसे इतनी दूरी पर स्थित एव हमसे अपरिचित लोगो द्वारा, सामान्य रूप से भी, हमारे कामो का प्रबन्ध नही हो सकेगा। जिस प्रकार वे हमें जीत नही सकते, उसी प्रकार वे हम पर शासन भी नही कर सकते। एक सवाद या प्रार्थना-पत्र लेकर तीन या चार सहस्र मील बराबर दौड़ना, उत्तर के लिए चार या पाँच महीनो तक प्रतीक्षा करना, और उत्तर प्राप्त होने पर भी पाँच या छ. महीनो तक उसका स्पष्टीकरण होना, आदि कार्य कुछ ही वर्षों में मूर्खतापूर्ण माने जायेंगे। एक समय था जबकि यह सब उचित था। अब इसके समाप्त हो जाने का अवसर आ गया है।

बड़े-बड़े साम्राज्यों के अतर्गत, उचित रूप से, वे ही द्वीप सम्मिलित किये जाने चाहिए, जो छोटे हैं और अपनी सुरक्षा करने में असमर्थ हैं। किन्तु एक महाद्वीप पर एक द्वीप का शाश्वत शासन मान लेना महान मूर्खता है। प्रकृति ने किसी भी स्थिति में, अपने मूलग्रहों की अपेक्षा उपग्रहों को बड़ा नही बनाया है। जहाँ तक आपस के सम्बन्धो का प्रश्न है, इगलैण्ड और अमेरिका ने प्रकृति के इस सामान्य क्रम को उलटा कर दिया है। यह स्पष्ट है कि वे भिन्न-भिन्न पद्धतियो के हैं। इगलैण्ड का सम्बन्ध यूरोप से है और अमेरिका का सम्बन्ध स्वयं से।

विच्छेद और स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार करने में मैं किसी अभिमान, दल अथवा क्रोध के द्वारा प्रेरित नही हूँ। मेरा अन्तःकरण स्पष्ट एव निश्चित रूप से यह विश्वास करता है कि इसी में इस महाद्वीप का सच्चा हित है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी कार्य फटे वस्त्रो को सिलाई द्वारा जोड़ देने के काम के समान ही होगा। उसके द्वारा कोई स्थायी आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। इस प्रकार हम अपने बच्चो के हाथ में तलवार उठाने का कार्य छोड़ रहे हैं, और हम उस समय पीछे हट रहे हैं जबकि हमारा थोड़ा-सा प्रयत्न इस महाद्वीप को पृथ्वी पर गौरव प्रदान कर देता।

ब्रिटेन ने समझौते के लिए स्पष्ट रूप से थोडी भी इच्छा व्यक्त नही की है। इसलिए यह निश्चित है कि समझौते की शर्तें इस महाद्वीप के स्वीकार करने योग्य नही होगी अथवा हमारे जन और धन की जो क्षति हुई है, उसके अनुरूप हमें इस समझौते के द्वारा कुछ नही प्राप्त हो सकता।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के लिए किये गये व्यय के बीच उचित अनुपात होना चाहिए। हमने जो लाखो का व्यय किया है उसके सामने 'नार्थ' (North) अथवा उसके सम्पूर्ण घृणास्पद गुट को हटा देने का मूल्य कुछ नही है। कुछ अवाछनीय अधिनियमो (Acts) को भग करना ही लक्ष्य रहा होता तो उसके लिए केवल व्यापार को अस्थायी रूप से बन्द कर देना पर्याप्त था, किन्तु केवल घृणास्पद मत्रिमण्डल के विरुद्ध सारे महाद्वीप का शस्त्र उठा लेना, प्रत्येक व्यक्ति का सेनानी बन जाना, कदाचित् ही उचित कहा जाय। यदि हमने अब तक जो सघर्ष किया है, वह केवल कुछ अधिनियमो को भग करने के लिए ही, तो निश्चित रूप से यह सौदा महँगा है। जिस प्रकार मैंने यह बराबर सोचा है कि इस महाद्वीप का स्वतन्त्र होना एक ऐसी घटना है जो निकट या दूर भविष्य मे होकर ही रहेगी, उसी प्रकार मैं यह भी मानता हूँ कि अमेरिका इस तीव्र गति के साथ परिपक्वता की ओर अग्रसर हो रहा है कि वह घटना दूर नही हो सकती। इसलिए शत्रुता के आरम्भ-काल में उस विषय पर झगड़ा करना उपयुक्त नही था, जिसे अन्त में समय स्वय ठीक कर देता। जो काम स्वय होने वाला है उसके लिए इतना बडा सघर्ष करना बुद्धिमानी की बात नही है। १९ अप्रैल १७७५ ई. के पूर्व तक मुझसे अधिक कोई व्यक्ति समझौते के लिए इच्छुक नही था। किन्तु, जिस क्षण उस प्राणघातक दिन की घटना प्रकाश मे आयी, मैंने उस कठोर तथा हठी प्रकृति वाले इगलैण्ड के राजा को सदा के लिए अस्वीकार कर दिया। मै उस दुष्ट का तिरस्कार करता हूँ, जो प्रजा के पिता की छलपूर्ण पदवी के साथ जनता की हत्याओ को निर्दयता से सुन लेता है और उसके रक्त से अपनी आत्मा को सतुष्ट करके शान्तिपूर्वक सो सकता है।

किन्तु मान लीजिए समझौता हो गया, फिर क्या होगा ? उत्तर मैं देता हूँ— महाद्वीप का विनाश। निम्नाकित कारणो के बल पर मैं ऐसा कह रहा हूँ।

शासन के अधिकार राजा के हाथ में रहेगे और उसे इस महाद्वीप के विधान-

मण्डल के ऊपर निषेधाधिकार प्राप्त होगा। आज उसने अपने को स्वतंत्रता का चिर-शत्रु सिद्ध किया है और निरंकुश अधिकार की अत्यधिक लिप्सा का प्रदर्शन किया है। तो क्या आप समझते हैं कि वह उपनिवेशों से यह नहीं कह सकता कि तुम लोग कोई ऐसा कानून नहीं बना सकते, जिसे मैं स्वीकार न करूँ?

क्या अमेरिका का कोई निवासी ऐसा है, जो इतना भी नहीं जानता कि जिसे हम वर्तमान संविधान कहते हैं उसके अनुसार यह महाद्वीप राजा की स्वीकृति के बिना कोई नियम नहीं बना सकता? अथवा क्या कोई व्यक्ति इतना मूर्ख है कि यहाँ अब तक जो कुछ हुआ है उसे ध्यान में रखते हुए वह इतना भी नहीं समझ सकता कि राजा ऐसे किसी नियम को नहीं बनाने देगा जिससे उसका अभिप्राय न सधे। अमेरिका में नियमों के अभाव के कारण हम जितनी सफलता के साथ दास बनाये जा सकते हैं, इंगलैण्ड में बने हुए नियमों को स्वीकार करके भी हम उसी रूप में दास बनाये जा सकते हैं। समझौता हो जाने के बाद क्या इस बात में शंका है कि राजा अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ इस महाद्वीप को यथासम्भव क्षुद्र और दीन बनाने में प्रयत्नशील न होगा? उन्नति के बदले हमारी अवनति होगी। हम बराबर झगड़ा करते रहेंगे अथवा प्रार्थना करते रहेंगे। राजा हम लोगों को जितना बड़ा बनाने की इच्छा करता है, हम लोग उससे बड़े हैं। क्या अब से, वह हम लोगों को छोटा बनाने का प्रयत्न नहीं करेगा? सौ बात की एक बात, जिसे हमारी उन्नति से ईर्ष्या है उस शक्ति को क्या हम पर शासन करना चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर में जो कहता है—'नहीं', वह वास्तव में स्वतन्त्र है; क्योंकि स्वतन्त्रता का अर्थ इससे अधिक क्या हो सकता है कि अपने नियम हम स्वयं बनावें, न कि इस महाद्वीप का सबसे बड़ा शत्रु-राजा हम लोगों से कहे कि मेरी इच्छा के अतिरिक्त दूसरा कोई नियम नहीं होगा। कहा जा सकता है कि इंगलैण्ड में भी राजा को निषेधाधिकार प्राप्त है। वहाँ की जनता उसकी स्वीकृति के बिना नियम नहीं बना सकती। अधिकार और व्यवस्था के सम्बन्ध में यह नितान्त हास्यास्पद है कि इक्कीस वर्षीय युवक अपने से बुद्धिमान और वयोवृद्ध लाखों मनुष्यों से कहे (ऐसा कई बार हुआ भी है) कि तुम अमुक नियम नहीं बना सकते। यद्यपि मैं इसकी मूर्खता का प्रकाशन निरन्तर करता रहूँगा; किन्तु इस स्थल पर मैं इस प्रकार का उत्तर न देकर केवल इतना कहना

चाहता हूँ कि इगलैण्ड तो राजा की निवास-भूमि है पर अमेरिका नही। अत. दोनो की स्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं। राजा के निषेधाधिकार इगलैण्ड की अपेक्षा अमेरिका के लिए दस गुने भयानक और प्राणघातक है; क्योकि वह किसी ऐसे विधेयक (Bill) को अस्वीकृत नही करेगा जिसके कारण, सुरक्षा की दृष्टि से, इंगलैण्ड की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट हो। अमेरिका में इस प्रकार के प्रस्ताव को वह स्वीकार नही करेगा।

ब्रिटेन की राजनैतिक व्यवस्था में अमेरिका का स्थान केवल गौण है। इगलैण्ड इस देश का हित उतना ही सोचता है जितने से उसका अभिप्राय सिद्ध होता है। इसलिए जहाँ कही हमारी प्रगति से उसके हितो की वृद्धि नही होती, अथवा जहाँ कही हमारी प्रगति उसकी स्वार्थ-सिद्धि में थोडी भी बाधा पहुँचाती है, वहाँ उसका स्वार्थ उसे हमारी उन्नति को रोकने के लिए प्रेरित करता है। अब तक जो कुछ हुआ है उससे यह स्पष्ट है कि इस प्राचीन सरकार के अतर्गत शीघ्र ही यह देश एक साधारण राज्य बन जायगा। नाम-परिवर्तन से शत्रु मित्र नही बन जाते। यह बताने के लिए कि इस समय समझौते का सिद्धान्त कितना भयानक है, मै पूर्ण निश्चय के साथ कहता हूँ कि अमेरिका के इन प्रान्तो के शासन में अपने को पुनः स्थापित करने तथा शक्ति एवं हिंसा के द्वारा थोडे-से समय में जो कार्य वह नही कर सकता, उसे सूक्ष्म बुद्धि द्वारा पूरा करने के लिए कुछ नियमो को भग कर देना राजा की नीति होगी। समझौता और विनाश प्राय. परस्पर सम्बद्ध हैं।

इस समय समझौते द्वारा जो कुछ सुन्दरतम फल प्राप्त होगा, वह मात्र अस्थायी योजना होगी अथवा सरक्षक के रूप में एक ऐसी सरकार होगी, जो उपनिवेशो के प्रौढ होने तक ही टिकेगी। इसलिए, इस कालावधि में वस्तुओ की स्थितियाँ और स्वरूप सामान्यतः अनिश्चित एव अनुज्ज्वल रहेगे। विदेश से आने वाले सम्पन्न व्यक्ति ऐसे किसी देश में बसना नही चाहेगे जिसकी सरकार का स्वरूप अनिश्चित है तथा जो प्रत्येक दिन विप्लव एव अव्यवस्था की ओर लुढ़कता जा रहा है। दूसरी ओर, यहाँ के वर्तमान निवासी इस अवसर का उपयोग अपनी सम्पत्ति को बेचने तथा इस महाद्वीप को छोड़ने में करेंगे।

किन्तु सबसे अधिक ठोस तर्क यह है कि केवल स्वातत्र्य, अर्थात् सरकार का महाद्वीपीय स्वरूप, ही शान्ति स्थापित कर सकता है और गृह-युद्धो से

इसकी रक्षा कर सकता है। मैं इस समय ब्रिटेन के साथ समझौते से डरता हूँ; क्योंकि इस बात की अधिक सम्भावना है कि समझौते के बाद, कहीं-न-कहीं, ऐसा विद्रोह होगा जिसके परिणाम ब्रिटेन के द्वेष की अपेक्षा कहीं अधिक प्राण-घातक होंगे।

ब्रिटेन की क्रूरता से सहस्त्रों नष्ट हो चुके हैं (और इसी प्रकार कदाचित् सहस्त्रो नष्ट होंगे)। उनकी अनुभूतियाँ हमारी अनुभूतियों से भिन्न हैं, क्योंकि हम लोग उनके समान पीड़ित नही हुए हैं। इस समय उनके पास सम्पत्ति के रूप मे यदि कुछ है तो वह स्वतंत्रता है। पहले उनके पास जो कुछ था, वह उसी स्वतन्त्रता की सेवा में चढ गया। अब, खोने के लिए उनके पास कुछ नही है। अतः वे आधीनता का तिरस्कार करते हैं। इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश सरकार के प्रति उपनिवेशो की सामान्य प्रकृति ठीक उस युवक की प्रकृति के समान होगी, जो प्रायः अपने युग के अनुकूल नही है। वे इंगलैण्ड की बहुत कम परवाह करेंगे। जो सरकार शान्ति-रक्षा नही कर सकती, वह वस्तुतः सरकार नहीं है, और उस स्थिति में हम उसका भार-वहन व्यर्थ ही करते हैं। ब्रिटेन की शक्ति पूर्णतः कागजो पर निर्भर है। अत., यदि समझौते के दूसरे दिन ही देश में विप्लव मच जाए, तो ब्रिटेन क्या कर सकता है? बिना सोचे-विचारे कुछ व्यक्ति कहते हैं कि स्वतन्त्र हो जाने पर गृह-युद्ध की सम्भावना है, इसलिए स्वतन्त्रता भयकारक है। हमारे प्रथम विचार कदाचित् ही सही होते हैं। इन व्यक्तियों के विषय मे भी यही बात चरितार्थ होती है। स्वतन्त्रता की अपेक्षा समझौते मे दसगुना भय है। मैं पीड़ितों की स्थिति को अपनी स्थिति मानता हूँ, और दृढता के साथ कहता हूँ कि यदि मुझे घर से निकाल दिया गया होता तो घावो का अनुभव करने वाला मनुष्य होने के नाते, मैं समझौते के सिद्धान्त को कदापि नहीं चाहता और अपने को उससे बँधा हुआ नही मानता।

उपनिवेशो ने महाद्वीपीय सरकार के प्रति आज्ञाकारिता और सुन्दर व्यवस्था की भावना का ऐसा प्रदर्शन किया है कि प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को उसके कारण प्रसन्नता होगी। इसलिए यदि कोई व्यक्ति स्वतन्त्रता से भयभीत होने का अन्य कारण निर्दिष्ट करता है, अर्थात् यह कहता है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति पर एक उपनिवेश दूसरे से श्रेष्ठ होने का प्रयत्न करेगा, तो यह उसका केवल कल्पना होगा। जहाँ कोई भेद नहीं है, वहाँ कोई श्रेष्ठता नहीं हो सकती।

पूर्ण समानता किसी प्रकार का प्रलोभन नही उत्पन्न करती। यूरोप के जनतत्रीय देश शातिपूर्वक हैं और रहेगे। हालैण्ड और स्वीट्ज़रलैण्ड, गृह तथा विदेशी, सब प्रकार के युद्धो से मुक्त हैं। राजतन्त्रीय देश अधिक दिनों तक शान्तिपूर्वक नही रह सकते। स्वय राजमुकुट देश के साहसी लुटेरों के लिए एक प्रलोभन है। राजाओ के चिर सहचर अभिमान तथा हठ धीरे-धीरे इतने बढ़ जाते हैं कि विदेशी-शक्तियो के साथ उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है; किन्तु यदि उनके स्थान पर, उनकी अपेक्षा अधिक प्राकृतिक सिद्धान्तो पर स्थापित, जनतन्त्रीय सरकारे हो तो वे उस भूल को सुधार लेती हैं।

यदि स्वतन्त्रता से डरने का कोई वास्तविक कारण है तो वह यह है कि अब तक कोई योजना निर्धारित नही हो सकी है। मनुष्यो को अपना मार्ग ज्ञात नही है। अस्तु, उस दिशा में प्रारभिक प्रयत्न-स्वरूप मै निम्नाकित सकेत प्रस्तुत कर रहा हूँ; और इसी समय, बडी नम्रता के साथ इतना कह देना चाहता हूँ कि इन सकेतो के बारे में स्वय मेरा यही मत है कि वे किसी सुन्दरतम योजना को जन्म देने के लिए साधन मात्र हैं, इससे अधिक कुछ नही। यदि सभी व्यक्तियो के अव्यवस्थित विचारो का सकलन किया जाय तो बुद्धिमान और योग्य व्यक्ति उन्हे सुधार कर लाभप्रद बना सकते हैं।

वर्ष में एक बार, केवल एक प्रेसीडेण्ट की अध्यक्षता मे सभाएँ हो। प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत अधिक समान रूप से हो और उन सभाओ के कार्य पूर्णतः घरेलू तथा महाद्वीपीय काग्रेस के आधीन हो।

प्रत्येक उपनिवेश को छ, आठ या दस सुविधाजनक जिलो मे विभक्त कर दिया जाय। प्रत्येक जिला प्रतिनिधियो की उचित सख्या काग्रेस में भेजे, जिससे प्रत्येक उपनिवेश कम-से-कम तीस प्रतिनिधि भेजे। काग्रेस के सदस्यो की पूरी सख्या कम-से-कम ३९० होगी। प्रत्येक काग्रेस बैठकर अपना प्रेसीडेण्ट निम्नलिखित पद्धति से चुने। जब सब प्रतिनिधि मिले, तो चिट्ठी डालकर सम्पूर्ण तेरह उपनिवेशो मे से एक को चुन ले। इसके बाद सब उपनिवेश गुप्त मतदान द्वारा उस निर्वाचित उपनिवेश के प्रतिनिधियो में से एक प्रेसीडेण्ट चुने। दूसरी काग्रेस में, पहली बार जिस उपनिवेश से प्रेसीडेण्ट चुना गया था उसे छोड़कर शेप बारह मे से चिट्ठी डालकर एक को चुना जाय, और फिर यह क्रम तब तक चलता रहे, जब तक तेरहो उपनिवेशो की बारी समाप्त

न हो जाय। इसलिए कि कोई ऐसा नियम न बने जो साधारणतः उचित न हों, कांग्रेस के तीन पंचमांश को बहुमत माना जाय। इस प्रकार की समानता पर प्रतिष्ठित सरकार के अन्तर्गत जो कोई कलह को प्रोत्साहन देगा उसके समान दुष्ट व्यक्ति अन्य कोई न होगा।

किन्तु किसके द्वारा और किस प्रकार इसका आरम्भ हो, यह प्रश्न थोड़ा टेढ़ा है। सर्वाधिक मान्य और संगत बात यह है कि शासन करने वालों और शासित होने वालों, अर्थात् कांग्रेस और जनता के बीच मध्यस्थ के रूप में किसी सभा द्वारा इस कार्य का सम्पादन हो। इसलिए एक महाद्वीपीय परिषद् निम्नांकित पद्धति और अभिप्राय से बुलायी जाय।

उपर्युक्त सम्मेलन में कांग्रेस के छब्बीस सदस्यों की समिति (अर्थात् प्रत्येक उपनिवेश से दो सदस्य), प्रान्तीय सभा या प्रान्तीय परिषद् से दो सदस्य तथा शेष साधारण जनता से पाँच प्रतिनिधि भाग लें, जिनका निर्वाचन प्रत्येक प्रान्त की राजधानी या उसके किसी नगर में, प्रान्त के लिए या उसकी ओर से, चुनाव-कार्य के निमित्त प्रान्त भर के सभी भागों से यथासम्भव संख्या में आये हुए योग्य निर्वाचकों के द्वारा हो। यदि अधिक सुविधा हो तो उस प्रान्त के सर्वाधिक जनसंख्या वाले भागों से ये प्रतिनिधि निर्वाचित हों। इस सम्मेलन में कार्य के दो बड़े सिद्धान्तों अर्थात् ज्ञान और शक्ति का समन्वय होगा। कांग्रेस और प्रान्तीय सभा के सदस्यों को राष्ट्रीय कामों का अनुभव प्राप्त होगा, इसलिए वे योग्य एवं उपयोगी परामर्श दे सकेंगे। सम्पूर्ण सम्मेलन को जनता शक्ति प्रदान करेगी, अतः उसे वास्तविक एवं वैध अधिकार प्राप्त होंगे।

परिषद् के ये सदस्य एक महाद्वीपीय अथवा संयुक्त उपनिवेशों का शासन-पत्र तैयार करें। उस शासन-पत्र के द्वारा, वे कांग्रेस तथा प्रान्तीय सभा के सदस्यों की संख्या और उनके निर्वाचन की पद्धति तथा उसके कार्यारम्भ की तिथि निर्धारित करें; और उनके कार्यों तथा अधिकारों की मर्यादा स्पष्ट करें। वे इस बात का बराबर ध्यान रखें कि हमारी शक्ति महाद्वीपीय है, न कि प्रान्तीय। वे सभी की स्वाधीनता एवं सम्पत्ति की सुरक्षा, और सबसे बढ़कर अन्तःकरण की प्रेरणा के अनुसार धर्मपालन-विषयक स्वतन्त्रता की सुरक्षा की व्यवस्था करें। इन उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त उस शासन-पत्र में और जो आवश्यक समझा जाय, उस सबका समावेश हो। इसके शीघ्र

बाद उपर्युक्त परिषद् भंग कर दी जाय। इस शासन-पत्र के अनुसार चुने गये लोग कुछ काल के लिए इस महाद्वीप के विधायक और शासक होंगे। ईश्वर इस प्रकार की व्यवस्थावाले महाद्वीप की शान्ति और उसके आनन्द की रक्षा करे। तथास्तु।

भविष्य में इस तथा ऐसे कामो के लिए जितने लोग प्रतिनिधि स्वरूप निर्वाचित होगे, उनके लिए मैं राजनीतिवेत्ता ड्रैगोनेट (Dragonetti) के निम्नांकित विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ। 'राजनीतिज्ञो का विज्ञान सुख और स्वतन्त्रता की वास्तविक स्थिति निश्चित करने में है। जो व्यक्ति सरकार की ऐसी पद्धति सोच निकाले, जिससे न्यूनतम राष्ट्रीय व्यय पर सर्वाधिक वैयक्तिक आनन्द की प्राप्ति हो सके, वे युगो की कृतज्ञता के पात्र होगे।'

कुछ लोग कहते हैं कि अमेरिका में राजा कहाँ है ? मैं कहता हूँ कि वह स्वर्ग से शासन करता है और ब्रिटेन के निर्दयी राजा के समान मानव-जाति का विनाश नही करता। फिर भी लौकिक सम्मान में भी हम लोग कम न रहें, इसलिए उस शासन-पत्र की घोषणा के लिए एक पवित्र दिन निश्चित कर लें। उस दिन दैवी नियम पर आधारित उस शासन-पत्र को लाया जाय और उस पर एक मुकुट रखा जाय ताकि सारा विश्व यह जान ले कि जहाँ तक राजतन्त्र-विषयक हमारी मान्यता है, अमेरिका में नियम राजा है। निरंकुश राजतन्त्र में राजा नियम होता है, इसलिए स्वतन्त्र देशो में नियम को राजा होना चाहिए। वहाँ किसी दूसरे राजा की आवश्यकता नही है। किन्तु, इस विचार से कि भविष्य में उस मुकुट का किसी प्रकार का दुरुपयोग न होने लगे, उत्सव के अन्त में मुकुट को तोड़कर उस जनता में बिखेर दिया जाय जिसके प्रभुत्व का वह प्रतीक है।

हमारी निजी सरकार हमारा प्राकृतिक अधिकार है। यदि कोई मनुष्य मानवीय व्यवहारो की अनिश्चितता पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे, तो वह इस बात को अवश्य स्वीकार करेगा कि ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य को समय और अवसर के हाथो न छोडकर, यदि हम उसे सम्पन्न कर सकते हैं तो शात और विचारपूर्ण पद्धति से अपना सविधान बना लेना अत्यधिक बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सुरक्षित कार्य होगा। यदि हम इस समय इस कार्य को छोड देंगे, तो सम्भव है कि बाद में कोई मैसनेलो (Massanello) सामान्य अशान्ति से लाभ

उठाकर कुछ निराश तथा असंतुष्ट व्यक्तियो को एकत्रित कर ले, और शासन-सूत्र अपने हाथो में लेते हुए बाढ के समान महाद्वीप की स्वतन्त्रता को बहा ले जाय। (टाम अनेलो (Anello) या मैसेनेलो (Massenello) नेपुल्स का एक मछुवा था। उस समय नेपुल्स स्पेन के आधीन था। उसने स्पेन के अत्याचारों के विरुद्ध अपने देश की जनता को नगर-चौराहे पर उत्तेजना देकर विद्रोह करने के लिए प्रोत्साहित किया और एक दिन मे वह स्वयं राजा बन बैठा।) यदि अमेरिका पुन. ब्रिटेन के आधीन रहे, तो उसकी डाँवाडोल स्थिति, एक अति साहसी व्यक्ति को अपना भाग्य आजमाने का प्रलोभन होगी। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन क्या सहायता कर सकता है? इसके पूर्व कि वह इस समाचार से अवगत हो, सारा प्राणघातक कार्य सम्पन्न हो जायगा और हम लोग उसी प्रकार पीडित होंगे जिस प्रकार ब्रिटेन के दीन निवासी विजयी विलियम के अत्याचार से पीडित थे। जो लोग, इस समय स्वतन्त्रता का विरोध करते हैं, वे यह नही जानते कि हम क्या कर रहे हैं। सरकार के स्थान को रिक्त रखकर वे लोग शाश्वत अत्याचार को मार्ग दे रहे हैं। लाखों-करोडो व्यक्ति यह सोचते हैं कि इस बर्बर और नारकीय शक्ति को इस महाद्वीप से समाप्त कर देना गौरवास्पद है, जिसने रेड इण्डियनो तथा हबशियो को हमारे विनाश के लिए उत्तेजित किया है।

हमारी बुद्धि जिनपर श्रद्धा करने से हमें रोकती है और सहस्रों घावों से क्षत-विक्षत हमारे स्नेह जिनका तिरस्कार करने की शिक्षा देते हैं, उनके साथ मैत्री करने की बात पागलपन और मूर्खता नहीं तो और क्या है? प्रत्येक दिन हमारे और उनके शेष सम्बन्धो को जीर्ण बनाता जा रहा है, तो क्या इस आशा का कोई कारण हो सकता है कि क्योंकि हमारे सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं इसलिए स्नेह बढेगा या जब हमारे पास झगडे के कई गुने अधिक कारण रहेंगे, तो हमसे पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर समझौता हो सकेगा!

फिर भी जो लोग अनुरूपता और समझौते की बात करते हैं, क्या वे लोग अतीत को लौटा सकते हैं? क्या वे लोग वेश्या-जीवन को उसकी पूर्व-निर्दोषता लौटा सकते है? नहीं, बस; उसी प्रकार, ये लोग इंगलैण्ड और अमेरिका में समझौता भी नहीं करा सकते। अंतिम सम्बन्ध-सूत्र भी इस बार टूट गया है। इंगलैण्ड के लोग हम लोगो के विरुद्ध व्याख्यान दे रहे हैं। कुछ पाप ऐसे होते हैं

जिन्हे प्रकृति क्षमा नही कर सकती। यदि वह क्षमा कर दे तो फिर वह प्रकृति नही रह जायगी। क्या प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ बलात्कार करने वाले व्यक्ति को क्षमा कर सकता है? उसी प्रकार क्या अमेरिका अपने हत्यारे को क्षमा कर दे? उस सर्वशक्तिमान ने सदुद्देश्य के निमित्त हमारे भीतर अक्षम्य अनुभूतियो का कोश निहित कर रखा है। अनुभूतियाँ उस प्रभु की प्रतिमा का संरक्षण करती है; वे हमे सामान्य जीव की कोटि से अलग करती हैं। यदि हम इतने कठोर होते कि हम पर स्नेह-स्पर्शो का प्रभाव न पड़ता, तो हमारे सम्बन्ध टूट जाते और न्याय पृथ्वी पर से समूल नष्ट हो जाता अथवा उसका अस्तित्त्व आकस्मिक होता। हमारी प्रकृति के घाव यदि न्याय करने के लिए हमे उत्तेजित न करे तो लुटेरे और हत्यारे प्राण-दण्ड से बच जायँ।

जो लोग मानव-जाति को प्यार करते हैं, जो न केवल अत्याचार वरन् अत्याचारी का साहसपूर्वक विरोध करते हैं, वे लोग तैयार हो जायँ। प्राचीन विश्व का प्रत्येक स्थल अत्याचार से पीडित है। वसुधा के वक्ष पर सर्वत्र स्वतन्त्रता का पीछा हुआ है। एशिया और अफ्रीका ने बहुत पहले उसे बहिष्कृत कर दिया है। यूरोप उसके साथ अपरिचितो—जैसा व्यवहार कर रहा है और इगलण्ड ने उसे चले जाने के लिए आदेश दिया है। आप लोग उस शरणार्थी का स्वागत कीजिए और उपयुक्त अवसर पर मानवता के लिए प्रश्रय का निर्माण कीजिए।

अमेरिका की वर्तमान योग्यता तथा कुछ विविध विचार

इगलैण्ड और अमेरिका मे मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नही मिला, जिसने यह स्वीकार न किया हो कि इन देशो का सम्बन्ध-विच्छेद एक-न-एक दिन अवश्य होगा। स्वतन्त्रता के लिए अमेरिका की उपयुक्तता और प्रौढता का निरूपण करने के प्रयत्न मे हम जितने कम न्यायशील रहे हैं, उतने किसी अन्य अवसर पर नही रहे।

सभी मनुष्य सम्बन्ध-विच्छेद को स्वीकार करते हैं, और केवल समय के विषय में उनके मत भिन्न हैं। अत. भ्रम-निवारण के निमित्त हम विषय का सामान्य निरीक्षण करे; और यदि हो सके तो उपयुक्त समय का निश्चय करें। किन्तु हमे अधिक दूर जाने की आवश्यकता नही, निरीक्षण तुरत समाप्त हो

गया ; क्योंकि वह उपयुक्त समय स्वयं हमारे पास आ गया है। सार्वजनिक एकता एव सब वस्तुओं के गौरवपूर्ण योग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपयुक्त समय आ गया है।

हमारी महान शक्ति सख्या में नही, वरन् 'ऐक्य' में निहित है। फिर भी हमारी वर्तमान संख्या सारे विश्व की शक्ति को पीछे हटा देने के लिए पर्याप्त है। इस समय इस महाद्वीप के पास सशस्त्र और अनुशासित मनुष्यों की ऐसी सेना है, जो ससार में सबसे बडी है। वह सेना अभी-अभी शक्ति के उस शिखर पर पहुँच गयी है कि कोई एक उपनिवेश उसका भार वहन नही कर सकता; सयुक्त रूप से समस्त महाद्वीप ही उस कार्य को पूरा कर सकता है। इससे अधिक या न्यून होने पर यह शक्ति, परिणाम की दृष्टि से प्राणघातक हो सकती है। हमारी स्थल-शक्ति पर्याप्त है ही; और जहाँ तक समुद्री-शक्ति का प्रश्न है, क्या हम यह नहीं समझ सकते कि जब तक यह महाद्वीप इंगलैण्ड के आधीन है तब तक इंगलैण्ड, अमेरिका के जहाजी बेडे का निर्माण कदापि नही करेगा। इसलिए आगामी सौ वर्ष तक, वर्तमान की अपेक्षा, इस दिशा में हम कुछ भी अधिक प्रगति नही कर सकते। सत्य तो यह है कि हमारी अवनति होगी। क्योकि इस देश की लकड़ी दिन-प्रति-दिन समाप्त होती जा रही है और अन्त में जो कुछ शेष रहेंगी, वे समुद्र-तट से इतनी दूरी पर होंगी कि उन्हें प्राप्त करना कठिन होगा।

यदि इस महाद्वीप की जन-संख्या बहुत अधिक होती, तो वर्तमान स्थिति में, उसकी विपत्तियाँ असह्य हो जातीं। बन्दरगाह के रूप में जितने अधिक नगर होते, उतने अधिक को बचाना और खोना पडता। हमारी वर्तमान जन-सख्या भाग्य से, हमारी आवश्यकताओ के इस अनुपात में है कि किसी मनुष्य को बेकार रहने का अवसर नही है। व्यापार की कमी सेना को जन्म देती है, और सेना की आवश्यकताएँ नवीन व्यापार की सृष्टि करती हैं।

हम पर कोई ऋण नही है और इस कार्य के लिए हम जो ऋण लेंगे वह हमारे सद्गुणों का महिमामय स्मारक होगा। यदि हम अपनी भावी पीढी के लिए सरकार का कोई निश्चित स्वरूप तथा निजी स्वतन्त्र संविधान छोड सकें, तो किसी भी मूल्य पर किया गया सौदा सस्ता होगा। किन्तु केवल कुछ अधिनियमों (Acts) को भंग करने और वर्तमान मंत्रिमण्डल का विघटन करने के लिए,
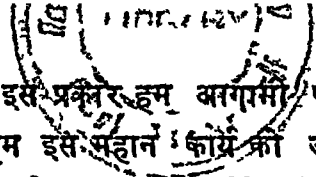
यदि हम लाखो व्यय करें तो यह अनुपयुक्त है। इस प्रकार हम आगामी पीढ़ी के साथ निर्दयता का व्यवहार करेंगे; क्योकि हम इस महान् कार्य को उनके लिए छोड़ देंगे और उनके सर पर ऋण का एक ऐसा भार लाद देंगे, जिससे उनका कोई हित न होगा। ऐसा विचार किसी सभ्रान्त व्यक्ति के अनुपयुक्त है; वास्तव मे यह सकीर्ण हृदय वाले और तुच्छ राजनीतिज्ञो का लक्षण है।

किसी राष्ट्र को बिना ऋण के नही रहना चाहिए। राष्ट्रीय ऋण राष्ट्रीय बन्धन है, और यदि बिना सूद का है तो, वह किसी भी रूप में कष्ट का कारण नही हो सकता। ब्रिटेन पर १४,००,००,००० स्टर्लिग ऋण हैं जिसके लिए उसे चार लाख से अधिक सूद देना पडता है। उस ऋण की क्षति-पूर्ति के रूप में उसके पास शक्तिशाली जहाजी बेडा है। अमेरिका पर कोई ऋण नही है और न उसके पास कोई जहाजी बेडा है। किन्तु इगलैण्ड के राष्ट्रीय ऋण के बीसवें भाग के द्वारा वह उसके जैसा ही जहाजी बेडा निर्मित कर सकता है। इगलैण्ड का जहाजी बेडा तीन लाख स्टर्लिग से अधिक मूल्य का नही है।

इस पत्रक के प्रथम और द्वितीय सस्करणो में निम्नाकित विवरण नहीं प्रकाशित हुआ था, किन्तु यह सिद्ध करने के लिए कि जहाजी बेड़े के मूल्य के विषय में मेरा अनुमान सत्य है—मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ। (देखिए, 'एन्टिक' द्वारा लिखित "जहाजी बेडे का इतिहास")

जहाजी बेडे के सचिव श्री बर्शे (Burchelt) के अनुसार प्रत्येक प्रकार के जहाज का निर्माण-व्यय, उसके मस्तूल, पालदण्ड, पाल, पटसन आदि से सुसज्जित करने तथा नाविको एव बढइयो के लिए आठ महीनो के सामान के व्यय का विवरण

१०० तोपो का जहाज		३५,५५३ पौंड
९०	,,	२९,८८६
८०	,,	२३,६३८
७०	,,	१७,७८५
६०	,,	१४,१९७
५०	,,	१०,६०६
४०	,,	७,५५८
३०	,,	५,८४६
२०	,,	३,७१०

निम्नांवित जहाज और तोपो से बना हुआ, सन् १७५७ ई० का ब्रिटिश जहाजी बेड़ा अपनी उन्नततम दशा में था। ऊपर के विवरण के अनुसार अब हम सुगमतापूर्वक उस जहाजी बेड़े के मूल्य या व्यय की गणना कर सकते हैं।

जहाज	तोपें	एक का व्यय	कुल व्यय
६	१००	३५,५५३ पौंड	२१३,३१८ पौंड
१२	९०	२९,८८६ ,,	३५८,६३२ ,,
१२	८०	२३,६३८ ,,	२८३,६५६ ,,
४३	७०	१७,७८५ ,,	७६४,७५५ ,,
३५	६०	१४,१९७ ,,	४९६,८९५ ,,
४०	५०	१०,६०६ ,,	४२४,२४० ,,
४५	४०	७,५५८ ,,	३४०,११० ,,
५८	२०	३,७१० ,,	२१५,१८० ,,
८५ एक मस्तूल का छोटा जहाज, बम और तोपयुक्त जहाज (Fire ship)		२,००० ,,	१७०,००० ,,
		व्यय	३,२६६,७८६ पौंड
		तोपो के लिए शेष	२३३,२१४ ,,
		कुल व्यय	३,५००,००० पौंड

समुद्री बेड़े के निर्माण-कार्य के लिए अमेरिका के समान विश्व का कोई भी देश समर्थ नहीं है। राल, लकड़ी, पटसन और लोहा आदि अमेरिका की प्राकृतिक उपज है। हमें किसी वस्तु के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है, जब कि स्पेन और पुर्तगाल को अपने लड़ाकू जहाजों को किराये पर देकर अधिक लाभ उठाने वाले हालैण्ड के निवासियों को अधिकतर सामग्री बाहर से मँगानी पड़ती है। हमें जहाजी बेड़े को व्यापार की वस्तु के रूप में देखना चाहिए, क्योंकि यह देश उसका प्राकृतिक निर्माण-स्थल है। इन कार्य में हम जितना धन लगायें उतना अच्छा है। निर्मित हो जाने पर जहाजी बेड़े का मूल्य उसकी लागत से अधिक होता है। वाणिज्य और सुरक्षा का गठबन्धन सर्वोत्तम राष्ट्रीय नीति है। यदि हमें उन निर्मित जहाजी बेड़ों की आवश्यकता

नही है, तो हम उन्हे बेच सकते हैं और इस प्रकार कागज़ के नोटो को सोना और चाँदी से बदल सकते है।

जहाज़ी बेडे को सेना से भरने में लोग प्राय: एक भूल कर बैठते हैं। यह कोई आवश्यक नही है कि बेडे में चतुर्थांश नाविक हो। गत युद्ध में वैयक्तिक सशस्त्र जहाज़ "कैपटेन डेथ" ने बडे भयकर सघर्ष का सामना किया, किन्तु उसमे केवल बीस नाविक थे, यद्यपि मनुष्यो की सब सख्या दो सौ से ऊपर थी। शीघ्र ही कुछ योग्य और समाजसेवी नाविक हमारी स्थल-सेना के सैनिको को, पर्याप्त सख्या में, जहाज़ के साधारण काम सिखा देंगे। इस समय हमें लकडियाँ सुलभ हैं, मछली मारने का धधा बन्द है और जहाज़ बनाने वाले व्यक्ति तथा नाविक बेकार हैं। अत· समुद्र-सम्बन्धी कार्यों को करने के लिए जितने योग्य हम इस समय हैं, उतने और किसी समय न होंगे। न्यू इगलैण्ड मे चालीस वर्ष पूर्व सत्तर और अस्सी तोपो वाले लडाकू जहाज़ बनते थे। इस समय वे क्यो नही बनते ? "जहाज़-निर्माण" अमेरिका का सर्वोत्तम गौरव है और इस दिशा में शीघ्र ही वह सारे विश्व से बढ जायगा। पूर्व के बड़े-बडे साम्राज्य समुद्र से दूर है, और परिणामत. अमेरिका की बराबरी करने में सर्वथा अक्षम है। अफ्रीका असभ्यावस्था में है और यूरोप के किसी देश में न तो इतना लम्बा समुद्री किनारा है और न तो आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन ही। प्रकृति ने यदि किसी देश को एक वरदान दिया है तो दूसरा रोक रखा है। केवल अमेरिका को उसने उदारतापूर्वक दोनो वरदान दिये हैं। रूस का इतना विस्तृत साम्राज्य, प्राय·, समुद्र-तट से दूर है, जिससे उसके राल और लोहा आदि वस्तुएं केवल व्यापार की सामग्रियाँ हैं।

सुरक्षा के विचार से क्या हमें बिना जहाज़ी बेडे के रहना चाहिए ? ६० वर्ष पूर्व हम जो थे, इस समय हम वही नही हैं। उस समय हम अपनी सम्पत्ति सडक पर अथवा मैदानो मे विश्वासपूर्वक छोड सकते थे; और द्वारो तथा खिड़कियो को बन्द किये बिना ही सुरक्षापूर्वक सो सकते थे। परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। हमारी सम्पत्तिगत वृद्धि के साथ-साथ हमारी सुरक्षा-पद्धति भी उन्नत होनी चाहिए। बारह मास पूर्व एक साधारण समुद्री-डाकू डेलवेयर (Delaware) नदी के किनारे आकर फिलाडेलफिया के नगर से इच्छानुसार धन ले सकता था, और यही बात और नगरो में भी सम्भव थी। इतना ही

क्यों, चौदह या सोलह तोपो से युक्त दो मस्तूलों वाले जहाज के द्वारा कोई भी साहसी व्यक्ति सम्पूर्ण महाद्वीप को लूटकर अत्यधिक धन ले गया होता। ये स्थितियाँ हमारे ध्यान को आकर्षित करती हैं और समुद्री-सुरक्षा की आवश्यकता प्रकट करती हैं।

कुछ लोग कदाचित् यह कहेंगे कि समझौते के बाद ब्रिटेन सुरक्षा-कार्य करेगा। क्या लोग इतने मूर्ख हैं कि वे यह मान लेते हैं कि ब्रिटेन हमारी सुरक्षा के लिए हमारे बन्दरगाहो पर जहाजी बेड़ा रखेगा ? जिसके पास केवल साधारण बुद्धि होगी वह भी इस बात को समझ लेगा कि जिस शक्ति ने हमें दबाने का प्रयत्न किया है, वह हमारी रक्षा के लिए सब से अनुपयुक्त शक्ति है। मैत्री के बहाने विजय पूरी की जायेगी, और इतने दिनो के साहसपूर्ण विरोध के उपरान्त हम लोग छलपूर्वक दास बनाये जायेंगे। मैं पूछता हूँ कि यदि, ब्रिटेन के जहाज हमारे बन्दरगाहो तक नही आने पायेंगे, तो वह हमारी रक्षा किस प्रकार करेगा ? तीन या चार सहस्र मील दूर स्थित जहाजी बेडा अमेरिका के लिए बहुत कम उपयोगी होगा; आकस्मिक संकट में तो वह किसी प्रकार की सहायता नही कर पायगा। अतः, यदि भविष्य में, हमें ही अपने को बचाना है, तो हम इसे दूसरो के लिए क्यो करें ? अपने लिए क्यों न करें ?

ब्रिटेन के युद्ध-पोतो की सूची बडी लम्बी और भयानक है; किन्तु उसका दशमांश भी किसी एक अवसर पर काम के लिए उपयुक्त नहीं रहता है। उनमें कतिपय का अस्तित्त्व होता ही नही। फिर भी, यदि जहाजो के तख्ते भी बच रहे हैं तो उनके नाम बड़ी शान के साथ उस सूची में बने रहते हैं। जो जहाज़ कार्य-योग्य हैं, उनका पचमाश भी एक साथ एक स्थान से कार्य-मुक्त नही किया जा सकता। ईस्ट और वेस्ट इण्डीज, भूमध्य सागर, अफ्रीका तथा संसार के अन्य स्थल, जहाँ ब्रिटेन का आधिपत्य है, उसके समुद्री बेड़े को निरन्तर कार्य-रत रखते हैं। पक्षपात और असावधानी के कारण इंगलैण्ड के समुद्री बेडे के विषय में हमने गलत धारणा बना रखी है, और इस प्रकार की चर्चा की है मानो उस सम्पूर्ण बेड़े से हमें एक साथ लड़ना होगा। यह कार्य वर्तमान समय में अव्यावहारिक है। अतः गुप्त टोरियों ने इस तर्क का सहारा लेकर हमें आरम्भ ही में निरुत्साहित करना चाहा है। ब्रिटेन के

समुद्री बेडे को बहुत बडा मानना, सत्य से बहुत दूर की बात होगी। यदि ब्रिटेन की समुद्री-शक्ति का बीसवाँ भाग भी अमेरिका को प्राप्त हो जाय तो वह, शक्ति में ब्रिटेन से बढ जायगा। क्योंकि किसी विदेशी राज्य पर न तो हमारा आधिपत्य है और न हम उसे चाहते ही हैं। इसलिए हमारी सारी शक्ति हमारे समुद्री-तट पर कार्य-रत रहेगी। कुछ ही दिनो में हमारी समुद्री-शक्ति से हमें उनकी अपेक्षा दूना लाभ होगा, जिन्हे हम पर आक्रमण करने के लिए तीन या चार सहस्त्र मील की दूरी तय करनी पडेगी और नवीन शक्ति प्राप्त करने के लिए पुनः उतनी ही दूरी तक लौटना पडेगा। अपने समुद्री बेड़े के कारण ब्रिटेन हमारे यूरोपीय व्यापार पर नियन्त्रण रखता है, तो हम भी ब्रिटेन के वेस्ट इन्डीज सम्बन्धी व्यापार पर उसी मात्रा में नियन्त्रण रखते है; क्योकि वेस्ट इण्डीज इस महाद्वीप के पड़ोस में होने के नाते पूर्णतः इसीकी कृपा पर निर्भर है।

यदि हम समुद्री बेडे के व्यय-भार को सदा वहन करना आवश्यक न समझें, तो शान्ति के क्षणो में उसे वहन करने की कोई पद्धति निकाली जा सकती है। बीस, तीस, चालीस या पचास तोपो वाले जहाजो को बनाकर उनका निजी उपयोग करने के लिए व्यापारियो को कुछ अग्रिम-धन देना चाहिए। यह अग्रिम-धन व्यापारियो द्वारा जहाज़-निर्माण-कार्य में लगायी गयी पूंजी के अनुसार होना चाहिए। उन व्यापारिक जहाज़ो में से पचास या साठ जहाज़, कुछ रक्षा-पोतो के साथ, पर्याप्त रूप से समुद्री शक्ति बनाये रखेंगे; और हम पर उनका कोई भार भी न रहेगा। इगलैण्ड में शान्ति के समय जहाज़ बन्दरगाह पर बेकार रहकर धीरे-धीरे नष्ट होते रहते हैं। वहाँ के निवासी इससे अधिक दु.खी रहते हैं। हम उस बुराई से बचे रहेगे। वाणिज्य और सुरक्षा का गठबन्धन श्रेष्ठ नीति है, क्योकि जब हमारी शक्ति और सम्पत्ति साथ-साथ हो तो हमें किसी बाह्य शत्रु से डरने की आवश्यकता नही है।

सुरक्षा की प्रत्येक सामग्री का प्राय. हमारे यहाँ आधिक्य है। पटसन इतना अधिक होता है कि हमें रस्से का अभाव नही पड़ सकता। हमारा लोहा अन्य देशो के लोहे से अच्छा है। तोपो का निर्माण हम यथेष्ट कर सकते हैं। हम प्रतिदिन सज्जी खार और बारुद पैदा कर रहे हैं। प्रतिक्षण हमारा ज्ञान बढ़ रहा है। चित्त की दृढता हमारी स्वाभाविक विशेषता है, और साहस ने कभी

हमारा साथ नही छोडा । हमें किसका अभाव है ? हम सकोच क्यो कर रहे है ? ब्रिटेन मे विनाश के अतिरिक्त और कोई आशा नही है । यदि महाद्वीप में उसका शासन स्वीकार कर लिया गया तो यह भूखड निवास-योग्य नहीं रहेगा। द्वेष निरन्तर उत्पन्न होते रहेगे। लगातार विप्लव होगे और उन्हें शान्त कौन करेगा ? अपने देशवासियो को विदेशी आधिपत्य स्वीकार कराने के लिए कौन अपना जीवन सकट में डालेगा ? पेन्सिलवेनिया और कानेक्टिकट के बीच अनिश्चित स्वामित्व वाली भूमि को लेकर परस्पर मतभेद है। यह तथ्य ब्रिटिश सरकार की निस्सारता प्रकट करता है और इस बात का पूरा प्रमाण है कि महाद्वीपीय विषयो को महाद्वीपीय शक्ति ही नियमित कर सकती है।

वर्तमान समय ही अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त क्यो है, इसका अन्य कारण यह भी है कि हम सख्या में जितने कम है, उतनी ही मात्रा में भूमि बेकार पडी हुई है। ब्रिटेन के आधीन रहने पर राजा अपने अयोग्य सेवकों को वह भूमि दे देगा। किन्तु यदि हम स्वतन्त्र हो जाते हैं तो हम न केवल वर्तमान ऋण चुकता करने में उस भूमि का उपयोग करेंगे, वरन् उसके द्वारा सरकार को निरन्तर आय प्राप्त होती रहेगी। इस प्रकार की सुविधा विश्व के किसी भी राष्ट्र को प्राप्त नही है।

जिसे उपनिवेशो की शैशवावस्था कहा जाता है, वह स्वतन्त्रता के विपक्ष में नहीं, वरन् पक्ष में प्रस्तुत किए जाने योग्य तर्क हैं। इस समय हमारी संख्या पर्याप्त है। यदि हम अपेक्षाकृत अधिक होते तो कम सगठित होते। बडे मार्के की बात है कि किसी देश की जन-सख्या जितनी अधिक होती है, उसकी सेना उतनी ही छोटी होती है। जहाँ तक सैनिको की सख्या का प्रश्न है, प्राचीन युग में वर्तमान की अपेक्षा सेनाएँ बहुत बडी हुआ करती थी। इसका कारण स्पष्ट है; क्योंकि वाणिज्य जन-संख्या का परिणाम है, और उसमें मनुष्य उतने लीन हो जाते हैं कि अन्य कार्यों की ओर उनका ध्यान कम जा पाता है। व्यापार देश-भक्ति और सैनिक सुरक्षा विषयक प्रवृत्ति को कम कर देता है। इतिहास, पर्याप्त रूप से, इस तथ्य को प्रकाशित करता है कि किसी राष्ट्र की शैशवावस्था में सर्वाधिक वीरतापूर्ण कार्य सम्पन्न हुए हैं। वाणिज्य की वृद्धि के साथ-साथ इंगलैण्ड की शक्ति नष्ट हो गयी है। अधिक जन-सख्या के होते हुए भी लन्दन का नगर कायरों की-सी सहिष्णुता के साथ अपमान स्वीकार करता रहता है।

मनुष्यो के पास जितनी अधिक सम्पत्ति होती है, सकटपूर्ण कार्यों से वे उतना ही बचते हैं। सामान्यतः धनी व्यक्ति भय के दास होते हैं और श्वान के समान द्विधाभाव से काँपते हुए राजशक्ति को स्वीकार करते हैं।

व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में यौवन अच्छे गुणो के बीज बोने का समय है। आज से आधी शताब्दी के बाद सपूर्ण महाद्वीप की एक सरकार स्थापित करना असम्भव नही, तो कठिन हो सकता है। व्यापार एव जन-सख्या की वृद्धि के कारण उत्पन्न नाना प्रकार के स्वार्थ देश में गडबडी उत्पन्न कर देंगे। एक उपनिवेश दूसरे के विरुद्ध होगा। प्रत्येक उपनिवेश प्रौढ होने के नाते योग्य होगा। उसे दूसरे की सहायता की परवाह नही रहेगी। ऐसी परिस्थिति में एक ओर अभिमानी और मूर्ख व्यक्ति अपनी-अपनी सीमित विशेषताओ मे गौरव प्राप्त करेंगे; दूसरी ओर बुद्धिमान मनुष्य इस बात पर खेद प्रकट करेंगे कि हमारा सघ पहले स्थापित नही किया जा सका। इसलिए वर्तमान समय ही "सघ" स्थापित करने का वास्तविक समय है। शैशवकाल की घनिष्ठता एव आपत्तिकाल की मित्रता सर्वाधिक चिरस्थायी और अविकल होती है। हमारी वर्तमान एकता में ये दोनो विशेषताएँ हैं। हम अल्पवयस्क हैं और आपत्ति में हैं। किन्तु हमारी एकता ने आपत्तियो को सह लिया है और वह एक ऐसे स्मरणीय नवयुग का आरम्भ कर रही हैं, जिसमें भावी पीढ़ियाँ गौरव प्राप्त करेंगी।

वर्तमान समय वह अपूर्व अवसर हैं, जो राष्ट्र के जीवन में केवल एक बार आता हैं; और वह हैं निजी सरकार बनाने का अवसर। कई राष्ट्रो ने इस अवसर को निकल जाने दिया है। परिणाम यह हुआ कि स्वय विधान बनाने के बदले, वे अपने विजेताओ के द्वारा बनाये गये विधान को स्वीकार करने के लिए विवश किये गये। उन देशो में पहले राजा होता हैं और तब सरकार का स्वरूप बनता हैं, किन्तु होना यह चाहिए कि सरकार के अधिकार एवं रूप-विषयक शासन-पत्र पहले तैयार किया जाय और उसके उपरांत उसके अनुसार कार्य करने वाले व्यक्ति नियुक्त किये जाएँ। किन्तु दूसरे राष्ट्रो की भूलो से हम शिक्षा लें, और उचित समय पर अपनी सरकार के निर्माण-कार्य को आरंभ करने में वर्तमान अवसर का पूर्ण उपयोग करे।

विजयी विलियम (William the Conqueror) ने जब इगलैण्ड को

अपने आधीन किया, तो उसने तलवार के बल पर शासन किया, और जब तक हम यह स्वीकार न करेंगे कि अमेरिका में शासन-सूत्र अधिकारपूर्वक एवं वैध रूप से ही ग्रहण किया जा सकता है, तब तक हमें इस बात का बराबर डर बना रहेगा कि कही कोई भाग्यशाली लुटेरा हमारे साथ भी, उसी प्रकार का व्यवहार न कर बैठे। उस स्थिति में हमारी स्वतत्रता कहाँ होगी और हमारी सम्पत्ति का क्या होगा ?

धर्म का जहाँ तक सम्बन्ध है, मेरा मत है कि अन्तःकरण से धर्म को स्वीकार करने वाले सभी लोगो की रक्षा करना सरकार का अनिवार्य कर्तव्य है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इसके अतिरिक्त धर्म के प्रति सरकार का और कोई कर्तव्य नही है। यदि मनुष्य अपनी आत्मा की संकीर्णता को त्याग दे, यदि वह सिद्धातो के उस स्वार्थ को छोड़ दे जिसे सभी धर्म-सस्थाओ के अनुदार मनुष्य नही छोड़ पाते, तो उसी क्षण धर्म-विषयक सभी प्रकार के डर से उसकी मुक्ति हो जाय। शंका क्षुद्रात्माओ की सहचरी और अच्छे समाज का विनाश करने वाली है। मै स्वय अन्तःकरण से पूर्ण विश्वास करता हूँ कि सर्वशक्तिमान की यह इच्छा है कि हमारे बीच नाना प्रकार के धार्मिक मत प्रचलित रहें। इसके कारण हमारी क्रिश्चियन दया के लिए व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत है। यदि हम सबकी विचार-पद्धति एक होती तो हमारी धार्मिक प्रकृति में परीक्षण-तत्व का अभाव होता। इस उदार सिद्धात के अनुसार मैं मानता हूँ कि सभी मनुष्य एक ही परिवार के हैं, उनके भेद केवल नाम के हैं।

राष्ट्रीय शासन-पत्र के औचित्य के विषय में कुछ विचार व्यक्त किये जा चुके हैं। इस स्थल पर मैं इस विषय पर पुन चर्चा करने की स्वतत्रता ले रहा हूँ। मेरा मत है कि शासन-पत्र एक ऐसा दिव्य बधन है जिसमें धर्म, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा साम्पत्तिक अधिकारो की रक्षा के लिए सपूर्ण राष्ट्र बँधता है। दृढ समझौता और सच्चाई के व्यवहार से मैत्री चिरस्थायिनी होती है।

मैंने अब तक अधिक और समान प्रतिनिधित्व की आवश्यकता की चर्चा की है, और राजनैतिक विषयो में सर्वाधिक ध्यान देने योग्य विषय भी यही है। निर्वाचको अथवा प्रतिनिधियो की अल्प सख्या भयावह है। किन्तु यदि प्रतिनिधियो की संख्या केवल अल्प ही नही, वरन असमान भी हो तो भय और बढ जाता है। एक उदाहरण लीजिए, पेन्सिलवेनिया के सभा-भवन में, जिस समय

'एशोशिएटर्स पेटिशन' प्रस्तुत किया गया, उस समय केवल अट्ठाईस सदस्य उपस्थित थे। 'बक्स काउन्टी' के सभी सदस्यो ने, जिनकी सख्या आठ थी, इसके विपक्ष में मत दिया। यदि 'चेस्टर' के सातो सदस्य इसी मार्ग का अनुसरण करते तो सारा प्रान्त केवल दो काउण्टियो से ही शासित हुआ होता, और यह भय बराबर बना हुआ है। अपनी गत बैठक में उस सभा ने प्रान्त के प्रतिनिधियों के ऊपर अनुचित अधिकार प्राप्त करने का जो न्याय-विरुद्ध कार्य किया है, उसके कारण सामान्य जनता को, अपने हाथ के अधिकार सौंपते समय सजग हो जाना चाहिए। प्रतिनिधियो के लिए कुछ आदेशो की सूची तैयार की गयी। थोडे-से व्यक्तियो के अनुमोदन करने पर सभा-भवन में उस पर विचार किया गया और सपूर्ण उपनिवेश के नाम पर उसे स्वीकार कर लिया गया। किन्तु यदि उपनिवेश के लोगो को यह पता होता कि किस बुरी भावना से उस सभा ने कुछ आवश्यक एव सार्वजनिक कार्यों को आरम्भ किया, तो उसी क्षण वे उन सदस्यो को विश्वास योग्य न समझने में थोडा भी सकोच न करते।

तात्कालिक आवश्यकताएँ कई चीजो को सुविधाजनक बना देती हैं, किन्तु उनका निरन्तर बना रहना अत्याचार हो जाता है। किसी चीज़ का किसी अवसर पर उपयुक्त होना एक बात है और उसका सदा के लिए ठीक होना दूसरी बात है। जब अमेरिका की आपत्तियो पर विचार-विमर्श आवश्यक हुआ, तो उस काम के लिए विभिन्न प्रान्तीय-सभाओ से व्यक्तियो को नियुक्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय प्रस्तुत न था और न उचित ही। उन व्यक्तियो ने जिस बुद्धिमानी से कार्य पूरा किया है, उसने इस देश को विनष्ट होने से बचा लिया है। किन्तु यह प्रायः निश्चित है कि काग्रेस के बिना हमारा काम नही चलेगा। अत सुव्यवस्था का प्रत्येक हितैषी इस बात को स्वीकार करेगा कि काग्रेस के सदस्यों की निर्वाचन-पद्धति विचारणीय है। मानव-जाति का अध्ययन करने वालो से मैं पूछता हूँ कि क्या प्रतिनिधित्व और निर्वाचन का अधिकार एक और उसी संस्था के लिए बहुत बडा अधिकार नही है? जब हम आगामी पीढियो के लिए योजना बना रहे हैं, तो हमें स्मरण रखना चाहिए कि सदाचार पैतृक सम्पत्ति नही है।

अपने शत्रुओ से हम, प्रायः सर्वोत्तम सिद्धात प्राप्त करते हैं; और, प्रायः उनकी भूलो पर विचार करके आश्चर्य करते हैं। लार्ड 'कार्नवाल' ने न्यूयॉर्क-

सभा की प्रार्थना को स्वीकार नही किया ; क्योंकि उसके अनुसार उस सभा में केवल छब्बीस सदस्य थे। उन्होने यह तर्क प्रस्तुत किया कि सदस्यो की यह सख्या इतनी अल्प है कि वह संपूर्ण का वास्तविक प्रतिनिधित्व नही कर सकती। उसकी इस अनिच्छापूर्वक की गयी सच्चाई के लिए हम उसे धन्यवाद देते हैं।

कुछ लोगो को चाहे विचित्र लगे अथवा इस प्रकार से सोचने के लिए चाहे कुछ लोगो की अत्यन्त अनिच्छा हो, किन्तु यह सिद्ध करने के लिए कि स्वतन्त्रता की स्पष्ट और निश्चित घोषणा के अतिरिक्त अन्य कोई योजना हमारे कार्यों को अत्यधिक शीघ्रता से पूरा नही कर सकती, कतिपय ठोस तथा प्रभावशाली तर्क दिये जा सकते है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

राष्ट्रों की यह सामान्य रीति है कि जब ससार की किन्ही दो शक्तियो के बीच युद्ध छिड़ जाता है तो निष्पक्ष देशों में से कुछ राष्ट्र मध्यस्थ के रूप में सामने आते हैं, और शान्ति-स्थापना के निमित्त भूमिका निर्मित करते हैं। किन्तु जब तक अमेरिका ब्रिटेन की प्रजा है, तब तक कोई भी शक्ति मध्यस्थ होना स्वीकार न करेगी, चाहे उसकी प्रकृति अधिक उदार ही क्यो न हो।

यह समझना तर्क-विरुद्ध है कि फ्रास और स्पेन हमें किसी प्रकार की सहायता प्रदान करेंगे, यदि हम उस सहायता द्वारा ब्रिटेन और अमेरिका के बीच पडी खाई को पाट कर उनके सम्बन्धों को दृढ करना चाहते हैं; क्योंकि उसके परिणामस्वरूप उन देशों की क्षति होगी।

जब तक हम अपने को ब्रिटेन की प्रजा मानते हैं, तब तक विदेशी राष्ट्रो की दृष्टि में हम राजद्रोही माने ही जायेंगे। उनकी शान्ति के लिए हमारा दृष्टान्त भयानक होगा; क्योंकि इसी प्रकार उनकी प्रजा भी विद्रोह कर सकती है। हम इस समस्या को सुलझा सकते हैं, किन्तु दासता और राजद्रोह दोनों का गठबन्धन करने का विचार सामान्य बुद्धि वालो के लिए अत्यन्त गूढ़ है।

एक प्रकाशित घोषणा-पत्र विदेशो में भेजकर हम यह स्पष्ट कर दें कि हमने कितनी आपत्तियाँ झेली तथा उससे छुटकारा पाने के लिए हमारे सभी संभव शान्त उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए। अस्तु, ब्रिटिश साम्राज्य की निर्दयता के अन्तर्गत सुरक्षापूर्वक तथा आनन्द के साथ रहने में असमर्थ होने के कारण हम उसके सभी सम्बन्धो को तोड़ने के लिए विवश हैं। किन्तु, हम विश्व के अन्य सभी राष्ट्रों के साथ शान्तिपूर्वक रहेंगे और उनके साथ व्यापार सम्बन्ध स्थापित

करने को इच्छुक हैं। एक जहाज भर प्रार्थना-पत्र इंगलैण्ड भेजने की अपेक्षा, इस प्रकार के प्रयत्न से इस महाद्वीप का अधिक हित होगा।

ब्रिटेन की प्रजा के रूप में बाहर न हमारा स्वागत होगा और न हमारी बात सुनी जायगी। प्रत्येक देश की सरकार का व्यवहार हमारे विरुद्ध है और तब तक विरुद्ध रहेगा, जब तक स्वतत्र होकर हम लोग अन्य राष्ट्रो की पक्ति में अपना स्थान न बना लें।

आरम्भ में ये कार्यवाहियाँ बहुत विचित्र और कठिन प्रतीत होगी, किन्तु अब तक हमने जितने कार्य किये है उन सबके समान ये भी कुछ ही दिनो के उपरान्त सरल और अनुकूल सिद्ध होगी। यह भी सत्य हैं कि जब तक स्वतन्त्रता की घोषणा नही की जाती है, तब तक यह महाद्वीप एक ऐसे व्यक्ति के समान अनुभव करेगा जो किसी अप्रिय कार्य को प्रतिदिन टालता चलता है और यह समझता भी है कि इसे कर डालना चाहिए, जो उस कार्य को आरम्भ करना नही चाहता, फिर भी उसे कर डालने की आवश्यकता को निरन्तर महसूस करता रहता है।

"परिशिष्ट"

इस पत्रिका के प्रथम सस्करण के प्रकाशन के बाद या यो कहिए कि उसी दिन, इस नगर (फिलाडेलफिया) में राजा का व्याख्यान भी प्रचारित हुआ। मेरा विश्वास है कि यदि किसी सिद्ध या भविष्य-वक्ता से पूछकर इस पत्रिका का प्रकाशन किया गया होता तो भी कदाचित् वह इतने उपयुक्त तथा आवश्यक अवसर पर न हो पाता। एक के निर्दय विचार दूसरे के सिद्धान्तो का अनुसरण करने की आवश्यकता व्यक्त कर रहे थे। मनुष्यो ने प्रतिक्रिया के रूप में इसे पढा, और राजा के व्याख्यान ने लोगो को आतकित करने के बदले स्वतन्त्रता के शौर्यपूर्ण सिद्धान्तो के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

उत्सव और मौन का चाहे जो उद्देश्य हो, किन्तु उनके द्वारा किसी नीचतापूर्ण कृति को यदि अल्पतम मात्रा में भी अनुमोदन प्राप्त होता है, तो उनकी प्रवृत्ति घातक होती है। यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो, क्योकि, राजा का

व्याख्यान पूर्ण नीचता से भरा हुआ है, अतः कांग्रेस तथा जनता दोनों के द्वारा उसका तिरस्कार होना चाहिए। तथापि, किसी देश की आन्तरिक शान्ति उसके राष्ट्रीय चरित्र की पवित्रता पर निर्भर है। इसलिए प्रायः यही अच्छा होता है कि कई बार हम केवल घृणा प्रकट करके मौन रह जायं न कि घृणा ऐसी नवीन पद्धति अपनावें, जो हमारी उस शान्ति और सुरक्षा के संरक्षक (राष्ट्रीय चरित्र) में थोडा भी परिवर्तन ला दे।

प्रधानत इसी विवेकपूर्ण मृदुता के कारण राजा का व्याख्यान तुरंत ही जनता का कोप-भाजन नही हुआ; और वह व्याख्यान, यदि उसे व्याख्यान कहा जाय तो, है क्या ? वह मनुष्य-जाति के अस्तित्व, सामान्य हित तथा सत्य की धृष्टता एव स्वेच्छाचारपूर्वक की गयी निन्दा है। वह अत्याचारियो के अहकार को मानव-बलि चढाने की औपचारिक पद्धति है। किन्तु मानवता की सामान्य हत्या करना राजाओ के असामान्य अधिकारो और महत्वो में से एक है। क्योंकि, जिस प्रकार प्रकृति उन्हे नही जानती, उसी प्रकार वे भी उसे नही जानते; और यद्यपि वे हमारी ही जाति के प्राणी हैं, तथापि वे हमें नही जानते। वे अपने बनाने वालो के देवता बन बैठे हैं। इस व्याख्यान में एक गुण भी है और वह यह है कि इसके द्वारा धोखे की सम्भावना नही है। इसमें पशुता और अत्याचार का स्पष्ट प्रदर्शन है। इससे हमें किसी प्रकार की क्षति नहीं है। इसे पढते समय इसकी प्रत्येक पक्ति हमें यह मानने को विवश करती है कि ब्रिटेन के राजा की अपेक्षा जगलों में शिकार करनेवाले नगे तथा अशिक्षित लोग कम असभ्य हैं।

"अमेरिका के निवासियो के प्रति इंगलैण्ड की जनता का निवेदन" शीर्षक-वाले अपने प्रसिद्ध कष्टप्रद तथा कपटपूर्ण लेख में सर जॉन डलरिम्पल (Dalrymple) ने, कदाचित् इस व्यर्थ मान्यता के आधार पर कि यहाँ की जनता राजा के आडम्बरपूर्ण वर्णन से आतंकित हो जायगी, उस व्याख्यान का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट कर दिया है जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है। लेखक के लिए यह कार्य वास्तव में मूर्खतापूर्ण था। उस लेखक ने लिखा है—"किन्तु यदि आप ऐसे शासन के प्रति सम्मान-प्रदर्शन करना चाहते हैं, जिसके प्रति हमें कोई शिकायत नही है (यहाँ लेखक का तात्पर्य 'स्टैम्प एक्ट' के भंग के समय 'मार्क्विस आफ राकिंघम' के शासन से है), आप लोगों के लिए यह अशोभनीय है कि आप उस राजा के प्रति उसी प्रकार का सम्मान न प्रदर्शित करें, जिसकी स्वीकृति

के कारण ही उन लोगो को कुछ भी करने की आज्ञा मिली थी।" स्पष्ट रूप से यह टोरियो की राज-भक्ति है, यह निरावरण मूर्तिपूजा है। जो ऐसे सिद्धात को शान्तिपूर्वक सुनकर पचा सकता है उसकी विवेक-शक्ति नष्ट हो चुकी है, वह मनुष्यत्व से गिरा हुआ है। यह समझना चाहिए कि उसने न केवल मानव की उचित प्रतिष्ठा का त्याग किया है, वरन् वह पशुओ की श्रेणी से भी नीचे गिरा हुआ है और विश्व मे कीड़ो-मकोडो के समान घृणित रूप से जीवन-यापन कर रहा है।

अब इस बात का कोई महत्व नही है कि इगलैण्ड का राजा क्या कहता है अथवा क्या करता है। प्रत्येक नैतिक मानवीय सम्वन्ध को उसने दुष्टता के साथ तोड़ दिया है। प्रकृति एव अन्त करण को उसने पैरो तले कुचल डाला है। अपनी धृष्टता तथा निर्दयता की स्थिर एव सावैधानिक प्रवृत्ति के कारण वह सार्वलौकिक् घृणा का पात्र वन गया है। अब अमेरिका को अपना प्रवन्ध कर लेना चाहिए। उसका परिवार वहुत विशाल और तरुण है। जो शक्ति मनुष्य-जाति और क्रिश्चियन धर्म के लिए अभिशाप हो गयी है, उसका समर्थन करने के निमित्त अपनी सम्पत्ति उसे देने की अपेक्षा अपने उस परिवार की देख-भाल करना अमेरिका का कर्तव्य है। राष्ट्र के आचरण की देख-भाल करना जिनका काम है, जो जनता की स्वतन्त्रता के घनिष्ठतम संरक्षक हैं, वे यदि चाहते हैं कि उनका देश यूरोप के भ्रष्टाचार से दूपित न हो तो उन्हे एकान्त में विच्छेद की इच्छा करनी चाहिए। किन्तु इस नैतिक अश को वैयक्तिक विचार के लिए छोडकर मैं प्रधान रूप से निम्नाकित विपयो पर अपना मत व्यक्त करूँगा।

पहला—व्रिटेन से सम्वन्ध तोड लेने में अमेरिका का हित है।

दूसरा—सर्वाधिक सरल और व्यावहारिक कौन है; समझौता या स्वतंत्रता?

पहली बात के समर्थन में यदि मैंने उचित समझा तो इस महाद्वीप के सर्वाधिक अनुभवी और योग्य व्यक्तियो के मत व्यक्त कर सकूँगा। इस विपय पर उनके विचार अव तक सामान्य रूप से प्रकाश में नही आ सके हैं। वास्तव मे स्थिति स्वय स्पष्ट है। क्योंकि यदि कोई राष्ट्र विदेशी आधीनता की स्थिति मे है, उसका व्यापार सीमित है और उसकी विधायिनी शक्ति (Legislative Power) सकुचित तथा वंधन में जकड़ी हुई है, तो उसे भौतिक महत्व प्राप्त

न हो सकेगा। अभी तक ऐश्वर्य से अमेरिका का परिचय न हो सका; और यद्यपि अब तक उसने जो प्रगति की है वह अन्य राष्ट्रों के इतिहास में अद्वितीय है, किन्तु यदि अमेरिका को विधान बनाने का अधिकार प्राप्त रहा होता तो उस समय इसकी जो प्रगति हुई होती, उसके आगे वर्तमान प्रगति बहुत कम है। इस समय इंगलैण्ड गर्वपूर्वक जिसकी प्राप्ति का लोभ कर रहा है, यदि वह उसे प्राप्त हो जाय तो भी उसका कोई हित नहीं होगा। दूसरी ओर यह महाद्वीप एक ऐसा कार्य करने में संकोच कर रहा है, जिसकी उपेक्षा से उसका पूर्ण विनाश होगा। अमेरिका को जीत लेने से नहीं, वरन् उसके व्यापार से इंगलैण्ड को लाभ होगा, और वह उस दशा में भी होता रहेगा, जब कि अमेरिका और इंगलैण्ड दोनों एक दूसरे से स्वतन्त्र रहेंगे। क्योंकि, कई वस्तुओं के लिए दोनों में से कोई भी अन्य किसी अपेक्षाकृत अच्छे बाजार में नहीं जा सकता। इस देश की स्वतन्त्रता इस समय विरोध का प्रधान और एकमात्र उचित विषय है, जो प्रतिदिन आवश्यकता द्वारा आविष्कृत सत्यों के समान स्पष्ट और बलवत्तर होता रहेगा; क्योंकि एक-न-एक दिन इस देश को स्वतंत्र होना है और जितनी देर हो रही है, कार्य उतना ही कठिन होता जा रहा है।

जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे बोला करते हैं, उनकी भूलों की चर्चा करके, एकान्त में और जनता के बीच, मैंने प्रायः अपना मनोरंजन किया है। यों तो सुनने में बहुत कुछ आता है, किन्तु एक बात जो अधिक सर्वसामान्य प्रतीत होती है उसकी चर्चा मैं यहाँ कर देना चाहता हूँ। कहा जाता है कि यदि यह सम्बन्ध-विच्छेद इस समय न होकर आज से चालीस-पचास वर्षों बाद हुआ होता, तो महाद्वीप अपनी अधीनता की बेड़ियाँ तोड़ फेंकने में अधिक समर्थ होता। मेरा कहना है कि गत युद्ध में प्राप्त अनुभव के आधार पर इस समय हमें सैनिक योग्यता प्राप्त है; किन्तु चालीस-पचास वर्षों के बाद वह पूर्णरूप से समाप्त हो जायगी। उस समय तक इस देश में न तो एक सेनापति रह जायगा, न कोई सैनिक-पदाधिकारी; और हम या हमारे उत्तराधिकारी सैनिक-कार्यों से नितान्त अनभिज्ञ रहेंगे। यदि इस तथ्य पर पूरा ध्यान दिया जाय तो यह प्रमाणित हो जायगा कि वर्तमान समय ही सर्वश्रेष्ठ अवसर है। चाहें तो हम इस प्रकार भी तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं कि गत युद्ध के अन्त में हमें अनुभव था, किन्तु संख्या में हम अल्प थे; और चालीस-पचास वर्षों बाद हम संख्या में अधिक और अनुभव

में शून्य होंगे। इसलिए उपयुक्त समय इन दो छोरो के मध्य का वह बिन्दु है जहां पहले का पर्याप्त अवशेष तथा दूसरे की उचित वृद्धि हो, और वह बिन्दु है वर्तमान समय।

पाठक विषयान्तर के लिए मुझे क्षमा करें; क्योंकि जिस विषय की चर्चा मैंने आरम्भ की थी उसके अन्तर्गत उपर्युक्त चर्चा का समावेश नही हो सकता। अब मैं अपने विषय पर पुन: आ रहा हूँ।

यदि ब्रिटेन के साथ समझौता हो जाय और वह अमेरिका का शासक बना रहे, यद्यपि आज की वस्तुस्थिति के अनुसार ऐसा होना नितान्त असम्भव है, तो हम लोगों ने जो ऋण लिया है या आगे जो लेंगे, उसे चुकाने में हमारे सभी साधन समाप्त हो जायेंगे। कनाडा के अनुचित विस्तार के कारण प्रान्त जिन क्षेत्रों से वचित किये जाते हैं केवल पाच पौण्ड स्टर्लिंग प्रति सौ एकड की दर से उसका मूल्य, पेंसिलवेनिया की मुद्रा में, पच्चीस लाख से ऊपर होगा; और एक पेनी स्टर्लिंग प्रति एकड़ की दर से किराया दो लाख वार्षिक होगा।

उन क्षेत्रो के विक्रय-मूल्य से बिना किसी कष्ट के ऋण चुकता किया जा सकता है; और उनका किराया सरकार के व्यय-भार को कम करेगा तथा कुछ दिनो में पूर्ण रूप से उसे वहन करेगा। इस बात की चिन्ता नहीं है कि ऋण कितने दिनो में दिया जायगा, क्योंकि क्षेत्रो के विक्रय होने पर उस धन का उपयोग ऋण देने में किया जायगा और इस काम को पूरा करने के लिए वर्तमान समय में काग्रेस राष्ट्र की विश्वस्त सस्था रहेगी। अब दूसरे विषय पर विचार किया जाय, अर्थात् यह देखा जाय कि सब से अधिक सरल और व्यावहारिक क्या होगा—समझौता या स्वतन्त्रता?

जो प्रकृति का सहारा लेकर चलता है, उसके तर्क प्राय: गलत नही होते। इसी आधार पर मैं प्राय. उत्तर देता हूँ। स्वतन्त्रता सरल है और समझौता अधिक उलझनपूर्ण है तथा उसमे विश्वासघातक एव अस्थिर राजदरबार का हस्तक्षेप है। अत. प्रश्न का उत्तर अपने आप स्पष्ट हो जाता है।

अमेरिका की वर्तमान अवस्था वास्तव में किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए चिन्ता का विषय है। इस समय इस देश में न कोई नियम है, न कोई सरकार। शिष्टता पर आधारित तथा उसके द्वारा स्वीकृत शासन-शक्ति के

अतिरिक्त अन्य कोई शासन-शक्ति नही है। हम सब ऐसे अपूर्व भावोद्रेक के द्वारा सम्बद्ध है, जो परिवर्तित हो सकता है और जिसे नष्ट करने के लिए हमारा प्रत्येक गुप्त शत्रु कार्य-रत है। हमारी वर्तमान स्थिति मे व्यवस्था बिना किसी नियम के है, बुद्धि बिना किसी योजना के है, संविधान बिना नाम का है, और सर्वाधिक विचित्र बात यह है कि आधीनता को अस्वीकार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। यह स्थिति अपने ढंग की एक है। इसके पूर्व ऐसी स्थिति कभी नही रही। कहा नही जा सकता कि क्या होगा ? देश की वर्तमान शिथिल व्यवस्था में किसी व्यक्ति की सम्पत्ति सुरक्षित नही है। जनता का मस्तिष्क लक्ष्य-विहीन है, और अपने सम्मुख कोई निश्चित लक्ष्य न पाकर वह उस मार्ग का अनुसरण करती है जो उसका बुद्धि-विलास अथवा मत उसके सम्मुख प्रस्तुत करता है। अपराध अथवा राजद्रोह जैसे कुछ रह ही नही गया। इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में स्वतन्त्र है। यदि टोरियो को यह पता होता कि देश के नियमानुसार उनके उस व्यवहार का दण्ड है मृत्यु, तो कदाचित् उन्हे इतने आक्रमणात्मक ढग से एकत्रित होने का साहस न हुआ होता। युद्ध में बन्दी बनाये गये इंगलैण्ड के सैनिको तथा अमेरिका के निवासियो के बीच विभाजक-रेखा होनी चाहिए। एक बन्दी है और दूसरा विश्वासघातक। दण्डस्वरूप एक की स्वतन्त्रता जब्त होनी चाहिए और दूसरे का सर काट लेना चाहिए।

बुद्धि के होते हुए भी हमारी कार्य-पद्धति में एक ऐसी स्पष्ट दुर्बलता है जो मत-भेद को प्रोत्साहन देती है। देश का संगठन अधिक शिथिल है। यदि समय रहते कुछ किया नहीं गया तो हमारी स्थिति इस प्रकार की हो जायगी कि उस समय न तो समझौता व्यावहारिक होगा और न स्वतन्त्रता ही। राजा और उसके अयोग्य अनुचर महाद्वीप को विभाजित करने के लिए प्रयत्नशील हैं, और हमारे बीच ऐसे मुद्रकों (Printers) का अभाव नही है जो सफेद झूठ का प्रचार करने में व्यस्त रहेंगे। कुछ मास पूर्व न्यूयार्क के दो पत्रों में प्रकाशित होने वाला वह कलात्मक एवं दम्भपूर्ण पत्र इस बात का प्रमाण है कि इस देश में ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें या तो विवेक का अभाव है या सच्चाई का।

समझौते की बात करना सरल है ; किन्तु क्या ऐसे व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक

विचार करते हैं कि यह कार्य कितना कठिन है। यदि इसी विषय पर देश में मतवैभिन्य उत्पन्न हो गया तो ? क्या ऐसा कहते समय वे अपना तथा उन सभी स्तरों के मनुष्यो का विचार करते हैं जिनकी परिस्थितियो का विचार करना नितान्त आवश्यक है। क्या वे उन पीडितो की दुर्दशा का अनुभव करते हैं, जिनका सर्वस्व स्वाहा हो चुका है; अथवा क्या वे उन सैनिको के दुःखो को अपना दुःख समझते हैं, जिन्होने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया है ? यदि उनका यह अविवेकपूर्ण निर्णय मात्र व्यक्तिगत परिस्थिति के अनुसार है, तो हम निश्चित रूप से उसे अनुचित कह सकते हैं।

कुछ लोगो का कहना है कि हमे सन् १७६३ ई० की स्थिति मे रख दिया जाए। इस विषय मे मुझे यह कहना है कि इस प्रार्थना को पूरा करना ब्रिटेन के वश की बात नही हैं और न तो वह वैसा करना चाहेगा। मान लिया कि इस प्रकार का कोई समझौता हो गया, तो किस प्रकार इस भ्रष्ट एवं अविश्वासपूर्ण सरकार के द्वारा उस समझौते का निर्वाह कराया जायगा ? दूसरी संसद् नही, वर्तमान संसद् भी बाद में उस समझौते को भग कर सकती है और कारणस्वरूप यह तर्क प्रस्तुत कर सकती है कि यह समझौता हिंसापूर्वक प्राप्त किया गया था एवं अविवेकपूर्वक स्वीकार किया गया था। मैं पूछता हूँ कि उस दशा मे हम क्या करेगे ? राष्ट्रो के विरुद्ध किसी न्यायालय में मुकदमा नही चलाया जाता। वहाँ तोप और तलवार के द्वारा निर्णय होता है। सन् १७६३ ई० की स्थिति मे होने के लिए इतना ही पर्याप्त नही है कि उस समय के नियमो को ही रखा जाय, वरन् हमारी परिस्थितियाँ भी वैसी ही होनी चाहिए। हमारी व्यक्तिगत क्षति की पूर्ति की जाय; हमारे उस सार्वजनिक ऋणो को चुकता किया जाय जिसे सुरक्षा के लिए हमने लिया था; अन्यथा उस स्पृहणीय समय मे हमारी जो स्थिति थी, हम उससे अत्यधिक हीन दशा को प्राप्त होगे। यदि एक वर्ष पूर्व इस प्रकार की प्रार्थना सुनी गयी होती तो सारे महाद्वीप का हृदय जीत लिया गया होता, किन्तु अब समय निकल चुका है।

एक बात और है। केवल अर्थ-विषयक किसी नियम को भग करने के लिए अस्त्र उठाना दैवी नियम के अनुसार उतना ही अनुचित, और मानवीय अनुभू-

रितयो के उतने ही विपरीत है, जितना उस नियम को स्वीकार कराने के लिए अस्त्र उठाना। दोनो दशाओ मे साध्य, साधन का औचित्य सिद्ध नही करता, क्योकि उन तुच्छ बातो के लिए मनुष्यों का बलिदान उपयुक्त नही है। हम पर हिंसा की गयी है और भविष्य में हिंसा करने की धमकी दी गयी है। सशस्त्र सेना के द्वारा हमारी सम्पत्ति नष्ट कर दी गयी है, और हमारे देश पर तोप और तलवार के द्वारा आक्रमण किया गया है। इन दुष्कर्मों के उत्तर मे अस्त्र उठाना न्याय-सगत है, और जिस क्षण इस प्रकार की सशस्त्र सुरक्षा-पद्धति आवश्यक हुई, उसी समय ब्रिटेन की आधीनता समाप्त हो जानी चाहिए थी। जिस समय, ब्रिटेन के विरुद्ध हमारी बन्दूक से पहली गोली निकली, उस समय से अमेरिका की स्वाधीनता का आरम्भ मानना चाहिए।

निम्नाकित समयोचित और अच्छे उद्देश्य से प्रेरित संकेतो के साथ-साथ मै अब इस विषय की चर्चा समाप्त करूँगा। हमें यह सोचना चाहिए कि भविष्य में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के तीन भिन्न-भिन्न साधन हैं। उनमें से एक-न-एक निश्चित रूप से अमेरिका के भाग्य में है। वे तीनो साधन इस प्रकार हैं—जनता की कांग्रेस द्वारा वैध माग, सैनिक-शक्ति और अव्यवस्थित जन-समुदाय द्वारा आन्दोलन। यह सर्वथा सभव नही है कि हमारे सैनिक नागरिक ही हो और अव्यवस्थित जन-समुदाय बुद्धिमान व्यक्तियो का समाज हो। जैसा कि मैंने पहले कहा है, सदाचार पैतृक नही होते और न तो वे शाश्वत है। यदि उपर्युक्त साधनो मे से प्रथम के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त की जाय तो पृथ्वी पर सर्वोत्तम और पवित्रतम संविधान बनाने के लिए उपयुक्त सभी अवसर और प्रोत्साहन हमें प्राप्त हैं। सृष्टि का पुनर्विधान करना हमारे वश की बात है। सृष्टि के आरम्भ से आज तक कभी भी ऐसी स्थिति उत्पन्न नही हुई थी। एक नवीन ससार का उन्मेष सन्निकट है और सम्भवतः सम्पूर्ण यूरोप की जनसख्या के बराबर संख्या वाला मनुष्यों का एक समुदाय कुछ महीनो की घटनाओ के द्वारा अपना स्वातन्त्र्य-अधिकार प्राप्त करेगा। इस दृष्टिकोण के साथ जब मैं विचार करता हूँ, तो नवीन सृष्टि के निर्माण-कार्य के समक्ष कुछ दुर्बल या स्वार्थी मनुष्यो के तुच्छ विरोध मुझे अत्यधिक हास्यास्पद प्रतीत होते हैं।

यदि हम वर्तमान अनुकूल एवं आरम्भिक काल की उपेक्षा करेंगे और भविष्य में किसी अन्य साधन के द्वारा स्वतन्त्रता की प्राप्ति करेंगे, तो उसके परिणाम का

उत्तरदायित्व हमारे सर पर होगा अथवा वास्तव में उनके सर पर होगा जिनकी सकीर्णता और पक्षपातपूर्ण आत्माएँ, स्वभावतः हमारे प्रयत्न का विरोध कर रही हैं। स्वतन्त्रता के समर्थन में ऐसे तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिन्हें सार्वजनिक रूप में कहा नही जाना चाहिए, वरन् व्यक्तिगत रूप से जिन पर विचार करना चाहिए। इस समय हमें इस विवाद मे नही पडना है कि हमें स्वतन्त्र होना चाहिए या नहीं, किन्तु दृढ, सुरक्षित और सम्मानपूर्ण आधार पर स्वतन्त्रता को प्राप्त करने की चिन्ता करनी चाहिए और इस बात के लिए बेचैन रहना चाहिए कि कार्य अभी पूरा नही हो पाया। प्रत्येक दिवस उसकी आवश्यकता को स्पष्ट करता जा रहा है। यहाँ तक कि, टोरियो (यदि हमारे बीच ऐसे व्यक्ति हैं) को भी इस कार्य को पूरा करने में सबसे अधिक इच्छुक होना चाहिए, क्योकि जिस प्रकार समितियो की नियुक्ति ने जनता के क्रोध से उनकी रक्षा की, उसी प्रकार सुव्यवस्थित सरकार ही उनकी सतत सुरक्षा का साधन होगी। इस लिए यदि 'ह्विग' होने के लिए पर्याप्त सदाचार उनमें नही है, तो कम से कम स्वतन्त्रता की इच्छा करने की बुद्धिमानी तो होनी ही चाहिए।

स्वतन्त्रता ही हमें बांध कर एकता में रख सकती है। उसके बाद हमें अपना लक्ष्य दिखाई पडेगा और हमारे कान षडयन्त्रकारी तथा निर्दय शत्रु की योजनाओ के प्रति वैध रूप से बन्द रहेगे। तब हम भी ब्रिटेन के साथ व्यवहार करने के लिए उचित स्तर पर रहेगे। क्योकि यह मान लेना तर्कसगत है कि समझौते के समय जिन्हे विद्रोही प्रजा कहा जाता है उनकी अपेक्षा, शान्ति की, शर्तों को तय करने के लिए स्वतन्त्र अमेरिका के निवासियो के साथ व्यवहार करने मे ब्रिटिश सरकार के अभिमान को कम ठेस पहुँचेगी। हमारे विलम्ब करने से ब्रिटेन को प्रोत्साहन मिलता है और हमारी मन्द गति केवल युद्ध को बढा रही है। हम लोगो ने, बिना किसी लाभ के, अपनी असुविधाओ को दूर करने के लिए व्यापार को रोक रखा है। अब हमें दूसरे मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए, अर्थात् स्वतंत्र रूप से अपनी उन असुविधाओ को हम दूर करें, और फिर व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रस्ताव करें। इगलैण्ड के व्यापारी और बुद्धिमान लोग फिर भी हमारा साथ देंगे; क्योकि शान्ति-हीन युद्ध की अपेक्षा व्यापार-युक्त शान्ति श्रेष्ठ है। यदि यह प्रस्ताव ब्रिटेन को स्वीकृत न हो, तो हमें अन्य राष्ट्रो की ओर मुडना चाहिए।

इस पत्रिका के प्रथम संस्करण में प्रकाशित सिद्धात का किसी ने विरोध नही किया है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि या तो इस सिद्धांत का विरोध हो नहीं सकता अथवा इसे मानने वालो की सख्या इतनी अधिक है कि इसका विरोध नही किया जा सकता। अस्तु, संदेह अथवा शकापूर्ण कौतूहल के साथ एक दूसरे की ओर निहारने के वदले हम लोगो में से प्रत्येक अपने पडोसी के सामने मैत्री का स्नेह-पूर्ण हाथ वढावे, और एक ऐसी स्थिति के निर्माण में संगठित हो जो हमारे पूर्व मत-भेदो को विस्मृति के गर्भ मे छिपा दे। ह्विग और टोरी का अन्तर मिट जाय और सुनागरिक, निश्छल एवं दृढ मित्र तथा अमेरिका के स्वतन्त्र राष्ट्र एवं मानव के अधिकारों के सच्चरित्र समर्थक के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के व्यक्ति हमारे वीच न रहे।

अमेरिका का संकट

[१ और १३]

संकट के इन्ही क्षणो में मानव-आत्मा की परख होती है। अवसरवादी सैनिक और देश-भक्त इस सकट में देश की सेवा से मुख मोड़ लेंगे, किन्तु जो इस समय देश की सेवा करेगा वह जनता के प्रेम तथा धन्यवाद का पात्र होगा। नरक के समान, अत्याचार पर भी विजय पाना सरल नही है। फिर भी हमें इस वात की सान्त्वना है कि सघर्ष जितना कठिन होता है, विजय उसी मात्रा में गौरवास्पद होती है। हम जिस वस्तु का जितन कम मूल्य में पाते हैं, हमारी दृष्टि में उसका महत्व उतना ही कम होता है। केवल मूल्य अधिक होने से वस्तुओं को वास्तविक गौरव प्राप्त होता है। ईश्वर अपनी वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण करना जानता है। वास्तव में यदि स्वतन्त्रता जैसी वस्तु का मूल्य अधिक न हो तो यह वडे आश्चर्य की वात होगी। ब्रिटेन ने घोषणा की है कि उसे केवल कर लगाने का नहीं वरन् प्रत्यक दशा में हमें बांधने का पूरा अधिकार है। यदि इस प्रकार से बँध जाना दासता नहीं है, तो मैं कहूंगा कि पृथ्वी पर दासता जैसी कोई वस्तु है ही नही। उपर्युक्त घोषणा भी अपवित्र है; क्योंकि इतना असीम अधिकार केवल ईश्वर का ही सकता है।

मैं इस विवाद में नही पड़ूँगा कि इस महाद्वीप की स्वतंत्रता अत्यधिक शीघ्र अथवा अत्यधिक विलम्ब से घोषित की गयी। मेरा मत है कि यदि यह कार्य अपेक्षाकृत आठ महीने पूर्व हुआ होता, तो अधिक अच्छा रहा होता। गत शीतकाल का उचित उपयोग हम लोग नही कर सके और आधीनता की उस स्थिति मे हम कर भी नही सकते थे, तथापि हमारी क्षति नही हुई है। हौव (Howe) गत मास तक जो कुछ करता रहा है, वह विजय नही वरन् लूट-कार्य है जिसे एक वर्ष पूर्व जर्सीज (Jerseys) की शक्ति समाप्त कर दिए होती। समय एव हमारे दृढ़ प्रयत्न उसकी क्षति-पूर्ति कर देंगे।

मै अन्धविश्वासी नही हूँ, किन्तु सदा से मेरी यह गुप्त मान्यता रही है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर अपने जीवो को सेना द्वारा विनष्ट होने के लिए कदापि नही छोड़ेगे; अथवा उन लोगो को निस्सहाय नही रहने देंगे, जिन्होने सचाई के साथ वारम्बार, बुद्धि द्वारा आविष्कृत प्रत्येक शिष्ट पद्धति के सहारे युद्ध की आपदाओ से वचने का प्रयत्न किया है। साथ ही साथ मैं इतना नास्तिक भी नहीं हूँ कि यह मानूँ कि ईश्वर ने ससार की सरकारों को पूरी छूट दे रखी है और हमें दानवों की क्रूरता सहने को छोड रखा है। ब्रिटेन का राजा किस आधार पर ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करेगा? अपने पक्ष के समर्थन में वह जो कुछ तर्क या बहाना करेगा, वह तो प्रत्येक साधारण हत्यारा, डाकू अथवा चोर प्रस्तुत किया करता है।

आतंक किसी देश मे कभी-कभी इतनी शीघ्रतापूर्वक फैल जाता है कि लोगो को उस पर आश्चर्य होता है। सभी राष्ट्रो और युगो ने आतक का अनुभव किया है। फ्रास के चिपटी पेंदी वाली नौकाओ के बेड़े के समाचार पर इगलैण्ड काँप उठा था। पन्द्रहवी शताब्दी मे, फ्रास को लूट लेने के वाद भय के कारण इगलैण्ड की संपूर्ण सेना के प्राण सूख गये और वह पीछे खदेड दी गयी। "जोन आफ् आर्क" नाम की स्त्री के सेनापतित्व में सेना की कुछ टुकडियो ने यह पराक्रम किया। क्या ही अच्छा होता, यदि ईश्वर किसी 'जर्सी' (Jersey) स्त्री को ऐसी प्रेरणा देता कि वह अपने देशवासियो को उत्तेजित करके लूट एवं अत्याचार से पीडित मनुष्यो की रक्षा करती।

कुछ स्थितियो में आतक से भी लाभ होता है। उसके कारण मस्तिष्क का शीघ्र विकास होता है तथा वह अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ता प्राप्त करता है। किन्तु

सबसे बड़ी बात यह है कि आतंक सच्चाई और कपट की कसौटी है, जिसके द्वारा वस्तुओं अथवा मनुष्यों की वास्तविकता का पता चल जाता है। वास्तव में गुप्त विश्वासघातियों पर आतंक का वही प्रभाव पड़ता है, जो एक हत्यारे पर काल्पनिक भूत का। आतंक मनुष्यों के गुप्त विचारों को सब पर प्रकट कर देता है। जिस दिन होव (Howe) डेलवेयर (Dalaware) नदी के किनारे पहुँचा, उस दिन कितने गुप्त टोरियों ने अपना असली रूप प्रकट किया जिसका परिणाम उन्हें पश्चातापपूर्वक भोगना पड़ेगा।

मैं 'ली' (Lee) के किले की सेना के साथ था और उसके साथ-साथ पेंसिलवेनिया की सीमा तक गया था। अतः मैं बहुत-सी परिस्थितियों से उनकी अपेक्षा अधिक परिचित हूँ, जो दूर थे और जिन्हें उन परिस्थितियों का कम ज्ञान है। वहाँ पर हमारी स्थिति बहुत संकटपूर्ण थी। हम नार्थ (North) नदी और हैकेनसैक (Hackensack) नगर के बीच वाले सकरे भू-भाग में थे। हमारी शक्ति थोड़ी थी, यहाँ तक कि वह 'होव' (Howe) की शक्ति का चौथा भाग भी नहीं थी। दुर्ग रक्षक सेना की सहायता के लिए हम लोगों के पास कोई सेना नहीं थी। हमारी युद्ध-सामग्रियाँ इस शंका से स्थानांतरित कर दी गयी थीं कि कदाचित् 'होव' (Howe) 'जर्सी' में प्रवेश करने का प्रयत्न करे, और उस स्थिति में यह किला हमारे किसी काम का न रहे। क्योंकि प्रत्येक विचारवान व्यक्ति, चाहे वह सेना में रह चुका हो या नहीं, इतना सोच सकता है कि ऐसे साधारण दुर्ग केवल अस्थायी उपयोग के लिए होते हैं और जिन वस्तुओं की रक्षा के लिए इनका निर्माण होता है उन्हें हथियाने के लिए जिस समय शत्रु इनकी दिशा में प्रस्थान करता है, उसी समय इनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है। २० नवम्बर के प्रातःकाल उस दुर्ग में यह स्थिति थी। उसी दिन यह सूचना प्राप्त हुई कि दो सौ नौकाओं के साथ शत्रु सात मील की दूरी पर नदी के किनारे उतर पड़ा है। मेजर जनरल ग्रीन ने रक्षक-सेना को तुरन्त तैयार होने का आदेश दिया; और जनरल वाशिंगटन के पास एक दूत भेजा गया। उस समय जनरल वाशिंगटन 'हैकेनसैक' (Hackensack) नगर में थे जो कि हम लोगों के स्थान से, नदी पार करके जाने पर, छः मील दूर था। हैकेनसैक के पुल की रक्षा करना हमारा प्रथम लक्ष्य था। वह पुल हमसे छः मील और शत्रु से तीन मील पर था। जनरल वाशिंगटन लगभग पौन घण्टे

के वाद आ पहुँचे और सेना का नेतृत्व करते हुए [illegible]। शत्रुओ ने पुल के लिए हमसे टक्कर लेना ठीक न समझा, और हमारी सेना का अधिकांश भाग पुल के द्वारा तथा कुछ अंश नौका द्वारा नदी को पार कर गया। छकडो पर जितना सामान लद सकता था उतना हम लोग ले आये, शेष नष्ट हो गया। उस समय हमारा लक्ष्य था सेना को एक ऐसे स्थान पर पहुँचा देना जहाँ उसे 'जर्सी' या पेन्सिलवेनिया की सेना से सहायता मिल सके। हम लोग चार दिनो तक न्यूयार्क में रहे, दूरस्थित टुकड़ियों को एकत्रित किया गया और हमें जर्सी की सेना का सहयोग भी प्राप्त हुआ। जब हम लोगों को यह सूचना मिली कि शत्रु वढे चले आ रहे हैं तो, यद्यपि हमारी शक्ति उनकी शक्ति से कम थी, तथापि हम लोग शत्रु का सामना करने के लिए दो बार आगे बढे। मेरे मत में हौव (Howe) ने भूल की। यदि स्टेटन (Staten) द्वीप से वह अपनी सेना के एक भाग को एमब्वाय (Amboy) के मार्ग से आगे बढने का आदेश दिये होता, तो इस प्रकार वह बर्न्सविक (Burnswick) में हमारा सब सामान हथिया लेता, और पेंसिलवेनिया में हमारी प्रगति रोक देता। किन्तु यदि हम नरक की सीमित शक्ति में विश्वास करते हैं तो उसी प्रकार हमें यह भी मानना चाहिए कि उसके कार्यकर्त्ता किसी दैवी नियन्त्रण में रहते हैं।

हम लोग 'डेलवेयर' (Delaware) तक किस प्रकार पहुँचे, इसका पूरा विवरण न देकर केवल इतना कह देना मैं पर्याप्त समझता हूँ कि हमारे पदाधिकारी और सैनिक सभी लोगो ने साहस तथा सैनिक-भावना का पूरा परिचय दिया। यद्यपि वे थके-माँदे और पीडित थे; उन्हे प्रायः बिना विश्राम तथा भोजन व कपडे के रहना पडा; क्योकि बहुत दिनों तक पीछे हटने का यह अनिवार्य परिणाम था; फिर भी उन्होने सब कुछ धैर्यपूर्वक सह लिया। वे केवल यही चाहते थे कि शत्रुओ को पीछे हटाने में देश उनका साथ दे। वाल्टेयर (Voltaire) ने कहा है कि राजा विलियम (King William) का पूर्ण व्यक्तित्व केवल सकट और साहसिक कार्य के क्षणो में प्रकट होता था। जनरल वाशिंगटन के बारे मे भी यही कहा जा सकता है। कुछ मस्तिष्को में इस प्रकार की दृढता होती है कि वे साधारण स्थितियो से प्रभावित नही होते, किन्तु यदि वे किसी प्रकार प्रभावित हो जाते हैं तो उनकी प्रचुर सहनशीलता

प्रकट होती है। मैं इस गुण की गणना ईश्वर-प्रदत्त उन सार्वजनिक वरदानो में करता हूँ, जिन्हे हम तुरत नही जान पाते। ईश्वर ने वाशिंगटन को इस वरदान के साथ-साथ अवाधित स्वास्थ्य और चिंता में भी विकसित होनेवाला मस्तिष्क प्रदान किया है।

अमेरिका के कार्यों की स्थिति-विषयक सामान्य चर्चा करके मैं इस पत्र को समाप्त करूँगा। उस चर्चा का आरभ मैं एक प्रश्न से कर रहा हूँ। न्यू इगलैण्ड के प्रान्तो को शत्रु ने क्यो छोड दिया है, और इन वीच के प्रान्तों को युद्ध-क्षेत्र क्यो वना रखा है ? उत्तर सरल है। न्यू इंगलैण्ड टोरियो से पीडित नही है, जव कि हम पीड़ित हैं। ऐसे व्यक्तियो के विरुद्ध स्वर ऊँचा करते समय मैं सदैव नम्र रहा हूँ, और मैंने उनके सकटों को स्पष्ट रूप से उन्हे समझाने के लिए अगणित तर्क प्रस्तुत किये हैं, किन्तु उनकी मूर्खता अथवा नीचता के कारण एक संसार को नष्ट नही होने दिया जायगा। अव वह समय आ गया है जव कि वे या हम अपने विचारों को वदल दें; अन्यथा दो में से एक का विनाश निश्चित है। मैं पूछता हूँ कि टोरी हैं कौन ? यदि वे शस्त्र उठावें तो एक सहस्र टोरियो के विरुद्ध मैं केवल सौ "ह्विगो" को लेकर जाने में तनिक भी भयभीत न हूँगा। प्रत्येक टोरी भीरु होता है; क्योकि दासता और स्वार्थ पर आधारित भय ही उसे टोरी वनने के लिए विवश करते हैं। इस प्रकार के प्रभाव में रहनेवाला व्यक्ति निर्दय भले हो, किन्तु वह वीर नही हो सकता।

किन्तु इसके पूर्व कि हमारे और उनके वीच अमिट विभाजन-रेखा खींच दी जाय, अच्छा यह होगा कि हम परस्पर तर्क-पूर्वक विचार-विमर्श कर लें। टोरियो का चरित्र शत्रु के लिए निमंत्रण है। फिर भी उनके वीच, सहस्र में एक व्यक्ति भी इतना साहसी नही है कि वह खुले रूप से शत्रु का साथ दे सके। उन लोगों ने 'हौव' (Howe) को उसी प्रकार धोखा दिया है, जिस प्रकार उन्होने अमेरिका के लक्ष्य को क्षति पहुँचायी है। हौव (Howe) को आशा है कि वे लोग शस्त्र उठाकर उसका साथ देंगे। जब तक ये टोरी कन्धों पर वन्दूक रखकर उसकी सहायता नही करते, तव तक उसके लिए इनके मतों का कोई मूल्य नही है ; क्योकि हौव (Howe) सैनिकों को चाहता है, टोरियों को नहीं।

एक वार मैं टोरियो के सिद्धात पर क्रुद्ध हुआ था और वैसे अवसर पर

प्रत्येक व्यक्ति का क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। एक प्रसिद्ध टोरी, जो कि एमव्वाय (Amboy) के एक पथिकाश्रम का स्वामी था, आठ या नौ वर्ष के एक अत्यत सुन्दर लडके का हाथ पकडे अपने घर के द्वार पर खडा था। स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने विचारो को प्रकट कर लेने के बाद, अन्त में उसने अनुदार पिता के रूप मे कहा, 'मुझे अपने जीवन-भर शाति से रह लेने दो।' इस महाद्वीप में एक भी व्यक्ति ऐसा नही है, जो यह विश्वास न करता हो कि एक-न-एक दिन ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद होना है। अस्तु, एक उदार-मना पिता को यह कहना चाहिए था कि यदि सकट आकर ही रहेगा तो मेरे जीवन मे ही आ जाये, जिससे मेरी सतान शान्तिपूर्वक रह सके। इस प्रकार का विचार प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्तव्य का बोध करा देने के लिए पर्याप्त है। विश्व का कोई देश अमेरिका के समान भाग्यशाली नही है। अमेरिका कलह-कोलाहलपूर्ण विश्व से दूर है। शेष ससार के साथ व्यापार के अतिरिक्त उसे कुछ नही करना है। जिस प्रकार मैं यह विश्वास करता हूँ कि ईश्वर सृष्टि का शासन करता है, उसी प्रकार मै यह भी मानता हूँ कि जब तक अमेरिका विदेशी प्रभुत्व से मुक्त नही होता, तब तक उसे आनन्द नही प्राप्त हो सकता। स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक निरतर युद्ध होते रहेगे और अन्त में इस महाद्वीप की विजय होगी। क्योकि स्वतन्त्रता की लपटे कुछ समय के लिए शान्त भले हो जाय, उसकी अग्नि कभी भी बुझ नही सकती।

अमेरिका में कभी भी शक्ति का अभाव न था, और न है; किन्तु उस शक्ति के उचित प्रयोग का अभाव अवश्य था। बुद्धि एक दिन मे प्राप्त नही होती और इसमे कोई आश्चर्य नही है कि हम कार्यारम्भ मे भूल कर बैठते हैं। दया की अधिकता के कारण हम लोग सेना तैयार करना नही चाहते थे और सदुद्देश्य से प्रेरित, देश-रक्षक जन-सेना द्वारा अस्थायी सुरक्षा पर ही निर्भर थे। गर्मी के दिनो में हमे जो अनुभव प्राप्त हुआ, उससे हमने बहुत कुछ सीखा है। तो भी, जन-सैनिको की टोलियो के सम्मिलित प्रयत्न के द्वारा हमने शत्रु की प्रगति को सीमित कर दिया। ईश्वर को धन्यवाद है कि वे टोलियाँ पुनः एकत्रित होने लग गयी। मैं देश-रक्षक जन-सेना को आकस्मिक प्रयत्न के लिए सब से अच्छी सैनिक-टोली मानता हूँ, किन्तु दीर्घकालीन युद्ध के लिए वह अनुपयुक्त है। सम्भव है कि हौव (Howe) इस नगर पर आक्रमण करे। यदि

वह डेलवेयर (Delaware) के इस पार असफल हो जाता है, तो उसका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। किन्तु यदि वह सफल होता है, तो हमारे लक्ष्य को कोई क्षति नहीं होती। हमारे एक अंश के विरुद्ध उसने अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया है। मान लिया कि वह सफल होता है, तो परिणाम यह होगा कि महाद्वीप के दोनो छोरो से सेनाएँ उनकी सहायता के लिए चल पड़ेंगी जो इन बीच के प्रदेशो में सताये जा रहे हैं। हौव (Howe) सर्वत्र नहीं जा सकता। मैं हौव (Howe) को टोरियो का सबसे बड़ा शत्रु मानता हूँ। वह उनके देश में युद्ध ला रहा है, हौव और टोरियो के कारण ही देश में युद्ध हो रहा है, अन्यथा शान्ति होती। यदि हौव देश के बाहर अभी निकाल दिया गया, तो मेरी हार्दिक इच्छा है कि 'ह्विग' और 'टोरी' का भेद सदा के लिए दूर कर दिया जाय: किन्तु यदि टोरी उसे आगे बढने का प्रोत्साहन देते हैं अथवा उसके आ जाने पर उसकी सहायता करते हैं, तो मैं चाहूँगा कि दूसरे वर्ष हमारी सेना उन्हे देश से बाहर निकाल दे और कांग्रेस उनकी संपत्ति पर अधिकार करके उन लोगो की सहायता में उसका उपयोग करे जो देश-सेवा के कार्य में पीड़ित हुए हैं। आगामी वर्ष का एक ही सफल युद्ध इस काम को पूरा कर देगा। उन दुष्ट व्यक्तियो की सम्पत्ति का अपहरण करके अमेरिका दो वर्षों तक युद्ध कर सकता है, और उनके देश-बहिष्कृत होने पर आनन्दित होगा। यह न कहिए कि यह बदला है। यह मात्र उन पीडित व्यक्तियों का नम्र क्रोध है जिनकी दृष्टि में सार्वजनिक हित के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं है तथा जिन्होंने संदिग्ध प्रतीत होनेवाली घटना के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया है। परन्तु निश्चित कठोरता के प्रति कोई भी तर्क प्रस्तुत करना मूर्खता मात्र है। वक्तृता कानों को प्रभावित कर सकती है, वेदना की वाणी करुणा के आंसू बहा सकती है, किन्तु पूर्वधारणा के कारण पत्थर बने हुए हृदय तक किसी की गति नहीं हो सकती है।

इस कोटि के व्यक्तियो को छोड कर, एक मित्र के स्नेहपूर्ण उत्साह के साथ, मैं अब उन लोगो से कुछ कहना चाहता हूँ जिन्होंने स्तुत्य कार्य किये हैं और जो भविष्य में भी इसी प्रकार कार्य करने के लिए कृत-संकल्प हैं। मैं इस प्रान्त या दूसरे प्रान्त के कुछ लोगो से नही, वरन् सभी लोगो से कह रहा हूँ कि आप लोग हमारी सहायता करें। जब इतने बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम प्रयत्न

कर रहे हैं, तो अपनी शक्ति को यथासम्भव अधिक करना अच्छा है। हम भावी विश्व को यह कहने का अवसर दें कि शीतकाल के मध्य में, जिस समय आशा और सदाचार के अतिरिक्त अन्य कुछ सफल नहीं हो सकता था; सामान्य आपत्ति से भयभीत होकर, अमेरिका के नगर और गाँव सगठित होने तथा भय के उस कारण को दूर करने के लिए एकत्रित हुए। भूल जाइये कि हमारे सहस्रो व्यक्ति नष्ट हो चुके हैं; दस सहस्र की सख्या मे आगे बढ़िए और भाग्य के ऊपर अपना भार न छोड कर अपने विश्वास को कार्यरूप में प्रदर्शित कीजिए जिससे ईश्वर आपको आशीर्वाद दे। आप चाहे किसी प्रान्त के रहने वाले हो अथवा जीवन के चाहे किसी भी स्तर पर हो, अभिशाप और वरदान दोनो में आपका अंश होगा। दूर और निकट के प्रदेश, भीतरी और सीमान्त काउण्टियाँ, धनी और निर्धन सभी समान रूप से दु ख अथवा सुख के भागी होगे। जो हृदय इस समय भावना-शून्य है वह मृत है। भावी सन्ताने उसकी कायरता को धिक्कारेंगी जो ऐसे समय पीछे हटता है जबकि थोडी-सी शक्ति पूरे देश को बचाकर उसे सुखी बना देती। मैं उस आदमी को प्यार करता हूँ जो सकटो में मुस्करा सकता है, जो आपत्तियो से शक्ति प्राप्त करता है और विवेक के द्वारा वीर बनता है। पीछे हटना क्षुद्र मस्तिष्क वालो का काम है। किन्तु जिनका हृदय दृढ़ है, और अन्तःकरण जिनके चरित्र का समर्थन करता है, वे लोग मृत्यु पर्यन्त अपने सिद्धातो का अनुसरण करते हैं। स्वय मेरे लिए, मेरी तर्क-पद्धति प्रकाश-रश्मि के समान सरल और स्वच्छ है। मेरा दृढ विश्वास है कि विश्व-भर का कोष मुझे आक्रमणात्मक युद्ध के लिए प्रेरित न कर पाता, क्योकि इसे मैं हत्या मानता हूँ। किन्तु यदि एक चोर मेरे घर मे घुस आता है, मेरी सम्पत्ति को जलाता या नष्ट करता है, मुझे तथा मेरे परिवार के अन्य सदस्यो को मारता है अथवा प्रत्येक दशा में अपनी निरकुश इच्छा द्वारा मुझे बाँधने की धमकी देता है, तो क्या मैं इसे सहूँ? मेरे लिए इन बातो का कोई अर्थ नहीं है कि वह कौन है, एक राजा या साधारण आदमी, मेरे देश का निवासी या विदेशी। कोई एक दुष्ट इस घृणित कार्य का कर्ता है अथवा दुष्टो की एक सेना। यदि हम मूल रूप से विचार करे तो हमे कोई अन्तर न मिलेगा, और न इस बात के लिए उपर्युक्त कारण दिया जा सकता है कि एक स्थिति में हम उसे दड दें और दूसरी स्थिति में उसे क्षमा कर दे। मुझे राज-द्रोही कहा जाय, मैं इसे

स्वीकार करता हूँ। इससे मेरा कुछ बिगड़ता नहीं है। किन्तु निश्चित रूप से मेरे लिए वह महान दु.ख की बात होगी, यदि मै एक ऐसे राजा की राज-भक्ति स्वीकार करके अपनी आत्मा को अपवित्र करूँ जिसका आचरण एक नशा-मूढ, मन्द, हठी तथा अयोग्य व्यक्ति के समान है। कुछ स्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनके वारे में जो कुछ कहा जाय सव थोडा है। वर्तमान स्थिति उनमें से एक है। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो भावी बुराइयो को पूर्णरूप से समझ नही पाते। वे यह सोच कर सांत्वना प्राप्त कर लेते हैं कि यदि शत्रु विजयी हो गया तो वह उन पर दया करेगा। जिन्होने न्याय करना स्वीकार नही किया, उनसे दया की आशा करना मूर्खता की पराकाष्ठा है। जहाँ विजय लक्ष्य है, वहाँ दया भी केवल युद्ध-सम्वन्धी चाल होती है। गीदड की धूर्तता और सिंह का हिंसात्मक आक्रमण दोनो प्राणघातक होते हैं; और हमें दोनो के प्रति सजग रहना चाहिए। कुछ धमका कर और कुछ वचन देकर 'हौव' जनता को, शस्त्र रख देने तथा उसकी दया प्राप्त करने के लिए, आतंकित करना या छलना चाहता है। मन्त्रिमडल ने गेज (Gage) को यही करने को कहा और टोरियो के अनुसार यही शान्ति स्थापना है—'वह शान्ति जो समझ से परे हैं।' यह वह शान्ति होगी जिसके तुरत वाद ही इतना अधिक विनाश होगा जिसकी हम लोग कल्पना भी नही कर सकते। पॅसिलवेनिया के निवासियो, इन बातों पर विचार कीजिए। यदि सीमान्त की काउण्टियाँ शस्त्र रख दें तो वे सुसज्जित रेड-इण्डियनों की सेना का शिकार होंगी; कदाचित् टोरी इसके लिए दुःखी न होंगे। यदि भीतरी काउण्टियाँ शस्त्र रख दें तो कर्त्तव्य-च्युत होने के अपराध में सीमान्त काउण्टियाँ अपने इच्छानुसार उन्हे दड देंगी। यदि कोई प्रान्त हथियार डाल दे, तो शेष प्रान्तो के रोप से उसे बचाने के लिए "हौव" को ब्रिटिश सेना और किराए पर रखी गयी जर्मन सेना को उस प्रान्त में भर देना पड़ेगा। पारम्परिक प्रेम की शृंखला में पारस्परिक डर मुख्य कडी है; और जो प्रान्त इस सम्बन्ध को तोडे उसके लिए वह दुःख की बात होगी। हौव (Howe) आप लोगों को निर्दय विनाश की ओर जाने का निमंत्रण दे रहा है। जो इसे नही समझेंगे वे या तो शठ होंगे या मूर्ख। यह मेरा कल्पना-विलास नहीं है, वरन् मैं सरलतम भाषा में सत्य को स्पष्ट रूप से आपकी आँखों के सम्मुख रखने के लिए तर्क प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मैं डरता नही; इसके लिए मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ। मैं डर का कोई वास्तविक कारण समझता भी नही। मैं अपनी यथार्थ स्थिति को भली-भाँति जानता हूँ और उससे मुक्ति पाने का मार्ग भी मुझे ज्ञात है। जब हमारी सेना एकत्रित थी, हौव (Howe) को हमसे युद्ध करने का साहस नही हुआ। उसके लिए यह गौरव की बात नही है कि वह "ह्वाइट प्लेन्स" से भाग खड़ा हुआ तथा असुरक्षित जर्सियो को लूटने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु हमारे लिए यह अवश्य महान श्रेय की बात है कि थोड़े आदमियो को साथ लेकर हमने चार नदियो को पार किया। कोई यह नही कह सकता कि हम लोग शीघ्रता के साथ पीछे हटे; क्योकि तीन सप्ताह तक हम लोग इस आशा के साथ पीछे लौटते रहे कि देश को हमारी सहायता करने का समय मिल जाय। दो बार हम लोग शत्रु का सामना करने के लिए घूम पडे थे, और अंधेरा होने तक मैदान मे डटे रहे। हमारी सेना में भय का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नही हुआ; और कुछ भीरु तथा उदासीन व्यक्ति यदि देश भर में झूठा आतंक न फैलाते, तो 'जर्सी' (Jersey) कभी लुट न गया होता। हम लोग पुन एकत्रित हैं और हो रहे हैं। महाद्वीप के दोनो किनारो पर नयी सेना मे लोग शीघ्रता से भर्ती हो रहे हैं और सर्व प्रकार से सुसज्जित साठ सहस्र सैनिको को साथ लेकर हम दूसरा युद्ध आरंभ करने में समर्थ होगे। यह हमारी स्थिति है। निरन्तर प्रयत्न और धैर्य के बल पर हमें भविष्य मे गौरवपूर्ण परिणाम की आशा है। भीरुता तथा आधीनता का परिणाम यह होगा कि हमारा देश लुट जायगा, नगर उजड जायेंगे; यहाँ के निवासी सुरक्षित नही रहेगे। दासता से मुक्त होने की कोई आशा न होगी। हमारे घर किराये पर बुलाये गये जर्मन सिपाहियो के लिए बैरको एव वेश्या-गृहो के रूप में बदल जाएँगे, और देश मे वर्ण-सकरो की उत्पत्ति होगी। देश के इस चित्र को देखिए और इस पर आँसू बहाइए! फिर भी यदि कोई ऐसा विचारशून्य अभागा व्यक्ति है जो इस पर विश्वास नही करता है, तो उसे यातना सहने के लिए छोड़ दीजिए।

अमेरिका का संकट

[शांति और उसके सम्भव लाभ]

जिन्होंने मानव-आत्मा की परख की वे क्षण समाप्त हो गये और विश्व में सबसे महान और सपूर्ण क्रान्ति गौरव तथा आनन्दपूर्वक पूरी हुई।

भय की पराकाष्ठा से सुरक्षा तक, युद्ध के कोलाहल से शान्ति की निस्तब्धता तक, जाने का विचार तो अत्यन्त मधुर होता है; किन्तु उसके लिए इन्द्रियों की क्रमिक शांति की आवश्यकता है। सहसा उपस्थित होने पर शान्ति भी हमें हतबुद्धि बना देने की क्षमता रखती है। चिरकालीन प्रचड झंझावात, यदि एक क्षण में रुक जाये तो हम आनन्द की नही, वरन् आश्चर्य की स्थिति में पड़ जायेंगे। स्मृति के कुछ क्षणो के उपरात ही हम आनन्द का आस्वादन कर सकते हैं। ऐसे अवसर प्राय. विरले होते हैं, जब कि मस्तिष्क आकस्मिक परिवर्तन के योग्य बना लिया जाता है। मानव-मस्तिष्क को स्मरण और तुलना के द्वारा आनन्द की उपलब्धि होती है, और जब तक मस्तिष्क नवीन दृश्य का रस लेने नही लग जाता, तब तक विचार और तुलना के लिए पर्याप्त समय चाहिए।

वर्तमान स्थिति में, लक्ष्य की महानता एव उसके निमित्त झेली गयी भाग्य की अनिश्चितताएँ, वे असंख्य और जटिल सकट जिनको हमने झेला है अथवा जिनसे हम बच निकले, हमारी वर्तमान प्रतिष्ठा तथा हमारा आशापूर्ण महान भविष्य आदि सभी हमें विचार करने के लिए बाध्य करते हैं।

... को सुखी बनाने की शक्ति का अपने में अनुभव करना, मनुष्य जाति ... एक आदर्श उपस्थित करना, विश्व के रगमच पर एक ऐसे चरित्र ... करना जो आज तक अज्ञात रहा तथा हमारे हाथों सुपुर्द किये ... अभिनव निर्माण-कार्य को सम्पन्न करना, आदि की महानताओं का कुछ अनुमान लगाया जाय अथवा जितने आभार के साथ उनको स्वीकार ... या जाय, वह सब थोड़ा है।

अस्तु, स्मृति के इन क्षणो में जब कि आँधी रुक रही है और विक्षुब्ध

मस्तिष्क विश्राम की ओर बढ रहा है, हम अतीत के दृश्यो को देखे और अनुभव द्वारा यह तय करे कि भविष्य मे क्या करना है।

सुख के जितने साधन-स्रोत अमेरिका को प्राप्त हैं उतने विश्व के अन्य किसी देश को नही। अमेरिका के जीवन का उष काल निरभ्र और उज्ज्वल था। उद्देश्य श्रेष्ठ था। उसके सिद्धात उचित और उदार रहे हैं। उसकी प्रकृति शान्त और दृढ है। सर्वोत्तम कार्यों से उसका आचरण सुव्यवस्थित रहा है। उसका सभी कुछ गौरवास्पद है। कदाचित् विश्व में ऐसा कोई देश नही है जिसका मूल इतना स्तुत्य रहा हो। आरम्भ में यहाँ आकर, लोग जिस प्रकार बसे, वह क्रान्ति के लक्षणो के अनुरूप था। रोम किसी समय विश्व में सर्वोत्तम साम्राज्य था, किन्तु उसका मूल क्या था? लुटेरों का एक झुंड। लूट-पाट ने उसे सम्पन्न किया और असीम अत्याचारों ने उसे महान बनाया। किन्तु, अपने जीवन की तथा जिन-जिन परिस्थितियों को पार करता हुआ वह आज की स्थिति को प्राप्त हुआ है, उनकी चर्चा करने में अमेरिका कभी भी लज्जित नही होगा।

अस्तु, यदि अतीत की स्मृतियाँ अपना कार्य उचित रूप से करें तो उन्हे अमेरिका को अपने प्रारम्भिक यश की वृद्धि-विषयक महत्वाकाक्षा की प्रेरणा देनी चाहिए। ससार ने अमेरिका को आपत्ति में महान देखा है। हमने झुकने की भावना के बिना, वीरता और गर्व के साथ अनेको कठिनाइयो पर विजय प्राप्त की है। आपदाओ के बादल ज्यो-ज्यो घने होते गये हैं, त्यो-त्यो हम लोग दृढ से दृढ़तर होते रहे हैं। अमेरिका ने जो कुछ किया वह उसके धैर्य के अनुरूप हैं। हम विश्व को दिखा दे कि युद्ध के समय हमने जिस वीरता का परिचय दिया है, शान्ति के क्षणो में, हमारी सचाई उसी के अनुरूप है।

इस समय अमेरिका शातिपूर्ण गृह-जीवन मे प्रवेश कर रहा है, जहाँ निराशा की गहरी छाया नही, वरन् परिश्रम के पुरस्कार तथा माधुर्य का आनन्द है। इस स्थिति में उसे यह कदापि नही भूलना चाहिए कि, स्वतत्रता के समान ही स्वच्छ राष्ट्रीय यश का भी महत्व है; क्योकि उसमें ऐसा सौन्दर्य है जो विश्व को यहाँ तक कि शत्रुओ को भी, अपने अनुकूल बना लेने में समर्थ है। इसके द्वारा वह गौरव प्राप्त होता है, जो प्रायः शक्ति से श्रेष्ठ है और जो वहाँ भी सम्मानित होता है जहाँ आडम्बर एवं वैभव असफल हो जाते हैं।

अमेरिका की क्रान्ति उस युग के लिए शाश्वत गौरव है जिसने उसे सम्पन्न किया। इसने किसी भी मानवीय प्रयत्न की अपेक्षा विश्व को उद्बुद्ध करने और मानव-जाति मे उदारता एव स्वतंत्रता की भावना का विस्तार करने में अधिक योग दिया हैं। इसलिए इस पर, चाहे किसी भी निमित्त अथवा स्रोत से, यदि, एक भी कलंक का टीका लग गया, तो वह एक ऐसी अवांछनीय घटना होगी, जिसके लिए सदैव शोक मनाया जायगा, और जिसे लोग कभी नही भूलेंगे।

चिरकालीन युद्ध की भीषण आपदाओं में से यह आपदा कुछ कम नही है कि इसके कारण मस्तिष्क उन मधुर ऐन्द्रिक अनुभवो से विरक्त हो जाता है जो अन्य क्षणो में अत्यंत रमणीय प्रतीत होते हैं। दु.ख का निरन्तर दर्शन हमारी कोमल अनुभूतियों को कुण्ठित कर देता है। उसे धैर्यपूर्वक सहन करने की आवश्यकता हमें उससे पर्याप्त परिचित करा देती है। इसी प्रकार समाज के प्रति हमारे कई नैतिक कर्तव्यो में निरन्तर ढील आती रहती है, और केवल आवश्यकतावश उन्हे सम्पन्न करने की प्रथा हमारे बीच चल पड़ती है। वास्तव में, इस प्रकार कर्त्तव्य-विमुख होना अपराध है, किन्तु प्रथा की आड मे वह क्षमा करने योग्य एक निमित्त बन जाता है। फिर भी, यदि एक राष्ट्र अपने चरित्र के विषय मे उचित रूप से विचार करे, तो वह पवित्रतापूर्वक उसकी रक्षा कर सकेगा। जिस निष्कलंक चरित्र के साथ अमेरिका ने अपना कार्य आरम्भ किया, उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर चरित्र से किसी देश ने अपने कार्य का आरम्भ नही किया। उस चरित्र की प्रतिष्ठा बनाए रखने का उत्तरदायित्व जितना अमेरिका पर है, उतना अन्य किसी राष्ट्र पर नही है।

अमेरिका ने जो ऋण लिया है उसके बदले में उसे जिस लक्ष्य की प्राप्ति हुई तथा उससे जितने लाभ होंगे, इन सबकी चर्चा की कदाचित् ही आवश्यकता है। अपने इच्छानुसार सुखपूर्वक रहने और काम करने का उसे अधिकार है। विश्व उसके हाथो में है। उसके व्यापार पर किसी भी विदेशी शक्ति का विशेष अधिकार नही है। कोई भी विदेशी शक्ति, न तो उसके विधान को बिगाड सकती है, और न उसकी उन्नति पर नियन्त्रण रख सकती है। संघर्ष समाप्त हो गया। यह एक-न-एक दिन होना था और कदाचित् उसके लिए इससे

अधिक उपयुक्त अवसर दूसरा नही हो सकता था।१ एक अत्याचारी शासक के स्थान पर, अमेरिका को एक ऐसा 'सघ' प्राप्त हुआ है जिसकी आदर्श महत्ता और सार्वलौकिक उदारता को शत्रुओ ने भी बाध्य होकर स्वीकार किया है।

शान्ति, स्वतन्त्रता और सार्वभौमिक वाणिज्य आदि के कारण अमेरिका के राज्यो को अलग-अलग और सामूहिक रूप से अपने घरेलू कामो की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त अवसर मिलेगा; और वे इस प्रकार कार्य करेंगे कि कोई उनकी निन्दा न कर सकेगा। पुन. प्राप्त करने की अपेक्षा चरित्र को बचाये रखना अधिक सरल है। यदि कोई मनुष्य किसी बुरे उद्देश्य से अथवा आत्मा की क्षुद्रता के कारण उस चरित्र को क्षति पहुँचाने में सहयोग प्रदान करता है, तो वह एक ऐसा अपकार्य करता है जिसे सुधारना उसके वश की बात न होगी।

हम लोगो ने भावी पीढी के लिए 'पैतृक सम्पत्ति' स्थापित कर ली है। अस्तु, अच्छा यह होगा कि हम गौरव के साथ उसे अगली पीढ़ी को सौप दे।

१—यह सिद्ध हो चुका है कि हमारी क्रान्ति सर्वाधिक उपयुक्त अवसर पर आरम्भ हुई; किन्तु जिस धुरी पर सारा चक्र घूमता रहा है, वह है राज्यों का सघ (Union of the States)। पारस्परिक सहयोग के बिना विदेशी शत्रु पर विजय प्राप्त करने में प्रत्येक राज्य की असमर्थता से, स्वभावतः, इस संघ का जन्म हुआ।

युद्धारम्भ के अवसर पर हमारे राज्यों में से प्रत्येक, यदि, अपेक्षाकृत कम समर्थ रहा होता तो उनकी सगठित शक्ति भी इस काम को न कर पाती। दूसरी ओर यदि उनमें से प्रत्येक अपेक्षाकृत अधिक समर्थ रहा होता तो वे कदाचित् सगठित होने की आवश्यकता को महसूस न कर पाते, उस स्थिति में वे या तो, अलग-अलग अथवा छोटे-छोटे सघों के रूप में शत्रु से लड़ते और अलग-अलग जीत लिए जाते।

कोई एक राज्य, अथवा कुछ राज्यों के संघ की शक्ति अमेरिका के वर्तमान 'संयुक्त राज्य' की शक्ति के तुल्य हो सकती है या नहीं, हम यह नहीं कह सकते, और यदि ऐसा कभी सम्भव भी हो तो न जाने कितने वर्षों के बाद वह दिन आयगा। हम लोगों ने सामूहिक रूप से युद्ध को सफल बनाने तथा विश्व में राष्ट्रीय गौरव की रक्षा करने की असीम कठिनाइयों को देखा है। इसलिए यदि हम अपनी बुद्धि का दुरुपयोग न करें, तो अतीत के अनुभवों और अब तक के प्राप्त ज्ञान के आधार पर, हमें उस कल्याणकारी 'सघ' को दृढ़ बनाने की आवश्यकता तथा उसके प्रचुर लाभ को महसूस करना चाहिए, क्योंकि इसी संघ के कारण हमारी मुक्ति हुई है अन्यथा हम कहीं के न होते।

राज्यो की योग्यता, उद्देश्य की महानता और राष्ट्रीय चरित्र के मूल्यो की तुलना मे हम जो त्याग करेंगे, वह अत्यल्प होगा।

किन्तु, एक विवेकशील व्यक्ति के लिए राज्यों की एकता अत्यत महत्वपूर्ण कार्य है, जिसके सम्पन्न होने पर अन्य कार्य अत्यन्त सरल हो जायेंगे। इसी एकता पर हमारा राष्ट्रीय चरित्र निर्भर है। इसी के बल पर हमें अपने देश में सुरक्षा और विदेशो में प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। संसार हमें इसी के माध्यम से एक राष्ट्र के रूप में जानता है या जान सकेगा। सयुक्त राज्य अमेरिका के झण्डे के कारण ही समुद्र में अथवा विदेशी बन्दरगाहो पर, हमारे जहाज और वाणिज्य सुरक्षित हैं। मैत्री, शान्ति अथवा वाणिज्य आदि सभी प्रकार की हमारी सन्धियाँ 'सयुक्त राज्य' अमेरिका के ही नाम से की जाती हैं। यूरोप हमें अन्य किसी नाम से नहीं जानता।

इस साम्राज्य का राज्यो में विभाजन हमारी सुविधा के लिए है। किन्तु, बाहर यह भेद मिट जाता है। प्रत्येक राज्य के कार्य घरेलू हैं। अपनी सीमा के आगे वे नही जा सकते। इन राज्यों में जो सबसे अधिक सम्पन्न राज्य है उसका सम्पूर्ण धन, यदि उसकी सरकार की वार्षिक आय के रूप में प्राप्त हो जाय तो भी विदेशी शत्रु के आक्रमण को रोकने में वह समर्थ न होगा। संक्षेप में, 'संयुक्त राज्य' के अतिरिक्त हमारा राष्ट्रीय प्रभुत्व और किसी रूप में नही है; और यदि, कोई अन्य रूप होता तो वह हमारे लिए प्राणघातक होता। क्योंकि उसका व्यय इतना अधिक होता कि उसे सम्भालना असम्भव हो जाता। एक व्यक्ति या एक राज्य अपने को चाहे जिस नाम से पुकारे, किन्तु ससार और विशेषकर शत्रुओं का ससार, केवल नाम से आतंकित नहीं होता। 'साम्राज्य' में अपने उन सभी भागो की रक्षा करने की शक्ति होनी चाहिए जिनके सयोग से उनका निर्माण हुआ है। 'संयुक्त राज्य' के रूप में हममें वह शक्ति है, और हम उसकी महत्ता के योग्य हैं, अन्यथा नहीं। बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से व्यवस्थित होने पर हमारा 'सघ' महान एवं शक्तिसम्पन्न होने का सरलतम साधन है तथा अमेरिका की वर्तमान स्थिति में स्वीकृत होने योग्य सरकार के स्वरूप का सुन्दरतम आविष्कार है। अमेरिका के 'सयुक्त राज्य' की वर्तमान सरकार प्रत्येक राज्य से ऐसी शक्ति एकत्रित करती है, जो स्वयं अपने में अपूर्ण होने के नाते अपने राज्य के काम नहीं आ सकती

किन्तु इस प्रकार, सब राज्यो की सम्मिलित शक्ति सब राज्यों का काम सम्पन्न करने मे समर्थ होती है।

राज्यो के अलग-अलग प्रभुत्व का क्या परिणाम होता है इसके उदाहरण हालैण्ड के राज्य हैं। अपनी विच्छिन्न स्थिति के कारण उन्हे नाना प्रकार के षड्यन्त्र, क्षतियों, आपदाओ और शत्रुओ आदि का सकट बना रहता है। सामूहिक रूप से प्राय. किसी निर्णय पर पहुँचने तथा उस निर्णय को कार्यान्वित करने की असम्भावना उनके लिए असीम आपदाओ का स्रोत है। यदि हम उसी प्रकार की विच्छिन्नावस्था मे रहेगे तो हमें भी उन्ही आपदाओ को भोगना पडेगा।

समाज के प्रति व्यक्ति का जो कर्त्तव्य है, वही 'संयुक्त राज्य' के अन्तर्गत रहने वाले प्रत्येक राज्य का उसके प्रति है। सम्पूर्ण को सुरक्षित बनाने के लिए इकाई को अपना कुछ त्याग करना पडता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हम जितना देते हैं उससे अधिक प्राप्त करते हैं और मूल से अधिक वार्षिक सूद पाते हैं। जब कभी मैं अपनी स्वतन्त्रता और सुरक्षा के उस महान सरक्षक 'सघ' की असम्मानपूर्ण चर्चा सुनता हूँ तो मुझे दु ख होता है। अमेरिका के सविधान में यह 'सघ' सर्वाधिक पवित्र तत्व हे और प्रत्येक व्यक्ति को इस पर गर्व होना चाहिए। 'सयुक्त राज्य' की नागरिकता हमारा घरेलू भेद है। इम महाद्वीप के भीतर देश में हम राज्य विशेष के नागरिक के रूप में जाने जाते हैं, किन्तु बाहर अमेरिका के नागरिक के रूप में। 'अमेरिका-निवासी' हमारी महान पदवी है; हमारी अन्य अपेक्षाकृत हीन पदवियाँ स्थान के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं।

जहाँ तक मुझसे हो सकता था, मैंने सबका स्नेह पाने का, सब के हितो को एक सम्बन्ध-सूत्र में बांधने का और देश के मस्तिष्क को एक केन्द्र पर अवस्थित करने का प्रयत्न किया। इस विचार से कि मैं क्रान्ति के बुनियादी काम अपेक्षाकृत अच्छे ढग से कर सकूँ, मैंने अपने प्रान्त अथवा 'सयुक्त राज्य' में पद अथवा लाभ के स्थानो की उपेक्षा की है। मैं सदैव दलगत सम्बन्धो से दूर रहा। इतना ही नही, अपितु मैंने अपने सभी व्यक्तिगत तथा अल्प महत्व के कार्यों की ओर ध्यान नही दिया। यदि हम उस महान कार्य पर विचार करें जिसे हमने पूरा किया है तथा उसकी उचित महत्ता का अनुभव

करें, तो हमें यह विदित होगा कि वैयक्तिक क्षुद्र कलह और अशिष्ट विवाद हमारे महान चरित्र के लिए अपमानजनक तथा आनन्द के लिए हानिकारक हैं।

अमेरिका की स्थिति ने मुझे लेखक बनाया। मैंने देखा कि स्वतंत्रता की घोषणा, जो एकता स्थापित करके हमारी रक्षा कर सकती थी, न करके देश उन लोगों से एक असम्भव और अप्राकृतिक समझौता करने जा रहा है, जो उसे निर्बल बना देने के लिए कृत-संकल्प हैं। देश की इस भयावह स्थिति ने मेरे मस्तिष्क को इस प्रकार प्रभावित किया कि मेरे लिए चुप रहना असम्भव हो गया। गत सात वर्षों से अधिक समय तक यदि मैंने देश की कोई सेवा की है, तो यह भी निश्चित है कि मैंने साहित्य को अनासक्त भाव से मानवता की महान सेवा में नियोजित करके उसके यश की वृद्धि की है; और यह भी प्रकट कर दिया है कि अव्यभिचरित प्रतिभा का भी अस्तित्व होता है।

मैं बराबर इस बात को मानता रहा हूँ कि स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है; वह असाध्य नहीं है। हाँ, आवश्यकता इस बात की है कि देश में उसके लिए उपयुक्त विचार उत्पन्न हों, और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाय। विश्व में यह अद्वितीय घटना है कि इतने विशाल देश के निवासी, जिनकी भिन्न-भिन्न प्राचीन चिन्तन-पद्धतियाँ हैं और भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं, सहसा एक राजनैतिक परिवर्तन के द्वारा एक साथ प्रभावित हो उठे, और जब तक उन्हें पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई तब तक अच्छे और बुरे अवसरों को झेलते हुए समान रूप से उन्होंने अपने मत का समर्थन किया।

किन्तु, युद्ध के दृश्य समाप्त हो गये हैं और प्रत्येक व्यक्ति का मस्तिष्क अपने गृह-कार्यों तथा अपेक्षाकृत अधिक सुखमय जीवन की ओर मुड़ चला है। अतः मैं इस विषय को यहीं समाप्त करता हूँ। मैंने बड़ी सचाई के साथ, आरम्भ से अन्त तक, इसके प्रत्येक पहलू पर विचार किया है; और भविष्य में मैं चाहे जिस देश में रहूँ, मैंने अमेरिका की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के निमित्त जो कार्य किया है, उस पर मैं सच्चे गर्व का अनुभव करता रहूँगा। मुझे मानवता की सेवा करने का अवसर मिला, इसके लिए मैं प्रकृति और परमेश्वर का सदैव आभार मानता रहूँगा।

फिलाडेलफिया, अप्रैल १६, १७८३ सामान्य बुद्धि

मनुष्य के अधिकार
(भाग – १)

जार्ज वाशिंगटन,

प्रेसीडेण्ट, 'सयुक्त राज्य' अमेरिका ।

श्रीमान्,

आपके अनुकरणीय उदात्त गुणो ने स्वतन्त्रता के जिन सिद्धांतो की स्थापना में अत्यधिक गौरवपूर्ण सहयोग प्रदान किया है, उनके समर्थन मे मै आपको यह लघुकृति समर्पित करता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मनुष्य के अधिकारों को आपकी उदारता द्वारा अपेक्षित सार्वलौकिकता प्राप्त हो और आप प्राचीव ससार के पुनर्जन्म को नूतन विश्व के रूप में देखने का आनन्द प्राप्त कर सके।

आपका अत्यन्त कृतज्ञ

और

आज्ञाकारी विनम्र सेवक

टॉम पेन

सांविधानिक नियम की परिसीमाएँ

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति पर 'वर्क' द्वारा लिखित पत्रक उन सभी अशिष्टताओं या दुर्व्यवहारो का असाधारण उदाहरण है, जिनके कारण राष्ट्र अथवा व्यक्ति एक दूसरे के प्रति संतप्त हो उठते हैं। फ्रांस की जनता और उसकी 'राष्ट्रीय सभा' को इंगलैण्ड तथा उसकी संसद् के कार्यों से कोई प्रयोजन नही है। किन्तु वर्क ने फ्रास की जनता पर और उसकी संसद् पर ऐसा आक्रमण आरम्भ किया जिसके लिए फ्रांस की ओर से कोई उत्तेजना प्राप्त नही हुई थी। वर्क का यह व्यवहार आचार की दृष्टि से अक्षम्य है, और राजनीति की दृष्टि से अनुचित है। अंग्रेजी भाषा में ऐसा कोई अपशब्द नही है जिसका प्रयोग उन्होंने फ्रास के राष्ट्र तथा उसकी 'राष्ट्रीय सभा' के लिए न किया हो। विद्वेष, पूर्वधारणा, अज्ञान या ज्ञान आदि के प्रभाव के अन्तर्गत वर्क को जो कुछ आया उसे उन्होने अपने प्रचुर क्रोध के साथ लगभग चार सौ पृष्ठो में व्यक्त कर दिया। जिस मूड में और जिस योजना के आधार पर वे लिख रहे थे, उसके सहारे वे न जाने कितने सहस्र पृष्ठ लिख जाते। भावोन्माद की दशा में जब जिह्वा अथवा लेखनी ढीली पड जाती है तो विषय तब तक समाप्त नहीं होता जब तक मनुष्य थक न जाय।

फ्रास के कार्यों के विषय में मत निर्धारित करते समय वर्क ने अब तक कभी भूल नहीं की और न उन्हे कभी निराशा ही हुई। किन्तु उनकी आशा में इतना नैपुण्य है या उनकी निराशा में इतना द्रोह है कि उसके कारण वर्क को अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए नये बहाने मिला करते थे। एक समय था जब वर्क को यह विश्वास दिलाना असम्भव था कि फ्रास में राज्य-क्रांति होगी। उस समय उनका मत था कि क्राति के लिए फ्रांस में न शक्ति है और न सहनशीलता। किन्तु अब वहाँ राज्य-क्रान्ति हो चुकी है इसलिए उसकी निन्दा करके वे अपने उस पूर्व-निर्धारित मत का बचाव करना चाहते हैं।

फ्रास की 'राष्ट्रीय सभा' की निन्दा करने पर भी पर्याप्त संतोष न होने पर वर्क ने उदारमना डाक्टर प्राइस (Dr. Price) तथा इगलैंड के 'क्रान्ति-समाज' (Revolution society) और 'सांविधानिक-सूचना-समाज'

(society for constitutional information) पर अपना क्रोध उतारा।

जैसा कि इंगलैंड में लोग मानते हैं, सन् १६८८ ई० में वहाँ क्रान्ति हुई थी। ४ नवम्बर, सन् १७८९ ई० के दिन, अर्थात् उपर्युक्त क्रान्ति के वार्षिकोत्सव पर, डा० प्राइस ने जनता को धर्मोपदेश दिया। उसकी चर्चा करते हुए श्री बर्क महोदय कहते है कि राजनीतिक धर्मोपदेशक महोदय ने दृढतापूर्वक यह स्वीकार किया है कि क्रान्ति के सिद्धान्तो के द्वारा इगलैंड की जनता ने तीन बुनियादी अधिकार प्राप्त किये हैं। यथा :

१. अपने शासको को चुनना।

२. दुराचार के कारण उन्हें पद-च्युत करना।

३. अपने लिए सरकार का निर्माण करना।

डा० प्राइस यह नही कहते कि उपर्युक्त काम करने के अधिकार का अस्तित्व अमुक व्यक्ति अथवा अमुक प्रकार के व्यक्तियो में है, वरन् उनके अनुसार यह अधिकार सम्पूर्ण जनता में है अथवा राष्ट्र में निहित है। इसके विपरीत बर्क महोदय की मान्यता है कि सम्पूर्ण राष्ट्र में, उसके किसी अश में अथवा कही भी, इस प्रकार का कोई अधिकार नही है। इस विषय में उनका सब से विचित्र कथन यह है—'इगलैंड की जनता इस प्रकार के किसी भी अधिकार को अस्वीकार करती है, और अपने प्राणो तथा सम्पत्ति की बाजी लगाकर वह उसकी व्यावहारिक स्वीकृति का विरोध करेगी।'

अपने अधिकारो की रक्षा के लिए नही, वरन् इस बात को स्वीकार करने के लिए कि उनका कोई अधिकार नही है, लोग शस्त्र उठायेंगे तथा अपने प्राणो और सम्पत्ति की बाजी लगायेंगे—यह कथन नितान्त अभिनव अनुसधान है और बर्क की आत्म-विरोधिनी बुद्धि के अनुरूप है।

इसी प्रकार की विलक्षणता के द्वारा, बर्क ने यह सिद्ध किया है कि इगलैण्ड की जनता को ऐसा कोई अधिकार नही था; और इस समय राष्ट्र में, उसके किसी भाग में अथवा कही भी, इस प्रकार का कोई अधिकार नही है। क्योकि उनका तर्क है कि इस प्रकार के अधिकार जिस पीढी में थे, वह इस समय अस्तित्व में नही है। उस पीढी के साथ-साथ अधिकार भी नष्ट हो गये।

इसे सिद्ध करने के लिए, वे लगभग सौ वर्षों पूर्व, विलियम और मेरी के

प्रति कहे गये, संसद् के एक कथन का उद्धरण इन शब्दो में देते हैं—'हम, राज्य-सभा के लौकिक और आध्यात्मिक सदस्य और 'लोक-सभा' के सदस्य, जनता (इगलैण्ड की तत्कालीन जनता) के नाम पर अत्यधिक नम्रता और विश्वास-पूर्वक अपने को, अपनी सन्तानो को तथा भावी पीढियो को सदा के लिए समर्पित करते हैं।' वर्क ने उसी शासन के अन्तर्गत संसद् के एक दूसरे अधिनियम की एक धारा का उल्लेख इस प्रकार किया है—'(हम) अपने (अर्थात् तत्कालीन इगलैण्ड की जनता) को, अपने उत्तराधिकारियो को तथा अपनी भावी पीढ़ियो को सदा के लिए उनके (विलियम और मेरी), उनके उत्तराधिकारियो तथा उनकी भावी पीढियो के आधीन रखते हैं।'

इन धाराओं का उल्लेख करके वर्क महोदय अपने मत को पर्याप्त रूप से प्रतिपादित समझते हैं, और उसके बल पर यह सिद्ध करते हैं कि राष्ट्र अपने अधिकार के लिए सदा से वंचित हो गया है। केवल इस प्रकार के कथन की पुनरावृत्तियो से संतुष्ट न होकर वे आगे कहते हैं कि यदि इंगलैण्ड की जनता को 'क्राति' के पूर्व इस प्रकार का कोई अधिकार था, तो इंगलैण्ड के राष्ट्र ने 'क्रान्ति' के समय वडी गम्भीरता के साथ अपनी ओर से तथा अपनी भावी पीढियों की ओर से, उसे सदा के लिए त्याग दिया।

इगलैण्ड ही के प्रति नही, वरन् फ्रास की राज्य-क्रांति और उसकी 'राष्ट्रीय सभा' के प्रति भी, वर्क ने अपने भयकर सिद्धातों के कारण विष-वमन किया है और उस महान 'राष्ट्रीय सभा' पर, अन्यायपूर्वक अन्य की सम्पत्ति पर अधिकार करने का आरोप किया है। अत. मैं स्पष्ट रूप से उनके सिद्धांतों के विरुद्ध, शिष्टाचार का निर्वाह किये विना, सिद्धांतो की अन्य पद्धति प्रस्तुत करूंगा।

सन् १६८८ ई० की ब्रिटिश संसद् ने अपने निर्वाचकों की ओर से जो कुछ किया, वैसा करने का उसे अधिकार था। किन्तु निर्वाचन के द्वारा उस ससद् को जो अधिकार मिला था, उससे कही अधिक अधिकार उसने अपनी इच्छा से स्वीकार कर लिया। क्योकि भावी पीढियों को सदा के लिए बन्धन में बांध देने का अधिकार उसे निर्वाचन से नहीं प्राप्त था, वरन् अपनी इच्छा से उसने अपने में इस अधिकार को मान लिया था।

इस प्रकार उस संसद् के दो प्रकार के अधिकार सिद्ध होते हैं। पहले प्रकार का यह अधिकार है जो उसे निर्वाचन द्वारा प्राप्त था; और दूसरे प्रकार

का अधिकार वह है, जिसे उसने अपने में अपनी इच्छा से मान लिया था। प्रथम प्रकार के अधिकार के विषय में मुझे कुछ नही कहना है; किन्तु दूसरे के बारे मे मेरा निम्नाकित उत्तर है :—

किसी भी देश में ऐसी कोई ससद्, मनुष्यो का ऐसा कोई वर्ग अथवा उनकी ऐसी कोई पीढी न थी, न है और न होगी जिसे बाद की पीढियो को सदा के लिए बाँधने और नियन्त्रित रखने का अधिकार प्राप्त हो; अथवा सदा के लिए यह निश्चित करने का अधिकार हो कि विश्व का शासन किस प्रकार हो या कौन करे? इसलिए ऐसी सभी धाराएँ, सभी अधिनियम या घोषणाएँ स्वतः निष्प्रभाव और निरर्थक हैं जिनके द्वारा उनके निर्माण-कर्ता ऐसा कार्य करने का प्रयत्न करते हैं जिसे करने का न उन्हे अधिकार है, न सामर्थ्य; और जिसका निष्पादन करना उनके वश की बात नही है।

प्रत्येक दशा में पूर्वगामी युगो और पीढियो के समान ही अनुगामी युग और पीढियाँ अपने लिए काम करने में पूर्ण स्वतत्र हैं। 'मृत्यु के उपरान्त' भी शासन करने का अधिकार मान लेना सर्वाधिक हास्यास्पद और क्रूर अत्याचार है।

मनुष्य, मनुष्य की सम्पत्ति नही है; और न अनुगामी पीढियाँ पूर्वगामी पीढियो की सम्पत्ति हैं। सन् १६८८ ई० की अथवा अन्य किसी समय की ससद् या जनता को आज की जनता के अधिकारो को बेच देने, उसे बाँधने अथवा जिस किसी भी रूप से उसका नियन्त्रण करने का अधिकार ठीक उसी प्रकार नही था, जिस प्रकार, सौ अथवा सहस्र वर्षों बाद होने वाले व्यक्तियों के अधिकारो को बेचने, उन्हे बाँधने अथवा उनका नियन्त्रण करने का अधिकार आज की जनता अथवा ससद् को नही है।

प्रत्येक पीढी को अपने युग की आवश्यकता के अनुसार काम करने का पूरा अधिकार है और होना चाहिए। किसी भी युग में व्यवस्था जीवितो के लिए की जाती हैं, मृतको के लिए नही। जब मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है, तो उसके साथ ही उसके अधिकार एव उसकी इच्छाओ की भी समाप्ति हो जाती है। उसके बाद, विश्व के कार्यों में उस मृत व्यक्ति का कोई भाग न होगा। अस्तु, उसे यह कहने का अधिकार नही है कि विश्व के शासक कौन होगे; सरकार का निर्माण या शासन किस प्रकार होगा?

मैं सरकार के स्वरूप विशेष के पक्ष में या विपक्ष में कुछ नही कह रहा

हूँ, और न तो यहाँ के अथवा अन्यत्र कहीं के किसी राजनीतिक दल के पक्ष या विपक्ष में कुछ कह रहा हूँ। सम्पूर्ण राष्ट्र जिसे अच्छा समझता है, उस कार्य को सम्पन्न करने का उसे पूर्ण अधिकार है। किन्तु, बर्क महोदय इस बात को नही मानते हैं। मैं पूछता हूँ कि फिर उस अधिकार का अस्तित्व है कहाँ? मैं जीवित व्यक्तियों के अधिकार का समर्थन करता हूँ। मृतको ने, अपनी इच्छा से माने हुए अधिकार के द्वारा, भावी पीढियो के नाम पर जो कुछ समझौता किया अथवा जो अधिनियम बनाये, जीवित व्यक्ति उन्ही के द्वारा नियन्त्रित हो, यह मैं नही चाहता। किन्तु बर्क जीवितो के अधिकार और स्वातंत्र्य पर मृतको के प्रभुत्व का समर्थन करते हैं।

एक समय था जब कि मृत्यु-शय्या पर पडे हुए राजा अपने इच्छानुसार अपना मुकुट बेच दिया करते थे, और अपने द्वारा नियुक्त किसी भी उत्तराधिकारी के हाथो में, जानवरो के समान, अपनी प्रजा को सौंप जाते थे। यह प्रथा, इस समय, इतनी कुत्सित मानी जाती है कि कोई इसे याद रखना भी नही चाहेगा। इसकी विलक्षणता के कारण, सहसा इस पर विश्वास नही होता। किन्तु, संसद की वे धाराएं, जिन पर बर्क महोदय ने अपने राजनीतिक दुर्ग का भव्य निर्माण किया है, इसी प्रकार की हैं।

किसी भी देश के नियमो को कुछ सामान्य सिद्धान्तो के अनुरूप होना चाहिए। इंगलैण्ड में जब किसी व्यक्ति की अवस्था इक्कीस वर्ष से अधिक हो जाती है, तो उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर उसके माता-पिता, स्वामी अथवा जिसने अपने को सर्वशक्तिमान कहा है उस संसद का कोई बन्धन या नियंत्रण नही रह जाता है। फिर, किस आधार पर, सन् १६८८ ई० की या अन्य कोई संसद, सभी भावी पीढियो को अनन्तकाल तक बाँध सकती थी?

जो संसार से उठ गये हैं और जो संसार में अभी आये नहीं हैं, उनके बीच की दूरी की जितनी कल्पना की जाय उतनी थोड़ी है। उनके बीच कोई भी सम्बन्ध सम्भव नही है। इन दोनो अनस्तित्वों में से एक का अस्तित्व समाप्त हो चुका है और दूसरा अस्तित्व में आया ही नही है; ये दोनो कभी भी विश्व में मिल नही सकते। फिर किस नियम या सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक का दूसरे पर सदा के लिए नियन्त्रण रहे?

ऐसा कहा जाता है कि इंगलैण्ड में किसी की स्वीकृति के बिना उसका धन

नही लिया जा सकता है। किन्तु १६८८ ई० की ससद् को किसने ऐसा अधिकार दिया या कौन ऐसा अधिकार दे सकता था, कि वह उन अनुगामी पीढ़ियो का अधिकार छीन ले और कुछ विषयो मे सदा के लिए काम करने का उनका अधिकार सीमित कर दे जो उस समय तक अस्तित्व में नही आयी थी, और जिन्होने न तो अपनी स्वीकृति दी थी और न अस्वीकृति ?

बर्क महोदय ने अपने पाठको के सम्मुख जिस प्रकार की मूर्खता का प्रदर्शन किया है, उससे बढ कर अन्य मूर्खता नही हो सकती। वे अपने पाठको से, और आने वाले विश्व से कहते हैं कि सौ वर्षो पूर्व अस्तित्व मे रहने वाली 'ससद्' ने एक नियम बनाया, जिसे बदलने का अधिकार, वर्तमान युग में राष्ट्र को नही है; वैसा अधिकार न कभी होगा और न कभी सभव है। (राजाओ के) शासन-विषयक दैवी अधिकार को मानव जाति के सहज विश्वास पर जितनी विलक्षणताओ या मूर्खताओं के साथ थोपा गया है, श्री बर्क ने, उनके अतिरिक्त एक अन्य का अनुसधान किया है।

उन धाराओ को जनता के सम्मुख रख कर, बर्क ने अपने लक्ष्य का तो नही, वरन् जनता का हित अवश्य किया है। उन धाराओ से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमें इस बात का बराबर ध्यान रखना आवश्यक है कि राज-शक्ति के द्वारा कही अधिकार के अतिक्रमण का प्रयत्न तो नही हो रहा है। इसलिए हमे चाहिए कि हम राज-शक्ति को अति की ओर जाने से रोके।

यह बडे आश्चर्य की बात है कि अधिकार को अपनी इच्छा से मान लेने के जिस अपराध के लिए जेम्स द्वितीय को देश-बहिष्कृत होना पड़ा, वही अपराध सर्वथा नवीन रूप में, वही ससद् करे जिसने जेम्स द्वितीय को देश से बाहर निकाला। इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्रान्ति (सन् १६८८ ई०) के समय मनुष्य के अधिकारो को पूर्णत. समझा नही गया था, क्योकि यह निश्चित है कि संसद् ने आगामी पीढियो के व्यक्तियो और उनकी स्वतंत्रता के ऊपर अपना जो अधिकार मान लिया वह उसी प्रकार का अत्याचारपूर्ण अधिकार था, जिसे जेम्स द्वितीय ने ससद् और राष्ट्र के ऊपर स्वीकार करना चाहा और जिसके लिए उसे देश-बहिष्कृत किया गया। उस प्रकार का अधिकार उस संसद् को सौंपा नही गया था, वह सौंपा जा भी नही सकता था, क्योकि उसे सौपने वाले व्यक्ति उस समय पैदा नही हुए थे।

जहाँ तक सिद्धान्तो का प्रश्न है, जेम्स द्वितीय और उपर्युक्त संसद् में कोई अन्तर नही है; अन्तर केवल इतना है कि जेम्स द्वितीय ने जीवितों के अधिकार को हड़पना चाहा और संसद् ने उन व्यक्तियो के अधिकारो को हड़पना चाहा जो उस समय तक उत्पन्न नही हुए थे। इन दोनो में से किसी एक का अधिकार दूसरे के अधिकार की अपेक्षा अच्छा नही कहा जा सकता; इसलिए दोनो के अधिकार निष्प्रभाव और निरर्थक सिद्ध होते हैं।

किस आधार पर 'बर्क' महोदय यह सिद्ध करते हैं कि आगामी पीढ़ियों को सदा के लिए बाँध रखने का अधिकार मनुष्य को प्राप्त है? उन्होंने संसद् की उन धाराओं का उल्लेख किया है, किन्तु उन्हे इस बात का प्रमाण देना चाहिए कि इस प्रकार का अधिकार प्राचीन काल में कभी रहा है। यदि इस प्रकार का अधिकार कभी रहा है तो उसे इस समय भी रहना चाहिए; क्योंकि जिसका सम्बन्ध मनुष्य की प्रकृति से रहा है, मनुष्य उसका उन्मूलन नहीं कर सकता।

मरना मनुष्य की प्रकृति है; अस्तु, जब तक वह जन्म धारण करता रहेगा, तब तक वह मरता रहेगा। किन्तु श्री 'बर्क' ने राजनीति के क्षेत्र में एक ऐसे 'आदम' (Adam) की अवतारणा की है जिसमें सभी अनुयायी पीढ़ियाँ बद्ध हैं। इसलिए उन्हे यह सिद्ध करना चाहिए कि उनके इस 'आदम' के पास इस प्रकार का अधिकार था।

धागा जितना निर्बल होता है, उतना ही वह खिंचाव को कम सह पाता है। उसे खींचने की नीति का अनुसरण करना अत्यंत घातक है। हाँ, यदि हम उसे तोड़ना चाहते हैं तो बात दूसरी है।

यह सत्य है कि एक पीढी के बने हुए नियम, प्रायः अनुगामी पीढ़ियों में भी बने रहते हैं; किन्तु वे व्यक्तियो की स्वीकृति के बल पर ही बने रहते हैं। यदि कोई नियम भग नही हुआ, तो वह बना रहता है; और उसके भग न किये जाने का तात्पर्य है उसकी स्वीकृति।

यह बात भी 'बर्क' महोदय द्वारा उल्लिखित उन धाराओं के विपक्ष में जाती है। अमर होने का प्रयत्न करने में वे धाराएँ व्यर्थ हो गयी हैं। उन्होंने आगामी पीढ़ियों की स्वीकृति पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। उन धाराओं को जो अधिकार प्राप्त नही हो सकता, उसे अपने अधिकार का आधार बनाकर उन्होंने

अपना अधिकार खो दिया। मनुष्य का अधिकार अमर नही है, और इसलिए संसद् का अधिकार अमर नही हो सकता।

सन् १६८८ की ससद् ने, जिस प्रकार अपने अधिकार को शाश्वत बनाने के लिए एक नियम बनाया, उसी प्रकार वह सदैव जीवित रहने का अधिकार प्राप्त करने के लिए भी कोई नियम बना सकती थी। उन धाराओ के विषय में, इसलिए इतना कहा जा सकता है कि वे केवल विधि-निर्वाह के लिए प्रयुक्त शब्द हैं, जिनके माध्यम से मानो उस संसद् ने अपने को धन्यवाद देते हुए अलंकारयुक्त पुरातन शैली में कहा, "हे ससद् ! तुम चिरायु रहो !!"

विश्व की परिस्थितियाँ निरतर परिवर्तित हो रही हैं और साथ-ही-साथ मनुष्य के विचार बदल रहे हैं। सरकार मृतको के लिए नही, वरन् जीवितो के लिए है, इसलिए सरकार के नियमो को बनाने का अधिकार जीवितो को है। सम्भव है कि एक युग में जो कार्य उचित और सुविधाजनक प्रतीत होता है, दूसरे युग में लोग उसे अनुचित और असुविधाजनक समझें। इन दशाओ में निर्णय का अधिकार किसे है, जीवितो को या मृतको को ?

'बर्क' महोदय ने उन धाराओ के आधार पर सौ पृष्ठ रगे हैं। ऊपर यह सिद्ध किया जा चुका है कि वे धाराएँ व्यर्थ हैं ; क्योकि उनका निर्माण करने वाली ससद् को अनुगामी पीढियो को सदा के लिए बाँध रखने का कोई अधिकार नही था। इसलिए यह स्पष्ट है कि उन धाराओ पर आधारित बर्क के सभी तर्क व्यर्थ हैं।

मनुष्य के प्राकृतिक और नागरिक अधिकार

अब मुझे 'बर्क' के उस विच्छृंखल रचना पर विचार करना है जिसमें, उन्होने एक प्रकार से सरकार के कार्यों की व्याख्या की है ; किन्तु इस मान्यता के साथ कि वे जो कुछ कह रहे हैं उस पर विश्वास कर लिया जायगा, उन्होंने अपनी बात के समर्थन में कोई प्रमाण अथवा तर्क न प्रस्तुत करके जो कुछ जी में आया उसे कहा है।

किसी निर्णय पर पहुँचने के उद्देश्य से तर्क आरम्भ करने के पूर्व आधार-

स्वरूप किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों या तथ्यो की स्वीकृति या अस्वीकृति की स्थापना आवश्यक है। 'वर्क' ने स्वभावतः फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' द्वारा प्रकाशित 'मनुष्य के अधिकारों की घोषणा', जिसके आधार पर फ्रांस का संविधान बना हैं, की निन्दा की हैं। उन्होंने उसे मनुष्य के अधिकारों का 'क्षुद्र और कालिमा-पूर्ण पत्र' कहा है।

क्या 'वर्क' महोदय यह कहना चाहते हैं कि मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है? फिर तो, उन्हे यह भी मानना पड़ेगा कि अधिकार जैसी वस्तु कहीं नहीं है और स्वयं उन्हें भी कोई अधिकार नहीं है। किन्तु यदि 'वर्क' के कहने का अभिप्राय यह हो कि मनुष्य के अधिकार हैं, तो प्रश्न होगा कि वे कौन-कौन-से अधिकार हैं और मूलतः मनुष्य ने उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया।

मनुष्य के अधिकारो की महत्ता को जानने वाले जो लोग प्राचीन प्रमाणो के आधार पर तर्क करते हैं, वे प्राचीनता में पर्याप्त दूर तक न जाने की भूल कर बैठते हैं। वे प्राचीनता की पूरी दूरी तय नहीं करते, वरन् बीच के सौ या सहस्त्र वर्षों तक पहुँचकर रुक जाते हैं और उस समय जो कुछ किया गया, उसे आज के लिए नियम के रूप में प्रस्तुत करते हैं। किन्तु ऐसा उपयुक्त नहीं है।

यदि हम अपेक्षाकृत अधिक प्राचीनता का अध्ययन करें, तो हमें ज्ञात होगा कि उस समय नितान्त विपरीत मत प्रचलित था। यदि प्राचीनता ही प्रमाण है, तो क्रमशः सहस्त्रो ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो एक-दूसरे का विरोध करते हैं। किन्तु यदि हम प्राचीनता में बढ़ते चलें तो अन्त में ठीक स्थान पर पहुँचेंगे। हम प्राचीनता के उस बिन्दु पर पहुँचेंगे, जहाँ मनुष्य अपने बनाने वाले के यहाँ से सीधा पृथ्वी पर आया। वह उस समय क्या था, मनुष्य। उस समय उसकी एक मात्र संज्ञा थी 'मनुष्य'। उससे बड़ी पदवी उसे दी नहीं जा सकती है। इन पदवियों की चर्चा बाद में होगी।

अब, हम मनुष्य के जन्म और उनके अधिकारों के मूल्य तक पहुँचे हैं। उस दिन से लेकर आज तक विश्व जिन विभिन्न प्रकारों से शासित होता आ रहा है, उनसे हमें केवल इतना प्रयोजन है कि हम उनकी त्रुटियों और सुधारों का सदुपयोग कर सकें। आज से सौ या सहस्रों वर्षों पूर्व रहने वाले मनुष्य अपने युग के लिए उतने ही आधुनिक थे, जितने कि इस समय हम लोग हैं। उनके भी पूर्वज थे, उन पूर्वजों के पूर्वज थे; और भावी पीढ़ियों के लिए हम भी पूर्वज होंगे।

यदि केवल प्राचीनता का नाम जीवन के कार्यो का शासन करे तो जिस प्रकार से हम सौ या सहस्रो वर्षो पूर्व रहने वालो को प्रमाण मानते हैं, उसी प्रकार सो या सहस्रो वर्षों बाद होने वाले लोगो के लिए हम भी प्रमाण होगे।

वास्तविकता यह है कि प्राचीनता के विभिन्न अश सभी को प्रमाणित करते हुए निश्चित रूप से कुछ भी प्रमाणित नही कर पाते हैं। एक प्रमाण दूसरे प्रमाण का विरोध करता है, और अन्त में हम सृष्टि के आदिकाल में पहुँचते हैं जहाँ मनुष्य के अधिकारों का दैवी उद्गम है। यहाँ हमारी शोध समाप्त होती है और तर्क को आधार मिलता है।

यदि सृष्टि के सौ वर्षो बाद, मनुष्य के अधिकारो के विषय में झगडा आरम्भ हुआ होता, तो उस समय लोग मनुष्य के अधिकारो के इसी दैवी उद्गम को प्रमाण मानते। अस्तु, हमें भी इसी को प्रमाण मानना चाहिए।

यद्यपि मैं धर्म के सम्प्रदाय विशेष के सिद्धान्तो की चर्चा करना नही चाहता; किन्तु यह स्पष्ट है कि ईसा मसीह की वश-परम्परा 'आदम' तक पहुँचती है। फिर मनुष्य के अधिकारो का उद्गम मनुष्य की सृष्टि को क्यो नही मानते? मेरे मत से इसका यही उत्तर है कि बीच मे कई सरकारे बलपूर्वक अस्तित्व में आयी और वे धृष्टतापूर्वक मनुष्य के रूप को नष्ट करती रही हैं।

यदि प्रलय काल तक विश्व की शासन-पद्धति का आदेश देने का अधिकार किसी भी पीढी को था, तो वह सृष्टि की प्रथम पीढी को रहा; और यदि उस पीढ़ी ने ऐसा कोई आदेश नही दिया, तो बाद की पीढी इस प्रकार का आदेश देने के लिए कोई प्रमाण प्रस्तुत नही कर सकती, और न नवीन प्रमाण ही स्थापित कर सकती है।

'अधिकार-साम्य' के दैवी सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल जीवित व्यक्तियो से ही नही, वरन् क्रमिक पीढियो से भी है। जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है, प्रत्येक पीढी अपनी पूर्वगामी पीढियो के समान है, जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने समसामयिको के समान अधिकार लेकर उत्पन्न होता है।

सृष्टि की रचना कब और किस प्रकार हुई, इसके बारे में जितने इतिहास या परम्परागत कथाएँ प्रचलित हैं, वे चाहे शिक्षित ससार की उपज हो या अशिक्षित संसार की; वे चाहे किसी मत या विश्वास के विषय में एक दूसरे से भिन्न हों; किन्तु वे सभी मनुष्य के समान अधिकार को एक स्वर मे स्वीकार

करते हैं। मनुष्य के समान अधिकार का अर्थ है कि सभी मनुष्य एक कोटि के हैं। वे सदैव समान पैदा होते हैं और उनके प्राकृतिक अधिकार समान हैं। सृष्टि का कार्य है संतति के रूप में नव-निर्माण, जिसे वह पीढ़ियो के माध्यम से सम्पन्न करती है। अस्तु, विश्व में उत्पन्न होने वाला प्रत्येक शिशु सीधे ईश्वर से अस्तित्व प्राप्त करता है। उसके लिए विश्व उतना ही नवीन है, जितना नवीन वह उस व्यक्ति के लिए था जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ होगा; और उसके प्राकृतिक अधिकार उसी आदिम व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार के समान होगे।

मूसा ने सृष्टि का जो इतिहास बताया है, चाहे उसे दैवी प्रमाण माना जाय या केवल ऐतिहासिक, वह मनुष्य के अधिकारो की एकता या समानता का स्पष्ट शब्दो में समर्थन करता है। यथा: 'ईश्वर ने कहा कि अपनी प्रतिमा के अनुरूप हम मनुष्य का निर्माण करे; अपनी प्रतिमा के अनुरूप उसने मनुष्य को बनाया और उन्हे नर और नारी का रूप दिया।' इस कथन में नर और नारी के भेद की ओर संकेत हैं, किसी अन्य भेद की ओर नही। यदि इसे दैवी प्रमाण न माना जाय तो कम-से-कम ऐतिहासिक मानना ही होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की समानता का सिद्धान्त नवीन नही, वरन् सबसे पुरातन सिद्धांत है।

यह भी द्रष्टव्य है कि विश्व के सभी धर्मों का आधार है मनुष्य की एकता। उनके अनुसार सभी मनुष्य एक कोटि के हैं। मृत्यु के बाद स्वर्ग में, नरक में अथवा जहाँ कही भी मनुष्य का अस्तित्व माना जाय, उनके भेद केवल अच्छाइयो और बुराइयों के आधार पर होगे। व्यक्तियों में नही, वरन् अपराधों के अनुसार वर्ग का निर्धारण करके सरकार भी इसी सिद्धात को मानती है।

उपर्युक्त सत्य सर्वोपरि सत्य है, और उसे मान कर काम करने में हमारा महान हित है। इस सत्य के प्रकाश मे यदि मनुष्य को देखा जाय और प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की शिक्षा दी जाय कि वह अपने को इसी प्रकाश में देखें, तो सृष्टि-कर्ता अथवा संसार के प्रति अपने कर्त्तव्यो को वह पूर्णत: समझ पायेगा। किन्तु, जब वह अपने उद्गम को भूल जाता है अथवा यों कहें कि जब वह अपने जाति और वंश को भूल जाता है, केवल उसी समय वह दुराचारी बनता है।

यूरोप के प्रत्येक देश की वर्तमान सरकार की बुराइयो में से यह कम बुराई

नही है कि मनुष्य, मनुष्य के रूप में अपने निर्माण-कर्ता से बहुत दूर हटा दिया गया है और बीच के उस कृत्रिम अन्तर को कतिपय अवरोधो से भर दिया गया है। मनुष्य को उन अवरोधो मे से होकर ही आगे बढना है।

'बर्क' महोदय ने मनुष्य और उसके स्रष्टा के बीच कई अवरोध प्रस्तुत किये हैं। वे लिखते हैं:—"हम ईश्वर से डरते हैं; राजाओ को आदरपूर्ण भय की दृष्टि से देखते हैं; संसद् के प्रति स्नेह रखते हैं; न्यायाधीश के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ रहते हैं, पुरोहित का आदर करते हैं और कुलीन जनों का सम्मान करते हैं।" 'बर्क' महोदय 'वीरो' (Chivalry) को भूल गये। 'पीटर' (Peter) का नाम भी वे कदाचित् भूल गये।

मनुष्य का कर्त्तव्य इतने अवरोधों से भरा हुआ नही है कि अपने वास्तविक कर्त्तव्य का पालन करने के लिए उसे इतने अवरोधो को एक-एक कर के पार करना पडे। मनुष्य का कर्त्तव्य अत्यधिक सरल है। उसके केवल दो पक्ष हैं—ईश्वर के प्रति और पडोसी के प्रति। ईश्वर के प्रति अपना कर्त्तव्य प्रत्येक व्यक्ति को समझना चाहिए; और पडोसी के प्रति उसी प्रकार का व्यवहार उसे करना चाहिए, जिस प्रकार का व्यवहार वह अपने प्रति चाहता है। यदि सत्ताधारी अपना काम ठीक से करेंगे तो उनका आदर अवश्य होगा; किन्तु यदि वे अपना काम ठीक से नही करेंगे तो लोग उनसे घृणा करेंगे। जिन्हे कोई अधिकार सौंपा नही गया है, वरन् जिन्होने अधिकार लिया है, विवेकशील ससार में उन्हें मान्यता नही मिल सकती।

अब तक मैंने मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारो की आशिक चर्चा की है; अब हम मनुष्य के नागरिक अधिकारों पर विचार कर और यह देखे कि उनका उद्गम-स्रोत कहाँ है। मनुष्य समाज में इसलिए सम्मिलित नही हुआ कि उसकी स्थिति पहले की अपेक्षा और बुरी हो जायं, और न इसलिए कि उसके अधिकार पहले की अपेक्षा कम हो जाय; वरन् इसलिए कि उसके निजी अधिकारो को अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षा प्राप्त हो सके। उसके प्राकृतिक अधिकार ही उसके नागरिक अधिकारो के आधार हैं। किन्तु इस भेद के यथार्थ बोध के लिए इन प्राकृतिक और नागरिक अधिकारो के भिन्न-भिन्न लक्षणो का ज्ञान आवश्यक है।

प्राकृतिक अधिकारो का सम्बन्ध मनुष्य की सत्ता से हैं। इनके अन्तर्गत बौद्धिक अधिकार या मानसिक अधिकार और उन सभी कार्यों को करने का

अधिकार है, जिन्हे हम व्यक्तिगत रूप से अपनी सुविधा और सुख के लिए करते है, किन्तु जो दूसरो के प्राकृतिक अधिकारो के लिए हानिप्रद नही है। नागरिक-अधिकार मनुष्य के वे अधिकार हैं, जिन्हे वह समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।

प्रत्येक नागरिक अधिकार का आधार कोई-न-कोई ऐसा प्राकृतिक अधिकार होता है जो व्यक्ति मे पहले से रहता है, किन्तु उसका उपभोग करने मे व्यक्तिगत शक्ति सभी दशाओ मे पूर्ण समर्थ नही होती। सुरक्षा और प्रतिरक्षा विषयक सभी अधिकार इसी प्रकार के हैं।

इस संक्षिप्त विवेचना के आधार पर हम मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों के दो भेदो को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। प्राकृतिक अधिकारो का एक वर्ग वह हैं, जिसे समाज मे सम्मिलित होने पर भी मनुष्य अपने पास रखता है और छोड़ता नही, दूसरा वर्ग वह है, जिसे वह समाज का सदस्य होने के नाते समाज को सौंप देता है।

जिन प्राकृतिक अधिकारो को वह अपने पास बचा रखता है वे ऐसे अधिकार हैं जो स्वयं पूर्ण हैं और जिन्हें कार्यान्वित करने की उपयुक्त शक्ति भी व्यक्ति में होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बौद्धिक अधिकार या मानसिक अधिकार इसी प्रकार के हैं, और धर्म भी उन अधिकारो में से एक है।

वे प्राकृतिक अधिकार जिन्हे व्यक्ति अपने पास बचा कर नहीं रखता, ऐसे अधिकार हैं जो स्वयं पूर्ण हैं; किन्तु व्यक्ति में उन्हे कार्यान्वित करने की शक्ति अपूर्ण है। अस्तु, उनसे व्यक्ति का काम पूरा नही होता। अपने प्राकृतिक अधिकार के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को अपना निर्णय करने का अधिकार है, और जहाँ तक मस्तिष्क के अधिकार का प्रश्न है, वह अपना निर्णय करने का अधिकार नही छोडता; किन्तु निर्णय करके ही वह क्या करेगा, यदि उस निर्णय को कार्यान्वित करने की शक्ति उसमें नही है? इसलिए वह अपना अधिकार समाज को सौंप देता है, और अपनी शक्ति के अतिरिक्त, उससे कहीं अधिक, समाज की शक्ति का अवलम्बन प्राप्त करता है। समाज व्यक्ति को कुछ दान नहीं देता। समाज में प्रत्येक व्यक्ति ने अपना अधिकार-धन लगाया है। परिणामस्वरूप समाज से जो लाभ होता है, व्यक्ति उसमें से अपना अंश प्राप्त करता है।

ऊपर की चर्चा से तीन बाते स्पष्ट हो जाती हैं, जो इस प्रकार हैं:—

१—प्रत्येक नागरिक अधिकार व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार से उत्पन्न होता है या यो कहें कि किसी प्राकृतिक अधिकार के विनिमय में हमें कोई नागरिक अधिकार प्राप्त होता है।

२—समाज-शक्ति, अपने वास्तविक रूप में, मनुष्य क नैसर्गिक (प्राकृतिक) अधिकारो के उस विशिष्ट वर्ग का संचयन (सकलन या केन्द्रीकरण) है, जो व्यक्तिगत-शक्ति के अर्थ में अपर्याप्त होता है तथा जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष का कार्य सिद्ध नही होता। किन्तु अधिकारो का वही वर्ग जब समाज मे केन्द्रीभूत कर दिया जाता है तो वह प्रत्येक व्यक्ति का प्रयोजन सम्पन्न करने में समर्थ होता है।

३—जिन प्राकृतिक अधिकारो को कार्यान्वित करने की शक्ति व्यक्ति में नही होती, उनकी राशि से उत्पन्न शक्ति का प्रयोग व्यक्ति के उन अधिकारों के ऊपर नही किया जा सकता जिन्हे व्यक्ति ने अपने पास बचा रखा है और जिनका निष्पादन करने की शक्ति उसमे पूर्ण है।

मैंने संक्षेप में प्राकृतिक व्यक्ति से लेकर सामाजिक व्यक्ति तक, मनुष्य के विकास की चर्चा की; और व्यक्ति ने जिन प्राकृतिक अधिकारो को अपने पास बचा रखा है, उनके तथा जिन्हे उसने समाज को देकर नागरिक अधिकार प्राप्त किये हैं उन प्राकृतिक अधिकारो के लक्षणो को स्पष्ट किया अथवा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अब हम इन सिद्धातो के प्रकाश में सरकारो पर विचार करें।

[सरकार के गुण]

यदि हम विश्व के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो हम अत्यन्त सुगमतापूर्वक समाज अथवा सामाजिक समझौते से उत्पन्न हुई सरकारो का अन्य प्रकार की सरकारो से अन्तर जान सकेंगे। किन्तु इसे अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए अच्छा होगा कि हम उन कतिपय उद्गम-स्रोतो का परिचय प्राप्त कर लें, जिनसे सरकारो की उत्पत्ति हुई है और जिन पर वे आधारित हैं।

उन सभी उद्गम-स्रोतो को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं:—

प्रथम वर्ग से उत्पन्न हुई महन्ती सरकार; दूसरे वर्ग ने जन्म दिया विजेताओ की सरकार को और तीसरा बना बुद्धिवादी सरकार का स्रोत।

जब कुछ चालाक मनुष्यों ने सिद्धों के माध्यम से ईश्वर के साथ संपर्क स्थापित करने का बहाना किया, तो विश्व पूर्णतः अन्ध-विश्वास द्वारा शासित रहा। सिद्धों से पूछा जाता था और उनसे जो कुछ कहलाया जाता था, वही क़ानून होता था। जब तक विश्व मे अन्ध-विश्वास का बोलबाला था, तब तक इस प्रकार की सरकारो का अस्तित्व रहा।

इसके अनन्तर विजेताओ का युग आया। विजयी विलियम के समान, वे शक्ति के बल पर शासन करते थे और तलवार ने राजदण्ड की संज्ञा प्राप्त की। इस प्रकार की सरकारें तब तक अस्तित्व में रहती हैं, जब तक इन्हें स्थापित करने वाली शक्ति बनी रहती है। प्रत्येक प्रकार की शक्ति को अपने अनुकूल बनाने के उद्देश्य से उन विजेता शासको ने बल और छल का गठबन्धन किया तथा 'दैवी अधिकार' (Divine Right) की आराध्य प्रतिमा गढ़कर उसके द्वारा लोगो को प्रभावित करने का जाल रचा। आगे चल कर उस प्रतिमा ने पोप का, जो अपने को आध्यात्मिक और लौकिक कहता है, अनुकरण करके, ईसाई धर्म के प्रवर्तक के विरोध में एक नूतन प्रतिमा का स्वरूप धारण किया जिसे 'धर्म और राज्य' (Church and State) कहा गया।

जब मैं मनुष्य के प्राकृतिक गौरव पर विचार करता हूँ, तो छल और शक्ति द्वारा मनुष्य-जाति का शासन करने के प्रयत्न पर मुझे क्रोध आता है, और उन लोगो से भी अप्रसन्न हुए बिना मैं नही रह सकता, जिन्हें मूर्ख और दुष्ट मानकर उनका शासन किया जाता है।

अब हम उन सरकारों का परीक्षण करें जो अन्धविश्वास और विजय के द्वारा स्थापित नही की जाती, वरन् जो समाज से उत्पन्न होती हैं।

स्वतन्त्रता के सिद्धान्तो को स्थापित करने की दिशा में इस कथन को एक महान प्रगति माना जाता है कि सरकार शासक और शासितो के बीच एक समझौता है। किन्तु यह कथन सत्य नहीं हो सकता; क्योंकि इस प्रकार, कार्य का अस्तित्व कारण से पूर्व मान लिया जाता है। इतना तो निश्चित है कि मनुष्य की सृष्टि के बाद सरकार की सृष्टि हुई होगी और एक समय ऐसा रहा जब कि सरकारें नही थी। इसलिए आरम्भ में उपर्युक्त प्रकार का समझौता करने के लिए कोई शासक नही रहे।

वास्तविकता, अतः, यह होनी चाहिए कि सभी मनुष्यों ने अपने व्यक्तिगत एवं पूर्ण अधिकार के साथ परस्पर सरकार स्थापित करने का समझौता किया। केवल इसी पद्धति से सरकारो को अस्तित्व में आने का अधिकार है, और यही एक मात्र सिद्धान्त है जिस पर उनका अस्तित्व बना रहना चाहिए।

सरकार क्या है और इसे क्या होना चाहिए, इस बात को सम्यग्रूपेण समझने के लिए इसके उद्गम पर विचार करना आवश्यक है। इस प्रकार हम सुगमतापूर्वक यह जान सकेंगे कि सरकारे या तो जनता के बीच से उत्पन्न हुई होगी अथवा उसके ऊपर लादी गयी होगी। 'बर्क' महोदय ने इस प्रकार का कोई भेद स्पष्ट नही किया।

'बर्क' किसी वस्तु के मूल तक जाकर उसका परीक्षण नही करते। इसीलिए वे प्रत्येक वस्तु की चर्चा का उलझा देते हैं। किन्तु भविष्य में इंगलैण्ड और फ्रास के सविधानो की तुलनात्मक समीक्षा करने का अपना अभिप्राय उन्होंने प्रकट किया है।

चुनौती देकर 'बर्क' ने इस विषय को विवादास्पद बना दिया है। अतः मैं उनकी चुनौती स्वीकार कर रहा हूँ। बडी चुनौतियो के माध्यम से ही महान सत्य प्रकट हुआ करता है। मैं इस चुनौती को बडी तत्परता के साथ स्वीकार करता हूँ; क्योंकि इस प्रकार मुझे समाज से उत्पन्न होने वाली सरकारो की चर्चा करने का अवसर प्राप्त होता हैं।

किन्तु, सबसे पहले हमें यह निश्चित कर लेना चाहिए कि 'संविधान' का तात्पर्य क्या है। केवल 'सविधान' शब्द का प्रयोग कर लेना पर्याप्त नही है। हमें इस शब्द का प्रामाणिक अर्थ निश्चित कर लेना चाहिए।

'सविधान' केवल नाम की वस्तु नही, वरन् एक तथ्य है। इसका अस्तित्व काल्पनिक नही, वरन् यथार्थ है। सविधान सरकार का पूर्वगामी होता है और सरकार केवल सविधान की सृष्टि है। किसी देश का सविधान उसकी सरकार का कार्य नही, वरन् उस सरकार का निर्माण करने वाली जनता का कार्य है। सविधान यह तय करता है कि सरकार की स्थापना किन सिद्धान्तों पर होगी, उसकी व्यवस्था किस प्रकार की जायगी, उसके अधिकार क्या होगे, निर्वाचन-पद्धति क्या होगी; 'ससद्' का कार्य-काल क्या होगा, सरकार के 'कार्यपालिका-विभाग' (Executive part) के अधिकार क्या होगे। संक्षेप में, हम यह

कह सकते हैं कि संविधान में असैनिक सरकार (Civil govt) और उसके सिद्धान्तो की, जिनके अनुसार उसे कार्य करना है और जिनमे उसे बद्ध रहना है, सम्पूर्ण. व्यवस्था की जाती है।

अस्तु, किसी देश के संविधान और उसकी सरकार में वही सम्बन्ध है जो उस सरकार द्वारा बाद मे बनाये हुए कानून और उसके अनुसार काम करने वाले न्याय-विभाग में है।। न्याय-विभाग न तो कानून बनाता है और न उसे बदल सकता है। वह केवल बने हुए कानूनो के अनुसार काम करता है। इसी प्रकार सरकार संविधान द्वारा शासित होती है।

[कुलीन-तन्त्र]

पदवियाँ केवल उपनाम हैं और प्रत्येक उपनाम एक पदवी है। जहाँ तक उपनामो या पदवियो का सम्बन्ध है, उनमें कोई दोष नही है; किन्तु उनके कारण मनुष्य के चरित्र में एक प्रकार का आडम्बर उत्पन्न हो जाता है जो उसे पतन की ओर ले जाता है। इन पदवियो के कारण मनुष्य महान कामो के लिए अयोग्य हो जाता है, और छोटी-छोटी बातों में स्त्रियों का भद्दा अनुकरण करने लगता है। चरित्र में जब इस प्रकार का आडम्बर उत्पन्न हो जाता है, तो पुरुष लड़कियो एवं बच्चो के समान सुन्दर वस्त्रों की चर्चा करने लगता है। एक प्राचीन लेखक ने लिखा है कि जब मैं शिशु था तब मैंने शिशु के समान सोचा; किन्तु जब मैं बड़ा हो गया तो मैंने बचपन की चीजो को छोड़ दिया।

फ्रास के उन्नत मस्तिष्क ने पदवियो की बुराइयो को दूर कर दिया, यह अच्छा ही हुआ। जिस प्रकार बडे होने पर शैशवावस्था के वस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार फ्रांस की उन्नत मानवता के लिए 'काउन्ट' और 'ड्यूक' की पदवियाँ व्यर्थ हो गयी। इन पदवियो को हटाकर फ्रास ने सबको सम धरातल पर ला दिया ऐसी बात नही है, वरन् उसने सबका उत्थान कर दिया। फ्रास ने वामन (बौने) को मिटा कर उसके स्थान पर मनुष्य को खड़ा कर दिया। 'ड्यूक', 'काउन्ट' तथा 'अर्ल' जैसे अर्थहीन शब्दो में अब कोई आकर्षण नही रहा। जिन्होंने इन पदवियो को धारण कर रखा था, उन्होंने भी अब इन्हें निरर्थक समझ कर त्याग दिया है।

मनुष्य का शुद्ध मस्तिष्क अपने प्राकृतिक आश्रय अर्थात् समाज की ओर

जाने को अत्यन्त उत्सुक है। अतः समाज से दूर करने वाले पदवियो के इन खिलौनो को अवरोध समझ कर वह उन्हे अनादर की दृष्टि से देखने लगा है। पदवियाँ मनुष्य के आनन्द की परिधि को सीमित कर देती हैं। पदवी धारण करने वाला व्यक्ति स्पृहणीय मानव-जीवन से दूर, एक छोटे-से शब्द के कारागार मे बन्द हो जाता है।

अस्तु, यह आश्चर्य की बात नही है कि फ्रास ने पदवियो की प्रथा उठा दी। विश्व के किसी भाग में उन पदवियो का रहना, वास्तव मे आश्चर्यजनक है। क्योकि पदवियाँ हैं क्या? उनका मूल्य क्या है और उनका परिणाम क्या होता है? हम जब एक 'न्यायाध्यक्ष' अथवा 'सेनापति' के बारे में सोचते या कुछ कहते हैं तो हमारे मस्तिष्क मे उनके किसी कार्य या चरित्र की बात उठती है। 'न्यायाध्यक्ष' का विचार आते ही अथवा उसके बारे में सोचते ही उसकी 'गम्भीरता' का भाव भी मस्तिष्क में घूम जाता है; उसी प्रकार जब हम 'सेनापति' की चर्चा करते हैं तो उसकी वीरता की बात मस्तिष्क में जाग उठती है। किन्तु जब हम किसी शब्द को केवल 'पदवी' के रूप मे प्रयुक्त करते है तो उसके द्वारा किसी अर्थ का वोध नही होता है।

इसलिए हम उन 'पदवियो' का सम्मान किस प्रकार करे, जिनसे किसी अर्थ का बोध नही होता? मनुष्य की कल्पना ने कतिपय विचित्र रूपो और चरित्रो की सृष्टि की है जिनमें से किसी का शरीर मानव और अश्व के शरीराशो से बना है, तो किसी वन-देवता का आधा शरीर मनुष्य का है और आधा बकरे का है। परियो की कहानियो में भी हम कल्पना-विलास का दर्शन करते हैं। किन्तु 'पदवियो' की सृष्टि इन सभी सृष्टियो से अपूर्व है।

यदि सम्पूर्ण देश में इन पदवियो के प्रति तिरस्कार की प्रवृत्ति हो, तो उनका मूल्य स्वयं नष्ट हो जाय और कोई व्यक्ति उन्हे स्वीकार न करे। सार्वजनिक मत ही उन्हे मूल्य देता हैं या उनका मूल्य छीन सकता है। पदवियो को हटाने की आवश्यकता ही नही है। जिस क्षण समाज एक स्वर से उनकी हँसी उड़ाने लगता है, उसी क्षण वे स्वयं लुप्त हो जाती हैं। इन काल्पनिक पदवियो को धारण करने वाले व्यक्ति अब यूरोप के प्रत्येक भाग में प्रत्यक्ष रूप से कम होने लग गये हैं, और बौद्धिक संसार की प्रगति के साथ-साथ वह दिन शीघ्र आने वाला है जब कि कोई व्यक्ति 'पदवी' को स्वीकार नही करेगा।

एक समय था जब कि, जिसे हम कुलीन वर्ग (Nobility) कहते हैं, उसके निम्नतम स्तर के लोगों की वह प्रतिष्ठा थी जो आज के युग में उस वर्ग के उच्चतम स्तर के लोगों की नही है। आधुनिक 'ड्यूक' की अपेक्षा साहसिक कार्य की खोज में 'क्रिस्टेण्डम' से हो कर जाने वाले सशस्त्र व्यक्ति को लोग अधिक श्रद्धा से देखा करते थे। संसार ने इस मूर्खता के पतन का दर्शन कर लिया। इसका पतन इसलिए हुआ कि सर्वत्र इसकी खिल्ली उड़ायी जाने लगी। पदवियों का प्रहसन भी इसी प्रकार की दशा को प्राप्त होगा।

फ्रांस के देशभक्तो ने उचित समय पर इस बात को समझ लिया कि समाज में श्रेणी और प्रतिष्ठा के नवीन आधार होने चाहिए। पुराने आधार आज के युग के लिए व्यर्थ हो चले हैं। पदवियो के काल्पनिक आधार के स्थान पर अब उन्हें चरित्र के ठोस आधार पर खड़ा होना चाहिए। इसी ध्येय से फ्रांस ने पदवियो को बलि-वेदी पर लाकर बुद्धि-देवता के निमित्त उन्हें होम कर दिया।

'पदवियो' की मूर्खता का सम्बन्ध यदि किसी अन्य बुराई से न होता, तो गम्भीरता एव विधि-पूर्वक उन्हे नष्ट करने की आवश्यकता न पड़ी होती, जैसा कि फ्रास की 'राष्ट्रीय सभा' ने किया। इसीलिए 'कुलीन जनो' के चरित्र और प्रकृति की और छान-बीन आवश्यक है।

कुलीनो का यह वर्ग विजेताओ द्वारा स्थापित सरकारो से उत्पन्न हुआ। मूलतः यह वर्ग विजेताओ द्वारा स्थापित सैनिक सरकारो का समर्थन करने वाला अथवा उसे बल प्रदान करने वाला सैनिक वर्ग था, और जिस उद्देश्य से इसकी उत्पत्ति हुई थी उसीको लक्ष्य में रख कर इस वर्ग की परम्परा को बनाये रखने के लिए इसके परिवारो में 'ज्येष्ठत्व का नियम' आरम्भ करके वंश की कनिष्ठ शाखाओ को पैतृक सम्पत्ति के अधिकारो से वचित कर दिया गया।

इस उपर्युक्त तथ्य में 'कुलीन जनो' की प्रकृति और उनका चरित्र स्वयं स्पष्ट है। यह कानून प्रकृति के प्रत्येक कानून के विरुद्ध है, और प्रकृति स्वयं इसके विनाश की माग करती है। पारिवारिक न्याय स्थापित करने पर 'शिष्टजनों' का यह वर्ग स्वय समाप्त हो जायगा। ज्येष्ठत्व के उपर्युक्त नियम के द्वारा छः सतानों के परिवार में पाच अपने भाग्य पर अथवा यों कहिए कि उनके जीवन में जो कुछ विपत्तियां पड़ें उन्हें भोगने के लिए छोड़ दी जाती हैं; उन्हें पैतृक सपत्ति का अधिकार नहीं रहता। इस वर्ग के परिवार में केवल एक सन्तान होती है, शेष

नष्ट होने के लिए उत्पन्न होती हैं।

मानव-चरित्र का प्रत्येक अप्राकृतिक तत्व अल्प या अधिक मात्रा में समाज को प्रभावित करता है। 'शिष्ट जनो' की यह प्रथा भी, इसी प्रकार समाज को प्रभावित करती है। ज्येष्ठ सन्तानो को छोड़ कर जिन सभी सन्तानो को यह वर्ग स्वीकार नही करता, वे समान्यतः जनता द्वारा पालित होने के लिए, अनाथों के समान, समाज पर छोड़ दी जाती हैं। किन्तु उनके पालन-पोषण का व्यय अनाथ शिशुओं के पालन-व्यय की अपेक्षा कही अधिक होता है। सरकारो अथवा दरबारो में अनावश्यक पदों का निर्माण करके उन्हें नियुक्त किया जाता है और उनका भार जनता सँभालती है।

माता-पिता को अपनी कनिष्ठ सन्तानो के प्रति किस प्रकार का वात्सल्य हो सकता है? प्रकृति के अनुसार वे उनकी सन्ताने हैं, विवाह के अनुसार वे उनकी सम्पत्ति की अधिकारिणी हैं; किन्तु कुलीन वर्ग के अनुसार वे जारज और अनाथ हैं। एक ओर तो वे अपने माता-पिता के रक्त हैं और दूसरी ओर कुछ भी नही हैं। अस्तु, इसलिए कि सन्तानो को माता-पिता मिलें, माता-पिता को सन्तानें मिले, परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो, समाज को मनुष्य मिले तथा इस विचित्र वर्ग का समूल नाश हो जाय, फ्रास के सविधान ने 'ज्येष्ठत्व के नियम को समाप्त कर दिया।

यहाँ तक हम लोगो ने 'कुलीन वर्ग' पर प्रधानतः एक दृष्टिकोण से विचार किया। अब हम दूसरे दृष्टिकोण से इस पर विचार करें। किन्तु हम पारिवारिक अथवा सार्वजनिक चाहे किसी भी दृष्टिकोण से इस पर विचार करें, प्रत्येक दशा में इसकी बुराई ही प्रकट होगी।

अन्य देशो की अपेक्षा फ्रास के कुलीनवर्ग मे एक लक्षण कम है। यहाँ के विधान-मण्डल में, आनुवशिक सदस्यता प्राप्त कुलीनो की कोई सभा नही है। इंगलैण्ड की राज्य-सभा (House of Lords) को एम० डेलेफाइटल (M. Delafayette) ने 'कुलीनो की सभा' के नाम से पुकारा था; फ्रास में इस प्रकार की कोई सभा नही है। अस्तु, अब हम उन कारणो पर विचार करें जिनके नाते फ्रास के सविधान ने इस प्रकार की किसी सभा को अस्वीकार कर दिया है।

पहला और सर्वप्रथम कारण यह है कि यह कुलीन-वर्ग पारिवारिक अत्याचार और अन्याय पर आधारित है।

दूसरा कारण यह है कि इस वर्ग के व्यक्ति एक राष्ट्र के 'विधान-मण्डल' के सदस्य होने के लिए सर्वथा अयोग्य हैं। अपने छोटे भाई-बहनों और अन्य सभी सम्बन्धियों को कुचलते हुए वे जीवन का आरम्भ करते हैं, और भविष्य में ऐसा ही आचरण करने की शिक्षा प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति परिवार की अन्य सभी सन्तानों के अधिकारों को हड़प लेता है या अहंकारपूर्वक उन्हें कुछ सम्पत्ति दानस्वरूप देता है, वह न्याय अथवा प्रतिष्ठा की कौन-सी भावना लेकर 'विधान-मण्डल' में प्रवेश कर सकता है?

'विधान-मण्डल' की आनुवंशिक सदस्यता की बात न्यायाध्यक्ष अथवा 'जूरी' के पद को आनुवंशिक मान लेने के समान ही असंगत है। जिस प्रकार यह कहना मूर्खता है कि गणितज्ञ आनुवंशिक होते हैं, उसी प्रकार विधान-मण्डल की आनुवंशिक सदस्यता का विचार भी मूर्खतापूर्ण है। जिस तरह राजदरबारों में आनुवंशिक राजकवि हँसी के पात्र होते हैं, उसी प्रकार विधान-मण्डल के आनुवंशिक सदस्य भी हास्यास्पद हैं।

जो किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं, ऐसे मनुष्यों की सभा का विश्वास किसी को नहीं करना चाहिए।

यह वर्ग विजेताओं द्वारा स्थापित सैनिक-सरकारों के बर्बर सिद्धान्तों को बने रहने में सहायता प्रदान कर रहा है तथा मनुष्यों को मनुष्य की सम्पत्ति मान कर अपने वैयक्तिक अधिकार द्वारा उनका शासन करने के नीच विचार को प्रश्रय देता है।

इस वर्ग की प्रवृत्ति मनुष्य जाति को नष्ट करने की है। प्रकृति की सार्वलौकिक व्यवस्था के अनुसार, हम यह जानते हैं और यहूदियों के उदाहरण से यह बात सिद्ध हो चुकी है, कि यदि मनुष्य का वर्ग-विशेष सामान्य समाज से विच्छिन्न होकर निरन्तर आपस में ही विवाह-सम्बन्ध स्थापित करता रहे, तो वह संख्या में अत्यन्त क्षीण हो जायगा।

यह वर्ग स्वयं अपने कथित उद्देश्य को भी क्षति पहुँचाता है और अवसर आने पर मनुष्य की कुलीनता के ठीक विपरीत कार्य करता है। वर्ग 'कुलीन' लोगों की चर्चा करते हैं। मैं पूछता हूँ कि इन 'कुलीनों' की कुलीनता क्या है? विश्व के सर्वोत्तम चरित्र प्रजातन्त्रीय धरातल पर अवतरित हुए हैं। कुलीन तन्त्र प्रजातन्त्र की समानता नहीं कर सका है।

प्राकृतिक कुलीन के समक्ष ये कृत्रिम 'कुलीन' वामन सिद्ध होते हैं।

[धार्मिक स्वतंत्रता]

फ्रांस के सविधान ने धार्मिक विषयो में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करने की 'सहिष्णुता' (Tolerance) और 'असहिष्णुता' (Intolerance) को समाप्त करके अन्त·करण की पूर्ण स्वतन्त्रता स्थापित की है।

धर्म-विषयक वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्रदान करने की सहिष्णुता, असहिष्णुता का विलोम नही; वरन् प्रकारान्तर से उसी का रूप है। दोनो स्वेच्छाचार हैं। एक में अन्त.करण की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाने का अपना अधिकार माना जाता है, तो दूसरी में अन्तःकरण की स्वतन्त्रता की स्वीकृति देने का अपना अधिकार माना जाता है।

किन्तु उपर्युक्त 'सहिष्णुता' की परीक्षा अन्य प्रकार से की जा सकती है। मनुष्य अपनी नही, वरन् अपने निर्माता की उपासना करता है और अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का दावा, वह अपनी सेवा के लिए नही, वरन् ईश्वर की सेवा के लिए करता है। उपासना के क्षेत्र में एक उपासक होता है और दूसरा उपास्य ; एक मर्त्य होता है, दूसरा अमर्त्य।

अस्तु, उपर्युक्त सहिष्णुता का अधिकार-क्षेत्र मनुष्य और मनुष्य के बीच नही, चर्च और चर्च के बीच नही, एक धर्म और दूसरे धर्म के बीच नही, बल्कि ईश्वर और मनुष्य के बीच अर्थात् उपास्य और उपासक के बीच पडता है ; और जिस अधिकार द्वारा वह किसी मनुष्य को उपासना करने की छूट प्रदान करती है, उसी अधिकार के द्वारा वह धृष्टता एव पाखण्डपूर्वक उस सर्वशक्तिमान उपास्य को उपासना स्वीकार करने की आज्ञा भी प्रदान करती है।

यदि ससार में कोई ऐसा विधेयक प्रस्तुत किया जाय जिसके द्वारा 'ईश्वर को एक यहूदी अथवा एक तुर्क की उपासना स्वीकार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय' या 'ईश्वर को वैसा करने से रोका जाय,' तो सभी मनुष्य चौंक उठेंगे और इसे ईश्वर-निन्दा समझेंगे। चारो ओर कोलाहल मच जायगा। किन्तु उस समय धार्मिक विषयो में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करने की 'सहिष्णुता'-विषयक बात सबके सामने नग्न रूप में प्रस्तुत हो जाती। फिर भी, उसका सम्बन्ध केवल मनुष्य से होने के नाते वास्तविकता में कोई अन्तर

नहीं पडता ; क्योकि उपासना में उपासक और उपास्य का सम्बन्ध कभी छूटता नही हे।

फिर, मानव-आत्मा और उसके निर्माता के बीच में आनेवाला कोई कौन होता है ? चाहे वह राजा हो, धर्माध्यक्ष हो अथवा 'ससद्' हो; उपासक और उपास्य के बीच में दखल देने का उसे कोई अधिकार नही है। सबको अपना-अपना कार्य करना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति का विश्वास दूसरे व्यक्ति के विश्वास से भिन्न है, तो वह इस बात का प्रमाण है कि वह दूसरा व्यक्ति उसमें विश्वास नही करता जिसमें पहला व्यक्ति विश्वास करता है। दोनो मे से कौन ठीक है और कौन ग़लत यह तय करना ससार में किसी के वश की बात नही है।

यदि प्रत्येक व्यक्ति से अपने धर्म-मत की परीक्षा करने को कहा जाय, तो कोई भी धर्म बुरा न सिद्ध होगा। किन्तु, यदि उनसे एक दूसरे के धर्म-मतो की परीक्षा करने को कहा जाय तो विश्व में कोई भी धर्म दोष-रहित न मिलेगा। इसलिए जहाँ तक धर्म की विभिन्न सज्ञाओ का प्रश्न है, या तो सारा ससार ठीक है या सारा का सारा ग़लत।

इसके अतिरिक्त कि धर्म की कई सज्ञाएँ हैं और सार्वलौकिक मानव-परिवार से सर्व-उपास्य ईश्वर की ओर इसकी गति है, इसके माध्यम से मनुष्य अपने भाव-अर्घ्य को अपने निर्माता तक पहुँचाता है। यद्यपि व्यक्ति-भेद से इन अर्घ्यों में अन्तर सम्भव है, किन्तु ईश्वर प्रत्येक मानव का कृतज्ञतापूर्ण अर्घ्य स्वीकार करता है।

डरहम (Durham) या विनचेस्टर (Winchester) के पादरी अथवा प्रधान धर्माध्यक्ष का, यदि कोई वस्तु (जैसे गेहूँ, शक्कर आदि) समर्पित की जाय तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे ; किन्तु वे ही व्यक्ति अपने निर्माता को आज्ञा नही देते कि वह मनुष्यो की विभिन्न उपासना की भेंट स्वीकार कर सके।

बर्क महोदय ने अपनी पुस्तक में बार-बार 'धर्म' और 'राज्य' (church and state) की चर्चा की है। उनका अभिप्राय 'धर्म' विशेष अथवा 'राज्य' विशेष से नही है, वरन् किसी भी धर्म और किसी भी राज्य से है। प्रत्येक देश में 'धर्म और राज्य' को निरंतर एक साथ रखने के राजनैतिक सिद्धान्त को

प्रकट करने के लिए सामान्य रूप से उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है, और धर्म तथा राज्य को एक में मिलाकर न रखने के कारण फ्रास की 'राष्ट्रीय सभा' की निन्दा की है। इसलिए इस विषय पर थोड़ा विचार कर लेना चाहिए।

सभी धर्मों की प्रकृति नम्र और दयालु है। विश्व के सभी धर्म नैतिक सिद्धान्तों से युक्त हैं। इसलिए आरम्भ में किसी बुरे, निर्दयी, उत्पीडक अथवा अनैतिक सिद्धान्तो के प्रचार द्वारा वे मनुष्यों को अपना मत स्वीकार नही करा सकते थे। विश्व के इन सभी धर्मों का कभी-न-कभी आरम्भ हुआ होगा, और उस समय से उन धर्मों ने मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करते हुए, सदुपदेश और उदाहरण द्वारा प्रगति की होगी। फिर उन्होने अपनी स्वाभाविक नम्रता छोडकर (व्यक्ति की धार्मिक स्वतन्त्रता के विषय में) रूक्षता और असहिष्णुता को क्यों अपना लिया?

वर्क ने 'धर्म और राज्य' के जिस सम्बन्ध की सराहना की है उसीका यह परिणाम है। धर्म और राज्य के योग से खच्चरो की-सी एक ऐसी सृष्टि उत्पन्न हुई है जिसमें सृजनात्मिका शक्ति नही है, वरन् जो केवल नष्ट होने के लिए है। उस विचित्र सृष्टि का नाम है 'कानून द्वारा स्थापित धर्म'। जन्म के क्षणों से ही वह अपनी जननी के लिए अपरिचित है। इतना ही नही, वरन् आगे चलकर अपनी उसी माता को वह नष्ट भी कर देता है।

स्पेन में 'धार्मिक-परीक्षण' (Inquisition) उस धर्म के कारण आरम्भ नही हुआ जिसे लोगो ने आरम्भ से स्वीकार किया था। परन्तु 'धर्म और राज्य' द्वारा उत्पन्न हुई खच्चरी सृष्टि के कारण। इसी बेमेल सृष्टि के कारण स्मिथफील्ड (Smith field) में लोग जलाये गये, और बाद में इगलैण्ड में इसी विचित्र जन्तु की पुनरोत्पत्ति के कारण वहाँ के निवासियो के बीच विद्वेष और अधर्म का बोलबाला हुआ तथा 'शान्ति-प्रचारक-सस्था' के सदस्यों (Quakers) एव भिन्न मतावलम्बियो को इंगलैण्ड छोडकर अमेरिका में आश्रय लेना पडा।

उत्पीडन, किसी धर्म का मूल लक्षण नहीं है; किन्तु वह शासन द्वारा स्थापित सभी धर्मों का मूल लक्षण अवश्य है। धर्म के ऊपर से शासन का प्रभाव हटा दीजिए, आप देखेंगे कि उसी क्षण प्रत्येक धर्म अपनी स्वाभाविक

नम्रता और दयालुता को पुनः प्राप्त कर लेगा। अमेरिका मे प्रत्येक कैथोलिक पुरोहित एक सुनागरिक, शिष्ट व्यक्ति तथा सभ्य पड़ोसी होता है। 'एपिस्कोपल' पुरोहित भी इसी प्रकार एक सुनागरिक, सभ्य व्यक्ति और भला पड़ोसी होता है। इसका कारण है कि अमेरिका में शासन द्वारा धर्म की स्थापना नही है और सभी व्यक्ति धर्म के विषय में पूर्ण स्वतन्त्र हैं।

यदि लौकिक दृष्टि से इस पर विचार करे तो हमें यह ज्ञात होगा कि राष्ट्रो के विकास पर इसका बुरा प्रभाव पडता है। धर्म और राज्य के गठबन्धन ने स्पेन को निर्धन बना दिया। नैन्टे (Nantes) की राज-घोषणा को भग कर देने के कारण रेशमी वस्त्रो के कारीगर फ्रास छोड़कर इंगलैण्ड चले गये। इस समय धर्म और राज्य के कारण सूती वस्त्रो के कारीगर इगलैण्ड से अमेरिका और फ्रास भाग रहे हैं।

हम 'वर्क' को 'धर्म और राज्य' के राजनीति-विरोधी सिद्धान्तो का प्रचार करने दे, इससे कुछ लाभ ही होगा। फ्रास की 'राष्ट्रीय-सभा' उनके कथनानुसार काम नही करेगी, वरन् उनकी मूर्खता से लाभ उठायेगी। इगलैण्ड में इसके कुपरिणामो को देखने के कारण ही अमेरिका इसके प्रति सजग रहा और फ्रास में उन कुपरिणामो का अनुभव करने के नाते, उसकी 'राष्ट्रीय सभा' ने इस 'धर्म और राज्य' के गठबन्धन को नष्ट करके, अमेरिका की तरह, अन्तःकरण का सार्वलौकिक अधिकार एवं नागरिकता के सार्वभौम अधिकार की स्थापना की है।

इस प्रकार 'धर्म और राज्य' के इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ करते हुए फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' ने, अन्य सरकारो के समान प्रतिक्रियात्मक घोषणा न करके सर्वप्रथम, मनुष्य के अधिकारों की घोषणा की जिसके आधार पर फ्रांस का सविधान बना।

फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा'

द्वारा

मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा

यह विचार करके कि मानव अधिकारो के प्रति घृणा, उपेक्षा अथवा अज्ञानता, सार्वजनिक आपत्तियो और सरकार के भ्रष्टाचारो का एक मात्र कारण हैं, फ्रांस की जनता के प्रतिनिधियो ने, 'राष्ट्रीय सभा' के रूप में महत्व-पूर्ण घोषणा-पत्र के द्वारा, मनुष्य के इन प्राकृतिक, अविघेय तथा अभिन्न अधिकारो को प्रकट करने का निश्चय किया। उन प्रतिनिधियों ने यह सोचा कि यह घोषणा प्रत्येक सामाजिक सस्था के सदस्यो के मस्तिष्क मे निरतर बनी रहेगी जिसके कारण वे अपने अधिकारो और कर्त्तव्यो के प्रति सदैव जागरूक रहेगे। सरकार की 'विधायिनी शक्ति' (Legislative power) और कार्यपालिका-शक्ति (executive power) के कार्यों का अपेक्षाकृत अधिक आदर होगा, क्योकि उनके कार्य इस घोषणा द्वारा निर्दिष्ट राजनीतिक सस्थाओ के उद्देश्य के अनुसार ही होंगे। इन सरल और निर्विवाद सिद्धान्तो द्वारा परिचालित होने के कारण नागरिको के भावी दावे सदैव सविधान और सार्वजनिक सुख का निर्वाह कर सकेंगे।

इन कारणो से 'राष्ट्रीय सभा' ने ईश्वर को साक्षी रख कर तथा उसके आशी-र्वाद की आशा करते हुए, मनुष्यो और नागरिको के निम्नाकित पवित्र अधि-कारो को स्वीकार किया और तद्विषयक घोषणा की।

१. जहाँ तक अधिकारो का प्रश्न है, सभी मनुष्य स्वतन्त्र और समान पैदा होते हैं तथा भविष्य में भी समान पैदा होते रहेगे। इसलिए केवल सार्व-जनिक उपयोगिता के आधार पर लौकिक भेद सम्भव है।

२. मनुष्य के प्राकृतिक और अविघेय अधिकारो को अक्षुण्ण रखना सभी राजनैतिक सस्थाओ का उद्देश्य है, और ये अधिकार हैं—स्वतंत्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा और अत्याचार का विरोध करना।

३. राष्ट्र तत्वतः समस्त प्रभुसत्ताओं का मूल है। किसी व्यक्ति अथवा किसी संस्था को ऐसे किसी प्रभुत्व का अधिकार न होगा, जो उसे स्पष्टरूपेण राष्ट्र से प्राप्त नहीं हुआ है।

४. राजनैतिक स्वतन्त्रता का अर्थ है उन कामों को करने का अधिकार, जो दूसरों को क्षति नहीं पहुँचाते। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारों का प्रयोग उन समस्त परिसीमाओं तक कर सकता है, जो अन्य प्रत्येक व्यक्ति के तत्सदृश अधिकारों के स्वतन्त्र प्रयोग की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं; और इन सीमाओं का निर्धारण केवल कानून द्वारा होना चाहिए।

५. कानून केवल उन कार्यों का निषेध करे, जो समाज के लिए अहितकार हों। जो क़ानून द्वारा निषिद्ध न हो, उसे बाधित नहीं करना चाहिए और न तो किसी व्यक्ति को वह काम करने के लिए विवश किया जाय, जिसे क़ानून नहीं चाहता है।

६. क़ानून समाज की इच्छा की अभिव्यक्ति है। कानून बनाने में प्रत्येक नागरिक को व्यक्तिगत रूप से अथवा प्रतिनिधि के माध्यम से योग देने का अधिकार है। क़ानून सब के लिए एक होना चाहिए, चाहे वह रक्षा करे या दण्ड दे। कानून की दृष्टि में सभी लोग समान हैं। अतः गुण तथा योग्यता-जन्य भेदों के अतिरिक्त अन्य किसी भेद के बिना, अपनी विभिन्न क्षमताओं के अनुसार सभी व्यक्ति सभी प्रतिष्ठाओं,पदों और कार्यों के लिए समान रूप से चुनेजाने योग्य हैं।

७. कानून द्वारा पूर्व-निर्धारित स्थितियों और निश्चित की गयी रीतियों के अतिरिक्त कोई व्यक्ति न अपराधी माना जाय, न गिरफ्तार किया जाय और न नजरबन्द किया जाय। उन सभी लोगों को दण्ड मिलना चाहिए जो स्वच्छन्द आज्ञाओं को प्रोत्साहन देते हैं, उन्हें पूरा करने का प्रयत्न करते हैं, उनका निष्पादन करते हैं अथवा निष्पादन करने की प्रेरणा देते हैं। यदि किसी नागरिक को कानून द्वारा न्यायालय में बुलाया जाता है अथवा उसे पकड़ा जाता है, तो क़ानून के आदेश का पालन करना उसका कर्तव्य होना चाहिए और यदि कोई नागरिक ऐसे अवसर पर क़ानून का विरोध करता है तो वह अपने को इस कार्य द्वारा दोषी ठहराता है।

८. सर्वथा नितान्त आवश्यक दण्डों के अतिरिक्त कानून को किसी अन्य दण्ड का विधान न करना चाहिए। अपराध के पूर्व घोषित तथा नियमानुसार

कार्यान्वित किये गये कानून के द्वारा ही किसी मनुष्य को दण्ड मिलना चाहिए।

९. यदि किसी व्यक्ति की नज़रबन्दी अनिवार्य हो तो अपराध प्रमाणित होने तक निर्दोष माने जाने के कारण, कानून, उसके प्रति ऐसी कोई कठोरता न प्रदर्शित करे, जो उसे नजरबन्द रखने के लिए आवश्यक न हो।

१०. यदि किसी व्यक्ति के मतो के कारण कानून द्वारा स्थापित जन-व्यवस्था को कोई बाधा उपस्थित नही होती तो उसके उन मतो के कारण चाहे वे धार्मिक ही क्यो न हो, उसे सताना नही चाहिए।

११. विचारो और मतो की अनियन्त्रित अभिव्यक्ति मनुष्य के सर्वाधिक बहुमूल्य अधिकारो में से एक है। इसलिए कानून द्वारा पूर्व-निर्धारित स्थितियो में अपनी स्वतन्त्रता के दुरुपयोग का उत्तरदायित्व वहन करने पर, प्रत्येक नागरिक, स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ भी बोल सकता है, लिख सकता है तथा प्रकाशित कर सकता है।

१२ मनुष्यो और नागरिको के अधिकारो की सुरक्षा के लिए एक सार्वजनिक शक्ति की आवश्यकता है। समाज के हित के लिए, उस शक्ति को (एक सस्था के रूप में) स्थापित किया जाता है, न कि उन व्यक्तियो के लाभ के लिए जिन्हे वह शक्ति सौंपी जाती है।

१३. राज-शक्ति का भारवहन करने एवं सरकार के अन्य व्ययो की पूर्ति के लिए 'सार्वजनिक अर्थ-दान' आवश्यक है। अत समाज के सदस्यो में, उनके सामर्थ्य के अनुसार, उसका समान वितरण होना चाहिए।

१४. प्रत्येक नागरिक को स्वतः या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से, सार्वजनिक अर्थ-दानो की आवश्यकता, उनके विनियोग, उनकी राशि, निर्धारण-पद्धति तथा अवधि आदि का निर्णय करने में स्वतन्त्र मत व्यक्त करने का अधिकार है।

१५. प्रत्येक जन-समुदाय को अपने सभी प्रतिनिधियो से उनके कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है।

१६. जिस समाज में अधिकार-पार्थक्य और अधिकार-सुरक्षा की व्यवस्था नही है, वहाँ सविधान का अभाव है।

१७. सम्पत्तिगत अधिकार मनुष्य के अबाध्य एव पवित्र अधिकार हैं, इसलिए क़ानून द्वारा निश्चित एव स्पष्ट सार्वजनिक आवश्यकता की स्थितियों के अतिरिक्त तथा पहले की उचित क्षति-पूर्ति की शर्त के बिना, किसी भी व्यक्ति को इन अधिकारो से वचित नही किया जाना चाहिए।

अधिकारों की घोषणा की समीक्षा

सामान्य रूप से, प्रथम तीन अनुच्छेदों में, अधिकारो की सम्पूर्ण घोषणा समाविष्ट है। बाद के सभी अनुच्छेद या तो उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं अथवा उनकी व्याख्याएँ हैं। पहले, दूसरे और तीसरे अनुच्छेदों में जो सामान्य रूप से कहा गया है चौथे, पाँचवें और छठें अनुच्छेदो में उन्ही की विशेष व्याख्याएँ हैं।

सातवाँ, आठवाँ, नवाँ, दसवाँ और ग्यारहवाँ अनुच्छेद उन सिद्धान्तो की घोषणा करते हैं, जिनके आधार पर पूर्व-घोषित अधिकारो के अनुरूप, कानून बनाये जायेंगे। किन्तु फ्रांस तथा अन्य देशों के कुछ अच्छे व्यक्तियों द्वारा यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या दसवें अनुच्छेद से उस अधिकार की पर्याप्त सुरक्षा सम्भव है जिसके लिए उसका निर्माण हुआ है? धर्म को मनुष्य द्वारा निर्धारित कानूनो के आधीन रखकर यह अनुच्छेद उसकी अपूर्व दिव्यता उससे छीन लेता है और मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली उसकी शक्ति को क्षीण बना देता है। ऐसी स्थिति में धर्म बादलो के अवरोध में से प्राप्त होने वाले उस प्रकाश के समान मनुष्य के सम्मुख प्रस्तुत होता है, जिसका उद्‌गम स्रोत मनुष्य की दृष्टि से ओझल रहता है तथा जिसकी धूमिल रश्मियों में मनुष्य को कुछ भी ऐसा दिखलाई नही पड़ता जिसका वह सम्मान कर सके। १

१—धार्मिक अथवा कानून के दृष्टिकोण से यदि निम्नांकित विचार सम्यगरूपेण समझ लिया जाता है तो किसी व्यक्ति, व्यक्तियों की किसी संस्था या किसी सरकार के द्वारा धर्म के विषय में गलती नहीं हो सकेगी। मनुष्य द्वारा स्थापित सरकारों के अस्तित्व के पूर्व, विश्व के आदि काल से, मनुष्य और ईश्वर के बीच एक समझौता रहा है। अपने निर्माता के प्रति मनुष्य के वैयक्तिक सम्बन्ध तथा स्थिति में मानवीय कानूनों अथवा मानवीय शक्ति के द्वारा कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। धार्मिक भाव ईश्वर और मनुष्य के बीच हुए उपर्युक्त समझौते का एक अंश है, इसलिए वह मानवीय कानूनों के आधीन नहीं रखा जा सकता। सभी कानून इस समझौते के अनुरूप होने चाहिए, न कि कानूनों के अनुरूप उस समझौते में परिवर्तन किया जाय; क्योंकि कानून, मानवीय होने के अतिरिक्त, उस समझौते के उपरान्त ही अस्तित्व में आते हैं। सृष्टि के प्रथम पुरुष ने जब अपने चारों ओर देखा होगा और जब उसने यह अनुभव किया होगा कि उसने स्वयं को नहीं बनाया तथा उसके सुख के लिए ही चारों ओर सृष्टि-विस्तार है, तो उसका प्रथम कार्य भक्ति-निवेदन ही रहा होगा। अस्तु, प्रत्येक व्यक्ति को जो धार्मिक भाव ठीक लगता है उसका वह भाग पवित्र बना रहना चाहिए। यदि सरकार उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करती है, तो वह उसकी दुष्टता मान होगी।

बारहवे से लेकर अन्त तक के सभी अनुच्छेदो मे, सारतः, उन्ही सिद्धान्तो का उल्लेख है जो प्रथम ग्यारह अनुच्छेदो में व्यक्त हैं। किन्तु उस समय फ्रास अनुचित को मिटाकर उचित को स्थापित करने की ऐसी विशेष परिस्थिति में था कि अन्य वस्तुस्थिति में जितना आवश्यक था उससे कही अधिक सावधान रहना उसके लिए उचित ही था।

जब अधिकारो के घोषणा-पत्र को 'राष्ट्रीय सभा' के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, तो उसके कुछ सदस्यो में से किसीने कहा कि यदि अधिकारो की घोषणा प्रकाशित की गयी तो साथ ही कर्त्तव्यो की घोषणा भी होनी चाहिए। इसमें सन्देह नही कि जिस मस्तिष्क में यह सूझ उत्पन्न हुई वह एक विचारशील मस्तिष्क रहा होगा; किन्तु इसमे भी सन्देह नही है कि उसने दूर तक न सोचने की भूल की। वास्तव में अधिकारो की घोषणा मे कर्त्तव्यो की घोषणा का अर्थ निहित है। व्यक्ति के रूप में मेरा जो अधिकार है, वही अन्य का भी और इसीलिए उस अधिकार को अपने लिए और अन्यो के लिए स्वीकार करना हम में से प्रत्येक का कर्त्तव्य हो जाता है।

प्रथम तीन अनुच्छेद वैयक्तिक अथवा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आधार हैं। जिस देश की सरकार उन अनुच्छेदो में व्यक्त सिद्धातो के आधार पर नही स्थापित होती और उन्हे पवित्र बनाये नही रखती, वह देश स्वतन्त्र नही कहा जा सकता। विश्व के लिए 'अधिकारो की घोषणा' का विवरण आज तक बने हुए सभी नियमो और कानूनो की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है, और उसके द्वारा विश्व का अपेक्षाकृत अधिक हित होगा।

अधिकारो की घोषणा के समय, हम एक ऐसे राष्ट्र का दिव्य एव महान स्वरूप देखते हैं, जो अपने निर्माता (ईश्वर) के सरक्षण में एक सरकार की स्थापना का कार्य आरम्भ कर रहा है। यह दृश्य इतना नवीन है और यूरोप के किसी भी कार्य के समक्ष यह कार्य इतना महान है कि इसके लिए 'क्राति' शब्द का प्रयोग हलका लगता है, वास्तव में यह मानवता का पुनर्जन्म है।

अन्याय और अत्याचार के दृश्यो के अतिरिक्त यूरोप की वर्तमान सरकारे और क्या हैं? इगलैण्ड की सरकार ही क्या है? क्या वहाँ के निवासी यह नही कहते कि यह देश एक बाज़ार है, जहाँ प्रत्येक मनुष्य का अपना मूल्य है और ठगी हुई जनता के व्यय पर, भ्रष्टाचार जहाँ का सामान्य व्यवसाय है? अस्तु,

यदि वहाँ फ्रांस की क्रांति की निन्दा की जाती है तो कोई आश्चर्य नही है।

यदि फ्रास की क्रांति केवल दुष्ट निरकुश शासन के विनाश तक ही सीमित होती तो बर्क और उन्ही के समान अन्य सज्जन कदाचित् मौन रह गये होते। उनका कहना है कि यह क्रांति बहुत दूर चली गयी, अर्थात् उनके लिए बहुत दूर तक चली गयी; क्योकि यह क्रांति भ्रष्टाचार का महान शत्रु है और वे सभी लोग, जिन्हें धन द्वारा क्रय किया जा सकता है, भयभीत हो उठे हैं। उनके क्रोध में उनका डर व्यक्त हो उठा है और वे अपनी विक्षत दुष्टता की वेदना प्रकट कर रहे हैं।

किन्तु इस प्रकार के विरोधो से क्षतिग्रस्त होने के स्थान पर फ्रास की क्रांति को अभिनन्दन प्राप्त होता है। इस पर जितना प्रहार होगा, उतना ही इसका निखार होगा। किन्तु डर है कि इस पर कही अति प्रहार न हो। इसे प्रहारों से डरने की आवश्यकता नही है। सत्य ने इसे स्थायित्व प्रदान किया है। समय स्वयं इसका प्रमाण देगा।

इस प्रकार, आरम्भ से लेकर बेसिल (Bastille) पर कब्जा करने की घटना तक मुख्य-मुख्य स्थितियों के माध्यम से फ्रास की क्रांति-विषयक प्रगति और अधिकारो की घोषणा द्वारा इसकी स्थापना की चर्चा करने के बाद, मैं एम० डेलेफाइटल (M. Delafayette) के निम्नांकित सशक्त उद्गार का उल्लेख करते हुए इस विषय को समाप्त करूँगा। "स्वतन्त्रता का यह महान स्मारक अत्याचारियो को शिक्षा दे और पीड़ितों के लिए आदर्श बने।"

आनुवंशिक सरकार

आनुवंशिक अधिकार और आनुवंशिक उत्तराधिकार का जो समर्थन बर्क ने किया है तथा उन्होने जो यह कहा है कि राष्ट्र को अपनी सरकार बनाने का कोई अधिकार नही है, उसे उनका प्रलाप नही तो और क्या कहा जाय। किन्तु इसके अतिरिक्त, संयोगवशात् उन्होंने सरकार की परिभाषा भी प्रस्तुत की है जो ध्यान देने योग्य है। उनका कहना है, 'सरकार मानव-बुद्धि की आविष्कृत योजना है।'

सरकार मानव-बुद्धि की आविष्कृत योजना है, इसे मान लेने पर यह भी मानना होगा कि आनुवंशिक उत्तराधिकार और आनुवंशिक अधिकार का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि बुद्धि को आनुवंशिक बनाना असम्भव है।

दूसर ओर, वह बुद्धिमत्तापूर्ण योजना न होगी, जो क्रियान्वित किये जाने पर किसी देश की सरकार को एक मूर्ख के जिम्मे सौप दे। बर्क ने अपने लिए जो आधार चुना है, वह उनके पक्ष के प्रत्येक अश के लिए घातक निकला।

आनुवशिक अधिकार से हटकर, अब बात आ गयी आनुवशिक बुद्धि पर। प्रश्न है कि सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति कौन है ? अब बर्क या तो यह सिद्ध करें कि आनुवशिक उत्तराधिकार की परम्परा मे प्रत्येक राजा सालोमन (Salomon) था अथवा सालोमन को बुद्धिमान राजा की सज्ञा देना उचित नही है। बर्क महोदय ने ऐसा विचित्र प्रहार किया कि राजाओ की सूची में कदाचित् ही कोई नाम रह गया हो। किन्तु ज्ञात होता है कि बर्क इस प्रकार के प्रत्युत्तर के प्रति सजग थे; क्योकि इससे बचने के लिए उन्होने सरकार को मानव-बुद्धि की आविष्कृत योजना ही नही, वरन् उसे बुद्धि का एकाधिकार भी कहा है। उनके मतानुसार एक ओर मूर्खों का राष्ट्र है और दूसरी ओर बुद्धि की सरकार। तदुपरांत उनका कहना है कि मनुष्यो का यह अधिकार है कि इस बुद्धि के द्वारा उनके अभावो की व्यवस्था हो।

इतना स्पष्ट कर लेने के बाद, बर्क यह समझाते हैं कि मनुष्यो के अभाव क्या हैं और उनके अधिकार क्या हैं ?

अपने इस प्रयत्न मे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली। सर्वप्रथम उन्होंने हलकी सान्त्वना के रूप में मनुष्यो के अभावो को बुद्धि का अभाव बताया और फिर यह समझाया कि उन्हें बुद्धि का नही, वरन् उसके द्वारा शासित होने का अधिकार है। उन मनुष्यो के मस्तिष्को में बुद्धि के इस एकाधिकार-शासन के प्रति आदर का पवित्र भाव उत्पन्न करने के लिए तथा उन्हें यह बतलाने के लिए कि इस शासन में सम्भव-असम्भव, गलत-सही, सभी प्रकार के कार्यों को निष्पादित करने का महान सामर्थ्य है, बर्क महोदय निम्नाकित रूप से उसकी शक्तियो का वर्णन करते हैं।

'सरकार में मनुष्य के अधिकार उनकी सुविधाएँ हैं, और वे प्राय: अच्छाइयो संतुलन के रूप में मिलती हैं, कभी-कभी वे अच्छाई और बुराई के समझौते के रूप में प्राप्त होती हैं और कभी-कभी वे बुराइयो के बीच स्थापित समझौते के रूप में होती हैं। राजनैतिक बुद्धि एक गणनात्मक सिद्धान्त है जो वास्तविक नैतिक प्रदर्शनो को, अध्यात्मविद्या या गणित के अनुसार नही,

वरन् नीति के अनुसार, जोड़ता-घटाता है तथा गुणित एवं विभाजित करता है।'

बर्क के आश्चर्य-चकित पाठक उनके उपर्युक्त विद्वत्तापूर्ण अर्थ-हीन कथन को समझने में असमर्थ होंगे। अस्तु, मैं उनके कथन की व्याख्या का काम स्वीकार करूँगा।

बर्क के उपर्युक्त कथन का साराश यह है कि सरकार किसी भी सिद्धांत द्वारा शासित नहीं होती। अपने इच्छानुसार वह बुराई को अच्छाई और अच्छाई को बुराई बना सकती है। संक्षेप में, यह कह लीजिए कि सरकार एक स्वच्छन्द शक्ति है।

किन्तु कुछ बातो को बर्क महोदय भूल गये। पहली बात यह है कि उन्होंने यह नही बताया कि बुद्धि का उद्भव कहाँ से हुआ है और दूसरी बात यह है कि किस अधिकार के बल पर उस बुद्धि ने अपना कार्य आरम्भ किया। बर्क ने जिस प्रकार से विषय का प्रतिपादन किया है, उससे तो यही स्पष्ट होता है कि या तो सरकार बुद्धि को छीन लेती है अथवा बुद्धि सरकार को छीन लेती है। इस सरकार का कोई मूल्य नही है और इसकी शक्ति अधिकार-हीन है। संक्षेप में बर्क के अनुसार यह सिद्ध हुआ कि सरकार दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण मात्र है।

किन्तु इस विषय का स्पष्टतर बोध कराने के लिए यह आवश्यक है कि इसे उन कतिपय शीर्षकों में विभक्त किया जाय, जिनके अन्तर्गत एक राष्ट्र की आनुवंशिक गद्दी या अधिक उपयुक्त रूप से यो कहिए कि सरकार-विषयक आनुवंशिक उत्तराधिकार पर विचार करना चाहिए। वे विभाग इस प्रकार हैं—

१—वंश विशेष का स्वयं अपनी स्थापना करने का अधिकार।

२—राष्ट्र का वंश विशेष की स्थापना करने का अधिकार।

जहाँ तक पहले शीर्षक का प्रश्न है—अर्थात् राष्ट्र की स्वीकृति के बिना एक वंश का स्वयं अपने आनुवंशिक अधिकार की स्थापना करने का जहाँ तक प्रश्न है, सभी मनुष्य एक स्वर से इसे स्वेच्छाचार कहेंगे; और इसका औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न उन सभी मनुष्यों की बुद्धि का अतिक्रमण होगा।

किन्तु दूसरा शीर्षक, अर्थात् एक राष्ट्र का वंश विशेष को आनुवंशिक अधिकारों सहित स्थापित करने का अधिकार, प्रथम विचार में, स्वेच्छाचार नहीं

प्रतीत होता। फिर भी यदि लोग गम्भीरतापूर्वक इस पर पुनर्विचार करें, और कुछ दूर तक विचार करें, अर्थात् अपने नही, वरन् अपनी सन्ततियो के दृष्टिकोण से विचार करें, तो उन्हें यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि आनुवंशिक अधिकार, अन्तत: उसी प्रकार का स्वेच्छाचार हैं, जिसे उन्होंने अपने लिए अस्वीकार किया। राष्ट्र द्वारा वश विशेष को आनुवशिक उत्तराधिकार सहित स्थापित करने का अर्थ हुआ भावी पीढियो की स्वीकृति का निरोध; और स्वीकृति का निरोध स्वेच्छाचार है।

जब एक व्यक्ति, जो किसी समय सरकार का अधिपति होगा अथवा उसका उत्तराधिकारी, एक राष्ट्र से कहेगा कि आपकी उपेक्षा करके मैंने यह अधिकार प्राप्त किया है, तब लोग यह न समझ पायेंगे कि वह किस अधिकार पर ऐसा कहता है। एक व्यक्ति का यह अनुभव कि वह अपने पूर्वजो द्वारा बेच दिया गया है, दासता के बन्धन में बद्ध उस व्यक्ति के लिए सतोषप्रद नहीं, वरन् उत्तेजक होगा। जो किसी कार्य के दोष की वृद्धि करता है, उसीके द्वारा उस कार्य की वैधता नही सिद्ध की जा सकती। अत: आनुवशिक उत्तराधिकार की वैध स्थापना नही हो सकती।

इस विषय का अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट निर्णय करने के लिए हमे भावी पीढियो के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से, उस पीढी पर उचित विचार करना होगा, जो एक वंश को आनुवशिक अधिकारो सहित स्थापित करने का कार्य करती हैं, और अनुगामी पीढियो के प्रति उस प्रथम पीढी का जो व्यवहार है उसपर भी विचार करना आवश्यक है।

वह पीढी, सर्वप्रथम, एक व्यक्ति को चुनती है और उसे राजा की पदवी या अन्य कोई नाम देकर, सरकार के शीर्ष-स्थान पर रखती है; वह व्यक्ति चाहे बुद्धिमान हो अथवा मूर्ख। वह पीढी अपने इच्छानुसार तथा अपनी स्वतन्त्रता के साथ अपने लिए ऐसा करती है। किन्तु वह व्यक्ति जो राजा के पद पर नियुक्त किया जाता है, आनुवशिक नही होता, वरन् वह चुना जाता है और तत्पश्चात् उस पद पर रखा जाता है। जो पीढी उसे उस पद पर रखती है, वह किसी आनुवशिक सरकार के द्वारा नही, वरन् अपने इच्छानुसार स्थापित सरकार के द्वारा शासित होती है। यदि उस पद पर नियुक्त किया गया वह व्यक्ति, और उसे नियुक्त करने वाली पीढी का जीवन शाश्वत होता, तो आनुवशिक उत्तराधिकार

की बात न उठती। अस्तु, यह निर्विवाद है कि प्रथम पक्षों की मृत्यु के उपरांत ही आनुवंशिक उत्तराधिकार का प्रश्न उपस्थित हो सकता है।

चूंकि जहाँ तक प्रथम पीढी का सम्बन्ध है, आनुवंशिक उत्तराधिकार का प्रश्न उठता ही नहीं, इसलिए दूसरी तथा अन्य सभी अनुगामी पीढ़ियों के प्रति इस प्रथम पीढी के व्यवहार पर अब हमें विचार करना है।

पहली पीढी अन्य अनुगामी पीढियों के प्रति जिस प्रकार का व्यवहार करती है, वैसा करने का उसे अधिकार नहीं है। विधान बनाने के स्थान पर वह वसीयत लिखने लगती है और वसीयत के रूप में भावी पीढ़ियों को एक सरकार सौंप देने का प्रयत्न करती है। इतना ही नहीं, वरन् वह भावी पीढियों पर एक ऐसी सरकार थोपने का प्रयत्न करती है जो उस सरकार से सर्वथा भिन्न और नवीन स्वरूप की है जिसके अन्तर्गत वह पीढी स्वयं रही है।

जैसा कि कहा जा चुका है, पहली पीढी आनुवंशिक सरकार के अन्तर्गत नहीं रही, वरन् उसने स्वयं अपनी सरकार स्थापित की। किन्तु वही पीढी वसीयतनामे के माध्यम से, जिसका उसे अधिकार नहीं है, अन्य अनुगामी पीढ़ियों के अपने लिए स्वतन्त्र रूपेण कार्य करने के अधिकार को छीनने का प्रयत्न करती है।

मनुष्य के सामाजिक अधिकारों को न तो योजनान्वित किया जा सकता है, न हस्तांतरित किया जा सकता है और न उनका उन्मूलन ही किया जा सकता है। वे केवल परम्परागत होते हैं; और उन्हें परंपरागत होने से सर्वदा के लिए अवरुद्ध करना किसी पीढी के वश की बात नहीं है। यदि वर्तमान या अन्य कोई पीढी दासता ही स्वीकार करती है तो इससे अनुगामी पीढ़ियों के स्वतंत्र होने का अधिकार कम नहीं होता। गलतियों को वैध उत्तराधिकार नहीं प्राप्त हो सकता। जब श्री बर्क यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सन १६८८ ई. की क्रांति के समय इंगलिश राष्ट्र ने सर्वाधिक गम्भीरता के साथ अपने तथा अपने सभी उत्तराधिकारियों के अधिकारों का सर्वदा के लिए त्याग कर दिया, तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसका उत्तर न देकर केवल उनके अभिचरित सिद्धांतों का तिरस्कार किया जा सकता है अथवा उनकी अज्ञानता पर दुःख प्रकट किया जा सकता है।

किसी भी रूप से विचार किया जाय, किन्तु अन्य पीढी की इच्छा से उत्पन्न

होने वाली आनुवशिक सरकार मूर्खतापूर्ण ही प्रकट होती है। 'क' को यह अधिकार नही हो सकता कि वह 'ख' की सम्पत्ति लेकर अपनी इच्छा से उसे 'ग' को सौंप दे। फिर भी आनुवशिक उत्तराधिकार इसी सिद्धान्त पर कार्यान्वित होता आया है।

किसी एक पीढी ने अन्य अनुगामी पीढियो के अधिकारो को छीन कर उन्हें एक अन्य व्यक्ति को दिया जो बाद में उन अनुगामी पीढियो से, बर्क की भाषा में, कह सकता है कि आप लोगो का कोई अधिकार नही है, आपके अधिकार मुझे सौंप दिये गये हैं और मैं आप लोगो की उपेक्षा करते हुए शासन करूँगा। इस प्रकार के सिद्धान्तो और ऐसी अज्ञानता से ईश्वर विश्व की रक्षा करे।

[निष्कर्ष]

ज्ञान और अज्ञान, दो परस्पर विरोधी तत्व मानव-ससार को प्रभावित करते हैं। यदि किसी देश में इन दो में से किसी एक की वृद्धि हो जाय तो शासन-यन्त्र का परिचालन नितान्त सुचारु रूप से होता है। ज्ञान अपना मार्ग स्वय ढूंढ लेता है और अज्ञान, वह सब स्वीकार कर लेता है, जो उसे आदेश के रूप में प्राप्त होता है।

संसार में दो प्रकार की सरकारे हैं; एक निर्वाचन और प्रतिनिधित्व द्वारा स्थापित सरकार, और दूसरी आनुवशिक अधिकार पर स्थापित सरकार। पहले प्रकार को हम जन-तन्त्र (Republic) कहते हैं और दूसरे को राज-तन्त्र अथवा कुलीन-तन्त्र (Aristocracy)।

सरकार के, उपर्युक्त, दोनो भिन्न और परस्पर विरोधी स्वरूप, ज्ञान और अज्ञान के दो भिन्न और परस्पर विरोधी आधारो पर निर्मित होते हैं। यह निर्विवाद है कि सरकारी कार्यों के लिए बुद्धि और योग्यताओ की आवश्यकता है, किन्तु बुद्धि और योग्यताएँ आनुवशिक नही होती हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि आनूवशिक उत्तराधिकार मनुष्य से एक ऐसे विश्वास की अपेक्षा रखता है जिसे बुद्धि स्वीकार नही कर सकती और जो केवल अज्ञान के आधार पर स्थापित हो सकता है। यही कारण है कि किसी देश में अज्ञान का प्रभाव

जितना ही अधिक होगा, वह इस प्रकार की सरकार के लिए उतना ही अधिक उपयुक्त होगा।

इसके विपरीत, सुव्यवस्थित जनतंत्र की सरकार मनुष्य से उसी विश्वास की अपेक्षा रखती है, जिसे बुद्धि स्वीकार करती है। जनतन्त्रीय सरकार में प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पूर्ण पद्धति के औचित्य, उसके मूल तथा उसके कार्यों आदि की जाँच करता है, और भलीभाँति समझ लिए जाने पर इसका कार्य सपादन सुचारुरूपेण होता है। परिणाम यह होता है कि इस प्रकार की सरकार के अन्तर्गत मानव-शक्ति सम्पूर्ण साहस के साथ कार्य करती है और अत्यधिक गौरव प्राप्त करती है।

सरकार के उपर्युक्त दो स्वरूपो में से प्रत्येक भिन्न आधार पर कार्य करता है, एक ज्ञान के सहारे स्वतन्त्रतापूर्वक अपना कार्य करता है और दूसरा अज्ञान के सहारे। अब हमें यह देखना चाहिए कि जिसे हम मिश्रित सरकार कहते हैं, उसके मूल में वह कौन-सी शक्ति है, जो उसे गति प्रदान करती है।

मिश्रित सरकार की गत्यात्मक शक्ति है—भ्रष्टाचार। मिश्रित सरकारों में निर्वाचन और प्रतिनिधित्व अत्यधिक अपूर्ण ही क्यो न हो, फिर भी आनुवंशिक सरकारों की अपेक्षा इनमें बुद्धि को कार्य करने का अधिक अवसर प्राप्त होता है और इसलिए उस बुद्धि को खरीद लेना आवश्यक हो जाता है। मिश्रित सरकार परस्पर विरोधी तत्वो को भ्रष्टाचार द्वारा जोड़कर इकाई का निर्माण करती है, और इसलिए प्रत्येक रूप से वह अपूर्ण है। बर्क को इस बात का महान क्षोभ है कि फ्रांस ने ब्रिटिश सविधान को स्वीकार नही किया। इस अवसर पर, जिस खेदपूर्ण ढंग से उन्होने अपनी बात व्यक्त की है, उसमें यह भाव निहित है कि अपने दोषो की रक्षा के लिए ब्रिटिश संविधान को किसी और तत्व की आवश्यकता है।

मिश्रित सरकार में उत्तरदायित्व का अभाव रहता है; उसके अंश एक दूसरे को ऐसे ढँके हुए रहते हैं कि उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है और भ्रष्टाचार, जो कि गत्यात्मक शक्ति है, अपने बचाव की योजना बना लेता है। जब सिद्धान्त रूप में इसे स्वीकार कर लिया जाता है कि राजा कोई गलती नहीं कर सकता तो राजा की स्थिति मूर्ख अथवा भ्रान्तचित्त व्यक्ति की स्थिति के समान ही सुरक्षात्मक हो जाती है। फिर तो, उसके लिए उत्तरदायित्व की

बात उठती ही नही। उसके बाद उत्तरदायित्व आता है मत्री पर, जो ससद् के उस बहुमत की शरण लेता है जिसे पद, निवृत्ति-वेतन (Pension) तथा भ्रष्टाचार द्वारा प्राप्त कर लेना राजा के वश की बात है, और वह बहुमत के जिस अधिकार से मत्री को बचा लेता है, उसीके द्वारा अपना औचित्य भी सिद्ध कर लेता है। इस चक्रगति के कारण सरकार के प्रत्येक अश से और अन्त मे सपूर्ण से, उत्तरदायित्व को दूर कर दिया जाता है।

जब सरकार का एक भाग ऐसा है जो कोई गलती नही कर सकता तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह कोई काम नही करता और वह केवल अन्य शक्ति का, जिसकी मत्रणा और निर्देशना के अनुसार वह कार्य करता है, यत्रमात्र है। वास्तव में मिश्रित सरकार एक पहेली है। यह अपने विभिन्न भागो को जोडने के लिए आवश्यक रूप से अत्यधिक भ्रष्टाचार करती है। यह सरकार के सभी स्वरूपो को वहन करने का भार देश के सिर पर लाद देती है और अन्त में एक ऐसी 'समिति की सरकार' का रूप धारण कर लेती है, जिसमें परामर्श-दाता, कार्यकर्ता, अनुमोदक, औचित्य सिद्ध करने वाले, उत्तरदायी और अनुत्तर-दायी व्यक्ति स्वय वे ही व्यक्ति होते हैं।

इस मूक अभिनयात्मक योजना तथा दृश्यो एव पात्रो के परिवर्त्तन द्वारा, मिश्रित सरकार के विभिन्न भाग उन विषयो में से एक दूसरे का बचाव कर लेते हैं, जिन्हे निष्पादित करने का भार उनमें से कोई एक भाग अपने ऊपर नही ले सकता। जब धन की आवश्यकता पडती है, तो ये विभिन्न अवयव प्रत्यक्ष रूप से अलग हो जाते हैं और ससदीय प्रशसा के पुल बांधने लगते हैं। वे एक दूसरे की बुद्धिमत्ता, उदारता और अनासक्ति की आश्चर्यपूर्ण सराहना करते हुए राष्ट्र के ऊपर पडनेवाले भार पर एक स्वर से नि श्वासें छोडते हैं।

किन्तु एक सुव्यवस्थित 'गणतन्त्र' (Republic) में, इस प्रकार विभिन्न तत्वो को जोडने, प्रशसा करने तथा दु ख प्रकट करने का अभिनय नही होता। इसमें देश के प्रत्येक भाग का समान एव पूर्ण प्रतिनिधित्व रहता है और विधान-विभाग (Legislative) तथा निष्पादन-विभाग (Executive) का चाहे जिस प्रकार प्रबन्ध हो, इसके सभी सदस्यो का एक ही प्राकृतिक मूल-स्रोत होता है। इसके विभिन्न विभाग एक दूसरे के लिए, प्रजातन्त्र (Democracy), कुलीनतन्त्र (Aristocracy) और राजतन्त्र (Monarchy) के समान

भिन्न नहीं हैं। चूँकि गणतन्त्र (Republic) में परस्पर विरोधी तत्व नहीं होते, अतः उसमें समझौते द्वारा भ्रष्टाचार करने अथवा योजना द्वारा मिश्रित होने का प्रश्न ही नही उठता।

सार्वजनिक कार्य स्वतः राष्ट्र के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करते हैं; और उन्हें निष्पादित करने के लिए किसी के मिथ्याभिमान से चाटुकारितापूर्ण प्रार्थना नही करनी पडती, वरन् उनके गुणो के कारण राष्ट्र स्वयं उन्हें पूरा करता है। मिश्रित सरकारो में राष्ट्र के ऊपर पडनेवाले करो के भार पर अत्यन्त सफलतापूर्वक व्यक्त की जाने वाली दुःख की निरन्तर कराह, गणतन्त्र के अभिप्राय और भावना के सम्मुख असगत ही सिद्ध होगी। यदि कर आवश्यक हैं तो निश्चित रूप से लाभप्रद होगे; किन्तु उनके लिए, यदि क्षमा-याचना की आवश्यकता पड़ी, तो उस क्षमा-याचना में दोषारोपण का अर्थ निहित है।

जब मनुष्यो को राजा और प्रजाओ के विभिन्न नामों से पुकारा जाता है अथवा जब राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और प्रजातन्त्र के भिन्न-भिन्न नामो से या मिश्रित नाम से सरकार की चर्चा की जाती है, तो विवेकशील व्यक्ति इन नामों का क्या अर्थ समझे ? यदि विश्व में, वास्तविक रूप से मानव-शक्ति के दो या अधिक भिन्न एवं पृथक मूलतत्व कभी थे तो हमें उन कतिपय उद्गम्-स्रोतों से अवगत होना चाहिए जिनके लिए उपर्युक्त शब्दो का प्रयोग किया जा सके। किन्तु मनुष्य की एक और केवल एक जाति है, इसलिए मानव-शक्ति का केवल एक मूलतत्व सम्भव है, और वह है मनुष्य स्वयं। राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और प्रजातन्त्र आदि केवल मानव-बुद्धि की सृष्टियाँ हैं, और इन तीनो के समान सहस्रो अन्य प्रकार की सरकारो का आविष्कार किया जा सकता है।

अमेरिका और फ्रास की क्रांतियो तथा अन्य देशो में दिखलाई पडनेवाले लक्षणो से यह स्पष्ट है कि सरकार-पद्धति के बारे में विश्व-मत बदल चुका है। क्रातियां राजनैतिक अनुमान की परिधि के बाहर हैं। समय और परिस्थितियों की जिस प्रगति को लोग महान परिवर्तनो के लिए आवश्यक मानते हैं, वह क्रांतियों के उत्पन्न करनेवाले विचारों के वेग और मस्तिष्क की शक्ति को मापने के लिए अत्यधिक यांत्रिक हैं। अब तक जितनी क्रातियाँ हो चुकी हैं, उन्हें कभी असम्भव माना जाता था; उनके कारण सभी प्राचीन सरकारो को धक्का लगा

है। यूरोप में इस समय यदि कोई सामान्य क्रांति हो उठे तो लोगो को जो आश्चर्य होगा, उससे कही अधिक आश्चर्य अब तक की हुई क्रान्तियो पर होता है।

जब हम मनुष्य की इस दयनीय दशा पर विचार करते हैं कि शासन की राजतन्त्रीय पद्धति और आनुवंशिक पद्धति के अन्तर्गत मनुष्य अपने घर से निकाल दिया जाता है तथा करो के द्वारा निर्धन बनाया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पद्धतियाँ दोषपूर्ण है, और सरकार के सिद्धात तथा उसकी रचना में सामान्य क्राति की आवश्यकता है।

एक राष्ट्र के कार्यो के प्रबन्ध के अतिरिक्त सरकार और क्या है ? सरकार, प्रकृतितः, व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नही है और न हो सकती है; वरन् वह समूचे राष्ट्र की सम्पत्ति है। यद्यपि बल-प्रयोग द्वारा अथवा किसी 'आविष्कृत योजना' द्वारा इसे विरासत के रूप में हड़प लिया गया है, किन्तु अपहरण वस्तुओं के अधिकार को बदल नही सकता। जहाँ तक अधिकार की बात है, प्रभुसत्ता केवल राष्ट्र की होती है, किसी व्यक्ति की नही। यदि राष्ट्र, सरकार के किसी स्वरूप को असुविधाजनक समझता है तो उस स्वरूप को बदल देने तथा अपने हित, स्वभाव एव सुख के अनुसार नवीन स्वरूप की स्थापना करने का, उसे प्रत्येक समय स्वाभाविक एव अपरिहार्य अधिकार प्राप्त है। राजाओं और प्रजाओ के रूप में किये गये मनुष्यो के अद्भुत और अशिष्ट भेद, राज-दरबारियो की स्थिति के अनुकूल होते हुए भी, नागरिको के लिए अनुपयुक्त है, और उस सिद्धात द्वारा निन्दित है जिसके आधार पर आजकल सरकारो का निर्माण हो रहा है। प्रत्येक नागरिक प्रभुसत्ता (Sovereignty) का सदस्य है, और इसलिए वह वैयक्तिक आधीनता नही स्वीकार कर सकता; उसकी आज्ञाकारिता केवल कानूनो के प्रति हो सकती है।

सरकार क्या है, इस प्रश्न पर विचार करते समय यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सरकार को उन सभी वस्तुओ और विषयो का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, जिनके लिए उसकी शक्ति का प्रयोग होगा। सरकार विषयक इस दृष्टिकोण से, अमेरिका और फ्रास द्वारा स्थापित जन-तन्त्रीय-पद्धति सम्पूर्ण राष्ट्र को अपनी परिधि में रखती है; और विभिन्न भागो के प्रतिनिधित्व द्वारा स्थापित केन्द्र सभी भागो के आवश्यक हितो के ज्ञान से अवगत रहता है।

किन्तु प्राचीन सरकारो की रचना इस प्रकार की है कि न तो उन्हे देश का ज्ञान प्राप्त हो पाता है, और न वे सुख दे पाती हैं। मठ की दीवारो के बाहर के विश्व का ज्ञान न रखनेवाले महन्तों की सरकार जितनी असगत है, उतनी ही असगत है राजाओ द्वारा शासित सरकार।

प्राचीन काल मे लोग जिन्हे क्रान्तियाँ कहा करते थे वे व्यक्तियों के बदलने और स्थानीय परिस्थितियो के परिवर्तनो से कुछ ही अधिक होती थी। स्वाभाविक घटनाओ के समान उनके उद्भव और विलय होते रहे हैं। उनके अस्तित्व अथवा भाग्य में ऐसी कोई शक्ति नही थी जो उनकी उद्भव-भूमि के अतिरिक्त अपना प्रभाव डाल सके। किन्तु अमेरिका और फ्रास की क्रान्तियों के प्रभाव-स्वरूप ससार मे वस्तुओ की प्राकृतिक व्यवस्था का नवीन रूप लक्षित हो रहा है। उन क्रान्तियो ने सिद्धान्तों की ऐसी पद्धति को जन्म दिया है जो सत्य और मानव-अस्तित्व के समान ही सार्वलौकिक हैं; उन्होने राष्ट्रीय उन्नति, राजनैतिक सुख तथा नीति का समन्वय किया है।

१. जहाँ तक अधिकारो का प्रश्न है, सभी मनुष्य स्वतन्त्र और समान पैदा होते हैं तथा भविष्य में भी समान पैदा होते रहेगे। इसलिए केवल सार्वजनिक उपयोगिता के आधार पर लौकिक भेद सम्भव है।

२. मनुष्य के प्राकृतिक और अविधेय अधिकारो को अक्षुण्ण रखना सभी राजनैतिक सस्थाओ का उद्देश्य है और वे अधिकार है—स्वतन्त्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा और अत्याचार का विरोध करना।

३. राष्ट्र तत्वतः समस्त प्रभुसत्ताओं का मूल है; किसी व्यक्ति अथवा किसी संस्था को, ऐसे प्रभुत्व का अधिकार न होगा जो उसे स्पष्टरूपेण राष्ट्र से प्राप्त नही हुआ है।

इन उपर्युक्त सिद्धान्तो में ऐसा कुछ नही है, जो महत्वाकाक्षा को उत्तेजित करके राष्ट्र को अव्यवस्थित कर दे। इन सिद्धान्तो का प्रयोजन है राष्ट्र की योग्यताओ और बुद्धि का आवाहन करना, ताकि उनके द्वारा सर्वसामान्य का हित-सपादन हो, न कि विशेष प्रकार के व्यक्तियों अथवा वर्गों का हित या अभ्युदय हो। राजतंत्रीय प्रभुसत्ता को, जो मानव-जाति की शत्रु और दुःख का स्रोत है, समाप्त कर दिया गया और वह स्वयं अपने प्राकृतिक एव मूल स्थान, राष्ट्र को सुपुर्द कर दी गयी। यदि यूरोप भर में ऐसा ही हो जाय तो युद्ध के

कारण ही नष्ट हो जाय।

कहा जाता है कि फ्रांस के हेनरी चतुर्थ ने, जो कि एक विशाल एवं दयालु हृदय का व्यक्ति था, सन् १६१० ई० के आसपास यूरोप में युद्ध का उन्मूलन करने की योजना प्रस्तुत की। उस योजना में यह कहा गया था कि यूरोप की एक कांग्रेस (फ्रास के लेखको ने इसे 'प्रशान्त जनतत्र' के नाम से पुकारा है) का निर्माण हो, जिसमें राष्ट्रो के प्रतिनिधि नियुक्त किये जाएँ, और यदि दो राष्ट्रो में कोई झगडा हो तो वही कांग्रेस पचायत करे। जिस समय प्रस्ताव किया गया था, यदि उसी समय इस योजना को स्वीकार कर लिया गया होता, तो फ्रास की क्रान्ति के आरम्भ-काल में इगलैण्ड और फ्रास मे जो कर लगे हुए थे वे अपेक्षाकृत दस लाख स्टर्लिंग वार्षिक कम होते।

इसका कारण जानने के लिए कि इस प्रकार की योजना क्यो नही स्वीकृत की गयी (और युद्ध का अन्त करने के लिए नही, वरन् कई वर्षो के व्यर्थ व्यय के उपरान्त केवल युद्ध समाप्त करने के लिए कांग्रेस का आयोजन क्यो किया गया)? सरकारो के हितो को राष्ट्रो के हितो से भिन्न समझना आवश्क है।

जो एक राष्ट्र के लिए करो का कारण होता है, वही सरकार की आय का साधन भी होता है। प्रत्येक युद्ध का अन्त करो मे वृद्धि और परिणामत सरकार की आय में वृद्धि के साथ होता है। जिस रूप मे आजकल युद्ध आरम्भ या समाप्त किये जाते हैं, उसके अनुसार युद्ध की किसी भी स्थिति मे सरकारो के अधिकार बढा दिये जाते हैं। चूँकि युद्ध करो तथा पदो पर नवीन नियुक्तियों की आवश्यकता का बहाना सुगमता-पूर्वक प्रस्तुत करता है, अतः अपनी इस उपादेयता के नाते वह प्राचीन सरकारो का पद्धति का प्रमुख अश है। युद्ध को समाप्त करने की किसी भी पद्धति की स्थापना का, वह राष्ट्र के लिए अत्यधिक लाभप्रद क्यो न हो, अर्थ होगा इस प्रकार की सरकार से उसके सर्वाधिक लाभप्रद अश को नष्ट कर देना। जिन तुच्छ विषयो को लेकर आजकल युद्ध प्रारम्भ किये जाते हैं, वे सरकारो की युद्ध-प्रथा को बनाये रखने की प्रवृत्ति एव उत्कट इच्छा को प्रकट करते हैं, और उन सिद्धान्तो का भण्डाफोड करते हैं, जिन पर वे सरकारें काम करती हैं।

जनतन्त्रीय देश युद्ध में क्यो नही कूदते ? इसका कारण केवल यही है कि उनकी सरकार की प्रकृति ऐसी है कि उनके हित राष्ट्र के हितो से भिन्न नही

होते। कुव्यवस्थित होने तथा संसार-भर में फैले हुए वाणिज्य के बावजूद भी हालैण्ड लगभग एक शती तक बिना युद्ध के रहा, और जिस क्षण फ्रांस में सरकार का स्वरूप बदल दिया गया, उसी क्षण नवीन सरकार के साथ-साथ वहाँ शान्ति के जनतन्त्रीय सिद्धान्त तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था एव उन्नति का उद्भव हुआ। अन्य राष्ट्रो में भी ऐसे परिवर्तनों के ऐसे ही परिणाम होगे।

युद्ध प्राचीन पद्धति की सरकारो का सिद्धान्त है और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति शत्रुता का जो भाव रखता है, वह युद्ध-प्रथा को बनाए रखने के लिए सरकारों की नीति मात्र है। एक सरकार अन्य सरकार पर विश्वासघात, षड्यन्त्र और राष्ट्र की भावना को उत्तेजित तथा उसे भयंकर शत्रुता के रूप में परिवर्तित कर देने वाली महत्वाकाक्षा का आरोप करती है। मनुष्य, मनुष्य का शत्रु नही है, और यदि है, तो सरकार की ग़लत पद्धति के माध्यम से ही। इसलिए राजाओं की महत्वाकाक्षाओ के बदले इस प्रकार की सरकारो के सिद्धान्तों के विरुद्ध स्वर उठाना चाहिए और एक व्यक्ति का सुधार करने के बदले पद्धति का सुधार करने में राष्ट्र की बुद्धि का उपयोग करना चाहिए।

प्राचीन सरकारो के सिद्धान्त तथा स्वरूप, जो आज भी प्रचलित हैं, अपने स्थापना-काल के विश्व की स्थिति के अनुकूल थे या नही यह बात दूसरी है। वे जितने पुरातन होते जायेंगे, वर्तमान वस्तु-स्थितियो के लिए वे उसी मात्रा में अनुपयुक्त होते जायेंगे। समय तथा परिस्थितियो एव मतो में हुए परिवर्तन का जो प्रगतिशील प्रभाव हमारी रीतियो और आचारों पर पड़ा है, उसीने सरकारो की प्राचीन पद्धतियो में परिवर्तन अनिवार्य कर दिया है। विश्व की पूर्वकालीन स्थिति की अपेक्षा आज के युग में कृषि, वाणिज्य तथा शिल्प आदि के लिए, जिनके द्वारा राष्ट्र की सर्वाधिक उन्नति होती है, भिन्न प्रकार की सरकार-पद्धति और बुद्धि की आवश्यकता है।

मनुष्य-जाति की प्रबुद्धावस्था को देखते हुए यह समझ लेना कठिन नहीं है कि आनुवंशिक सरकारें अपने पतन-बिन्दु पर पहुँच रही हैं, और यूरोप में राष्ट्रीय प्रभुता एव प्रतिनिधित्व पर स्थापित सरकार के विस्तृत आधार पर क्रान्तियाँ होने जा रही हैं। इसलिए उन्हे विप्लव के सुपुर्द कर देने की अपेक्षा उनकी अनिवार्यता को अनुभव करके बुद्धि और समझौते के आधार पर उनकी स्थापना करना अधिक बुद्धिमानी होगी।

और मनुष्य अपनी मुक्ति का उपाय सोचने लगा। यदि सरकारों के सिद्धान्तों और व्यवहारो के प्रति क्रान्ति न हुई होती, तो केवल इगलैण्ड के सम्बन्ध-विच्छेद के रूप में, अमेरिका की स्वतत्रता का महत्व बहुत कम होता। अमेरिका ने क्रान्ति की, न केवल अपने लिए वरन् समस्त विश्व के लिए; और उसने अपने हितो की परिधि के बाहर भी देखा। जर्मनी के सिपाही भी, जिन्हे अमेरिका के विरुद्ध लड़ने के लिए किराये पर बुलाया गया था, अपनी हार का आनन्द मनाएंगे और इगलैण्ड अपनी सरकार की दुष्टता पर शिकायत करते हुए अपनी असफलता पर भी प्रसन्न होगा।

जिस प्रकार राजनैतिक विश्व में अमेरिका ही एक ऐसा स्थान था, जहाँ सार्वलौकिक सुधार के सिद्धान्त स्थापित हो सकते थे, उसी प्रकार प्राकृतिक विश्व मे भी वह सर्वोत्तम था। इसके सिद्धान्तो को उत्पन्न करने के लिए ही नही, वरन् उन्हे महान परिपक्वता प्रदान करने के लिए भी परिस्थितियो का समूह यहाँ एकत्रित हुआ था।

किसी दर्शक के नेत्रो के सम्मुख वह महाद्वीप जो दृश्य प्रस्तुत करता है, उसमें कुछ ऐसी शक्ति है जो महान विचारो को उत्पन्न और प्रोत्साहित करती है। प्रकृति उसके सम्मुख अपने विराट् रूप में प्रस्तुत होती है। यहाँ के प्रथम निवासी यूरोप के विभिन्न राष्ट्रो को छोड़कर आने वाले व्यक्ति थे। उनके धर्म भिन्न-भिन्न थे और प्राचीन विश्व के सरकारी उत्पीडन के कारण, वहाँ से भाग कर वे एक नये विश्व में शत्रु नही, वरन् भाई के रूप में मिले। निर्जन प्रदेश की प्रथम बस्ती-सम्बन्धी अनिवार्य आवश्यकताओ ने उनके मध्य वह सामाजिकता उत्पन्न कर दी जिसे सरकारो के झगडों एवं षड्यन्त्रों से चिर-पीड़ित देशो ने अब तक उपेक्षित रखा था। ऐसी स्थिति में मनुष्य वही होता है, जो उसे होना चाहिए। वह अपनी जाति को प्राकृतिक शत्रु के रूप में नहीं, वरन् बन्धु के रूप में देखता है। कृत्रिम जगत के लिए यह एक उदाहरण है, जो यह प्रकट करता है कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्य को प्रकृति की गोद में लौटना होगा।

सुधार की प्रत्येक दिशा में अमेरिका ने जो तीव्र प्रगति की है, उसके आधार पर यह निर्णय करना विवेकपूर्ण होगा कि यदि एशिया, अफ्रीका और यूरोप की सरकारें अमेरिका के सिद्धान्त के समान किसी सिद्धान्त के अनुसार

काम किए होती, तो इस समय तक उन देशो की दशा अपेक्षाकृत अधिक अच्छी होती। युग-पर-युग बीतते रहे, किन्तु उनकी दयनीय दशा ज्यो-की-त्यों बनी रही।

यदि हम एक ऐसे दर्शक की कल्पना करे जो ससार के विषय में कुछ नही जानता है और जो केवल घूमने के लिए संसार मे छोड दिया गया है, तो उसे ससार का अधिकाश भाग नया प्रतीत होगा; क्योंकि वहाँ के लोग प्रारम्भिक बस्तियो की कठिनाइयो और अभावो से सघर्ष करते हुए प्रतीत होगे। वह यह नही समझ सकेगा कि पीडित व्यक्तियो के ये समुदाय—प्राचीन देशो में जिनका आधिक्य है—वे ही है, जिन्हे अब तक अपनी व्यवस्था करने का अवसर ही नही प्राप्त हो सका है, और इस बात को तो वह सोच ही नही सकेगा कि इसका कारण उन देशो की सरकारे हैं।

प्राचीन विश्व के अधिक दयनीय भागो को छोडकर यदि हम उन भागो को देखें जो सुधार की उन्नत स्थिति में हैं, तो हमें सरकार के लोभी हाथ अब भी सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र में बढते हुए और देश की सम्पत्ति का अपहरण करते हुए मिलेंगे। आविष्कारो का उपयोग निरन्तर 'राजस्व' (Revenue) अथवा कर-निर्धारण के लिए नवीन बहाने प्रस्तुत करने मे हो रहा है। ऐसी सरकार देश की सम्पन्नता पर आँख गडाये रहती है और अवसर आते ही अपना भाग ले लेती है।

चूँकि क्रांतियाँ आरम्भ हो चुकी हैं, अतः यह आशा करना स्वाभाविक है कि भविष्य में और भी क्रांतियाँ होगी। विस्मयजनक एव निरन्तर बढते हुए व्यय जिनके द्वारा प्राचीन सरकारो का कार्य-सचालन होता है, वे बहुसख्यक युद्ध जिनमें प्राचीन सरकारे भाग लेती हैं अथवा जिन्हे उत्तेजित करती हैं, सार्वलौकिक सस्कृति और वाणिज्य के मार्ग में उन सरकारो द्वारा प्रस्तुत की गयी व्यग्रता और देश में सरकारो द्वारा किये जानेवाले अपहरण और अत्याचार विश्व की सम्पत्ति को समाप्त कर चुके हैं; साथ-ही-साथ विश्व का धैर्य भी समाप्त हो चला हैं। ऐसी स्थिति में, और ऐसे उदाहरणो के उपस्थित रहते हुए, क्रांतियो की आशा करनी ही चाहिए। वे वर्तमान समय में सार्वलौकिक चर्चा के विषय बन गयी हैं।

यदि सरकार की ऐसी पद्धतियो का आरम्भ हो सकता है, जिनका व्यय

अपेक्षाकृत कम हो और जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की अधिक वृद्धि हो तो उनकी प्रगति को रोकने के लिए किये गये सारे प्रयत्न, अन्ततः व्यर्थ सिद्ध होगे। समय के समान बुद्धि भी स्वयं अपना काम कर लेगी ; और हित के सम्मुख पूर्व-धारणा की हार होगी। यदि सार्वलौकिक शांति, सस्कृति और वाणिज्य मनुष्य के भाग्य में हैं, तो सरकारो की पद्धति में क्रांति के द्वारा ही उनकी प्राप्ति सम्भव है। सभी राजतन्त्रीय सरकारें सैनिक-सरकारे हैं। 'युद्ध करना उनका व्यापार है ; लूटना तथा राजस्व प्राप्त करना उनका उद्देश्य है। जब तक ऐसी सरकारो का अस्तित्व रहेगा ; तब तक शांति एक दिन के लिए भी पूर्ण सुरक्षित नही है।

मानवीय दुर्गति के क्षोभपूर्ण चित्र तथा अल्पकालीन विश्राम के आकस्मिक विलम्ब के अतिरिक्त राजतन्त्रीय सरकारो का इतिहास और क्या है ? युद्ध और मानव-हत्याओ से थक कर वे सरकारें कुछ समय के लिए विश्राम लेने लगी, और उनके विश्राम को 'शान्ति' कहा जाने लगा। निश्चित रूप से ईश्वर का अभिप्राय मनुष्य को ऐसी स्थिति में रखने का नही था और यदि यही राजतन्त्र है तो इसे यहूदियो के पापो में से एक मानना उचित ही रहा।

विश्व मे पहले जितनी क्रान्तियाँ हुईं उनमें कोई ऐसी बात नही थी जो मानव-समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। उनके द्वारा केवल व्यक्तियों और कार्यों में परिवर्तन हुए, सिद्धान्तो में नही। युग के कई सामान्य कार्यों के समान उनके उद्भव और विलय हुए। हम इस समय जो क्रान्तियाँ देखते है, उन्हे प्रतिक्रान्तियाँ कहना अनुपयुक्त न होगा।

कभी समय था जब कि विजय और अत्याचार ने मनुष्य के अधिकार छीन लिये जिन्हे वह फिर से प्राप्त कर रहा है। मनुष्य के सभी कामो का तरंगवत् उत्थान और पतन परस्पर विरुद्ध दिशाओं में होता रहता है, इस विषय में भी वही हो रहा है। तलवार के बल पर सरकारें, जिस वेग के साथ, पूर्व से पश्चिम की ओर आयी थीं उससे अपेक्षा अधिक वेग के साथ, नैतिक सिद्धान्तो, सार्वलौकिक शान्ति-व्यवस्था तथा मनुष्यो के अपरिहार्य एवं पैतृक अधिकारो पर आधारित सरकार पश्चिम से पूर्व की ओर जा रही है। अपनी प्रगति द्वारा यह सरकार विशेष व्यक्तियो का नहीं, वरन् राष्ट्रों को अपनी ओर आकृष्ट करती है और मानव-जाति के नवीन युग की ओर संकेत कर रही है।

क्रान्तियो की सफलता को सर्वाधिक भय उस समय होता है जब उनके आधारभूत सिद्धान्तो की स्थापना के पूर्व ही तथा उनके परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले लाभालाभ के विषय में पर्याप्त सोचे-समझे बिना ही, उन्हे प्रारम्भ करने का प्रयास किया जाता है। 'सरकार' के सामान्य और रहस्यपूर्ण शब्द में राष्ट्र की परिस्थितियो से सम्बन्धित सब कुछ समाविष्ट कर लिया गया है। यद्यपि 'सरकार' अपनी भूलो और दुष्टताओ का उत्तरदायित्व अपने सर नहीं लेती, किन्तु अच्छाइयो और सम्पन्नताओ का श्रेय लूटने से चूकती भी नही। उद्योग-जन्य लाभो को अत्यन्त कौशल के साथ अपने कार्यों का फल सिद्ध करके वह उद्योग से उसकी प्रतिष्ठा छीन लेती है, और मनुष्य के सामान्य चरित्र में से उन गुणो का श्रेय स्वय ले लेती है जिन्हे वह सामाजिक प्राणी के नाते प्राप्त करता है।

इसलिए, क्रान्तियो के इन दिनों में यह समझ लेना हितकर है कि सरकार के कार्यों के परिणामस्वरूप क्या प्राप्त होता है और सरकार के प्रयत्नों के बिना क्या प्राप्त होता है। इसके लिए अच्छा यह होगा कि हम समाज, सभ्यता तथा उनके परिणामो को सरकार से भिन्न मानकर उन पर विचार करें। इस प्रकार की खोज आरम्भ करने से हम कार्यों के उचित कारण निर्दिष्ट करने तथा सामान्य त्रुटियो का विश्लेषण करने में समर्थ हो सकेंगे।

समाज और सभ्यता

मानव जाति का शासन करनेवाली व्यवस्था का अधिकांश सरकार का कार्य नही है। उसका मूल समाज के सिद्धान्तो एव मनुष्य की प्राकृतिक रचना में है। इस व्यवस्था का अस्तित्व सरकार से पहले का है और यदि सरकार का औपचारिक स्वरूप उठा दिया जाय तो भी वह बना रहेगा।

व्यक्ति और व्यक्ति तथा सुसभ्य समाज के सभी भागो के बीच परस्पर आश्रयत्व और पारस्परिक हित का एक ऐसा सम्बन्ध-सूत्र है जो उन्हे एक साथ बाँधे रखता है। भूमिधर, कृषक, उत्पादक, व्यापारी तथा अन्य सभी धन्धो के व्यक्ति एक दूसरे के एव सम्पूर्ण समाज के सहयोग से उन्नति करते हैं।

सामान्य हित उनके कार्यों का नियमन करते हैं; वे ही उनके कानून हैं। सामान्य व्यवहार जिन कानूनो को निर्दिष्ट करते है, वे सरकार के कानूनो की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं। सक्षेप में, समाज स्वयं अपने लिए प्राय: वह सभी कुछ कर लेता है जिसका श्रेय सरकार को मिलता है।

सरकार की कितनी मात्रा और कैसी प्रकृति मनुष्य के लिए उचित है, यह समझने के लिए आवश्यक है कि हम मनुष्य के चरित्र पर विचार करें। प्रकृति ने मनुष्य को सामाजिक जीवन के लिए रचा है, इसलिए उसने उसे सामाजिक जीवन के अनुकूल बनाया भी है। सभी दशाओ में प्रकृति ने मनुष्य की आवश्यकताओ को उसकी व्यक्तिगत शक्ति से अधिक रखा है। कोई भी व्यक्ति समाज के सहयोग के बिना अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे समर्थ नही है; और प्रत्येक व्यक्ति की वे आवश्यकताएँ सभी को समाज में आने के लिए विवश कर देती हैं, ठीक उसी प्राकृतिक ढंग से जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण-शक्ति केन्द्र की ओर उन्मुख होती है।

प्रकृति ने न केवल आवश्यकताओ के वैविध्य द्वारा मनुष्य को समाज में आने के लिए विवश किया, वरन् उसने मनुष्य के भीतर ऐसी सामाजिक स्नेह-पद्धति निहित कर रखी है जो यद्यपि मनुष्य के अस्तित्व के लिए नही, किन्तु उसके आनन्द के लिए आवश्यक है। मानव-जीवन में ऐसा कोई समय नही है जब कि समाज के प्रति मनुष्य का स्नेह समाप्त हो जाय। इस सामाजिक स्नेह का अस्तित्व मानव-अस्तित्व के साथ-साथ रहता है।

यदि हम ध्यान-पूर्वक मनुष्य की रचना, उसकी आवश्यकताओं के वैविध्य, पारस्परिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए विभिन्न मनुष्यो की भिन्न-भिन्न प्रकार की बुद्धि और समाज-निर्माण तथा उसके परिणामस्वरूप होने वाले हितों की सुरक्षा-सम्बन्धी मनुष्य की प्रवृत्ति पर विचार करें, तो हम सुगमतापूर्वक यह जान सकेंगे कि जिसे हम सरकार कहते हैं उसका अधिकांश अनावश्यक तत्व है।

जिन स्थितियो में समाज और सभ्यता सुविधापूर्वक कार्य करने में समर्थ नहीं है, केवल उन्ही स्थितियो मे सरकार की आवश्यकता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण दिये जा सकते है कि सरकार से जो कुछ उपयोगी वस्तु प्राप्त हो सकती है, वह बिना सरकार के, समाज की सामान्य सहमति के द्वारा प्राप्त की गयी है।

अमेरिका में युद्ध आरम्भ होने के दो वर्ष पूर्व से, तथा अमेरिका के कई राज्यो में तो इससे भी पहले से, सरकार का कोई व्यवस्थित स्वरूप नही था। प्राचीन सरकारें समाप्त कर दी गयी और देश अपनी रक्षा में इतना व्यस्त था कि वह नवीन सरकार की स्थापना की ओर ध्यान नही दे सकता था। फिर भी इस कालावधि में यूरोप के किसी भी देश के समान, अमेरिका में, व्यवस्था और अनुरूपता बनी रही।

मनुष्य में अपने को परिस्थितियो के अनुकूल बना देने की क्षमता होती है। समाज में विभिन्न प्रकार की योग्यताएँ और साधन एक की अपेक्षा अधिक होते हैं, और इसलिए उसमें व्यक्ति की अपेक्षा उपर्युक्त प्राकृतिक क्षमता भी अधिक होती है। जिस क्षण औपचारिक सरकार को समाप्त कर दिया जाता है, उसी क्षण समाज कार्य करना आरम्भ कर देता है। एक सामान्य सगठन उत्पन्न होता है और सामान्य हितो के कारण सार्वजनिक सुरक्षा बनी रहती है।

यह कथन कि औपचारिक 'सरकार' का उन्मूलन करना समाज को भंग करना है, सत्य से पर्याप्त दूर है। वास्तविकता यह है कि औपचारिक 'सरकार' का उन्मूलन करने पर समाज अपेक्षाकृत अधिक सगठित होता है। समाज-व्यवस्था का वह सम्पूर्ण अश, जो समाज ने सरकार को सौंप दिया था, 'सरकार' के भग होने पर, पुनः समाज के पास लौट आता है और उसके माध्यम से कार्य करने लगता है।

मनुष्य अपनी प्राकृतिक प्रवृत्ति और पारस्परिक लाभ के कारण सामाजिक और सभ्य जीवन के अभ्यस्त हो गये हैं। अत उनके जीवन में व्यवहार-गत सिद्धान्तो का प्राचुर्य रहता हैं जो सरकार-विषयक सभी परिवर्तनो में, जिन्हे वे सुविधाजनक या आवश्यक समझते हैं, उनका पथ-प्रदर्शन करता है। संक्षेप में, मनुष्य स्वभावतः ऐसा सामाजिक प्राणी है कि उसे समाज से अलग रखना नितान्त असम्भव है।

औपचारिक 'सरकार' सभ्य जीवन का अल्पाश है। मानव-बुद्धि द्वारा आविष्कृत सर्वोत्तम सरकार भी क्यो न स्थापित की जाय, वह वास्तविकता की अपेक्षा नाम और विचार की वस्तु अधिक होगी। समाज और सभ्यता के महान एव मौलिक सिद्धान्त पर, सार्वलौकिक रूप में स्वीकृत सामान्य व्यवहार पर तथा हित के निरन्तर सचालन पर, जो लाखो स्रोतो में से होता हुआ सभ्य मनुष्यों

के सम्पूर्ण समुदाय को शक्ति प्रदान करता है, व्यक्ति की और पूरे समाज की सुरक्षा एवं उन्नति निर्भर है। सर्वाधिक व्यवस्थित सरकार के कार्यों द्वारा भी जो कुछ सुरक्षा एव उन्नति प्राप्त होती है, वह अपेक्षाकृत अत्यल्प होती है।

सभ्यता जितनी पूर्ण होगी, सरकार की आवश्यकता उतनी ही कम होगी; क्योंकि उसी मात्रा में वह अपने कार्यों का नियमन करके शासन करेगा? किन्तु सरकारो का कार्य इसके विपरीत होता है। उनका व्यय उस मात्रा में बढ़ता है जिस मात्रा में उसे कम होना चाहिए। सभ्य जीवन के लिए केवल थोड़े से सामान्य कानूनो की आवश्यकता है और उनकी इतनी सार्वजनिक उपयोगिता होती है कि चाहे उन्हे सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जाय या न किया जाय, उनका प्रभाव प्रायः वही रहेगा। यदि हम इस बात पर विचार करें कि वे कौन-कौन से सिद्धान्त हैं जो मनुष्यो को सर्वप्रथम समाज में आने के लिए विवश करते हैं, और वे कौन-कौन सी प्रवृत्तियां हैं जो बाद में उनके पारस्परिक सम्बन्धो का नियमन करती हैं, तो इसके पहले कि हम 'सरकार' तक पहुँचे, हमें यह ज्ञात हो जायगा कि समाज के विभिन्न भाग आपस की प्राकृतिक क्रिया द्वारा प्रायः सम्पूर्ण कार्य निष्पादित कर लेते हैं।

मनुष्य उन सभी विषयो में उससे कहीं अधिक संगति-प्रिय प्राणी है जितना कि वह अपने को समझता है, अथवा सरकार उससे जितना विश्वास करने की अपेक्षा रख सकती है। समाज के बड-बडे कानून प्रकृति के नियम हैं। व्यक्तियों के बीच अथवा राष्ट्रो के बीच होने वाले वाणिज्य के क़ानून पारस्परिक हित के नियम हैं। उनका पालन इसलिए नही होता कि सम्बन्धित पक्षो की सरकारों ने उन्हे मानने के लिए क़ानून बनाये हैं; वरन् इसलिए कि वैसा करने से उनके हितो का सम्पादन होता है।

किन्तु सरकार की क्रिया द्वारा प्रायः समाज की यह प्राकृतिक प्रवृत्ति अव्यवस्थित अथवा नष्ट कर दी जाती है। जब सरकार, सामाजिक सिद्धान्तों पर आधारित न होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करके पक्षपात और अत्याचार के द्वारा कार्य करने लगती है, तो वह उन दुराचारो का कारण बन उठती है जिन्हें उसे रोकना चाहिए।

यदि हम इंगलैण्ड में समय-समय पर होने वाले दंगों एवं विप्लव आदि पर विचार करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि उनका कारण 'सरकार' का अभाव

नही था, वरन् 'सरकार' स्वयं उनका कारण थी। समाज को संगठित करने के स्थान पर उसने उसे विभाजित कर दिया। उसने समाज को उसके प्राकृतिक सम्बन्धो से वचित कर दिया और असतोषो तथा अव्यवस्थाओ को जन्म दिया जो अन्यथा न हुआ होता।

जिन सघोमें सभी प्रकार के मनुष्य व्यापार अथवा उन सभी कामो के लिए एकत्र होते हैं जिनसे सरकार का कोई सम्बन्ध नही है या जिन सघो में वे केवल सामाजिक सिद्धातो के आधार पर कार्य करते हैं, उनमें विभिन्न पक्ष अत्यन्त स्वाभाविक रूप से सघटित हो जाते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवस्था के साधन अथवा निमित्त होना तो दूर रहा, सरकारे प्राय उनके विनाश का कारण होती हैं। सन् १७८० ई० के विप्लव के कारण केवल उन पक्षपातो के अवशेष थे, जिन्हे सरकार ने स्वयं प्रोत्साहन दिया था। किन्तु इंगलैण्ड के विषय में अन्य कारण भी हैं।

करो को विभिन्न साधनो का बाना पहना कर कितना ही परिवर्तित रूप क्यो न दे दिया जाय, किन्तु वे अपने आधिक्य और विषमता के परिणामो को लेकर अनिवार्यत. प्रकट हो ही जाते हैं। उनके द्वारा समुदाय के अधिकाश व्यक्ति दरिद्रता और असतोप का शिकार बन जाते हैं, अतः वे निरन्तर विक्षोभ की स्थिति में रहते हैं, और चूँकि अभाग्यवश वे ज्ञान के साधनो से वचित रहते हैं, इस लिए वे शीघ्र ही अत्यधिक हिंसा में प्रवृत्त हो जाते हैं। किसी दगे का प्रत्यक्ष कारण चाहे कुछ भी हो, किन्तु वास्तविक कारण सुख का अभाव ही होता है। इससे प्रकट होता है कि सरकार की पद्धति मे कोई ऐसी त्रुटि है जो उस सुख को क्षति पहुँचाती है और जिसके द्वारा समाज उपद्रवो से बचा रहता है।

तथ्य तर्क से श्रेष्ठ होता है। अमेरिका का उदाहरण उपर्युक्त विचारो की पुष्टि करता है। यदि विश्व मे ऐसा कोई देश है, जहाँ सामान्य अनुमान के अनुसार एकता की सबसे कम आशा की जा सकती है, तो वह अमेरिका है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रो से आकर लोग यहाँ बसे हैं; वे सरकार की विभिन्न प्रकृति और स्वरूपो के अभ्यस्त हैं; उनकी भाषाएँ और उनकी उपासना-पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। अत विभिन्न प्रकार के इन लोगो का एक होना अव्यावहारिक प्रतीत होगा। किन्तु मनुष्य के अधिकारो तथा सामाजिक सिद्धातो के आधार पर 'सरकार-निर्माण' की साधारण क्रिया द्वारा सभी कठिनाइयाँ दूर हो गयी और

अमेरिका के सभी भाग हार्दिक एकता के सूत्र मे बँध गये हैं। वहाँ न तो निर्धन पीड़ित हैं, और न धनियो को असामान्य अधिकार प्राप्त हैं। उनके कर थोड़े हैं, क्योंकि उनकी सरकार न्यायशील है; और चूँकि उन्हे दीन बनाने की कोई चीज नही है, इस लिए वहाँ उपद्रव अथवा अव्यवस्था के कारण उत्पन्न होने का प्रश्न ही नही उठता।

वर्क के समान तत्ववेत्ता व्यक्ति, ऐसे जनो पर किस प्रकार शासन होना चाहिए इसकी कोई योजना ढूँढ निकाले होता। उसकी यह मान्यता होती कि कुछ को जाल-फसाद द्वारा, अन्यो को बल-प्रयोग द्वारा और सबको किसी 'आविष्कृत योजना' द्वारा शासित करना चाहिए। वह यह कहता कि अज्ञानता पर लादने के लिए अपूर्व बुद्धि को किराये पर लिया जाना चाहिए; और साधारण लोगो को मुग्ध करने के लिए तड़क-भड़क का प्रदर्शन करना चाहिए। अपने अन्वेषणो के आधिक्य में खोया हुआ वह व्यक्ति व्यवस्था-सम्बन्धी नाना प्रकार के निश्चय-पुनर्निश्चय करता हुआ अन्त में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले सरल और सुगम मार्ग की उपेक्षा कर बैठता।

अमेरिका की क्रांति के महान लाभों में से एक लाभ यह है कि उसने सिद्धातो का अन्वेषण किया और सरकारो के छल का भण्डाफोड कर दिया। अब तक जितनी क्रांतियाँ हुई थी वे राष्ट्र के विस्तृत धरातल पर नही, वरन् केवल राज-दरबार की परिधि के भीतर ही हुई। इन क्रांतियो के उभय पक्ष के व्यक्ति सदैव दरबारियों के वर्ग के होते रहे हैं, और उनकी सुधार-सम्बधी इच्छा चाहे जो कुछ रही हो, उन्होने सावधानी के साथ उस पेशे के जाल को बचाये रखा।

सभी दशाओ में उन्होने सरकार को रहस्यो द्वारा निर्मित एक ऐसी वस्तु के रूप में, जिसे केवल वे ही समझ सकते थे, प्रस्तुत करने की सावधानी रखी। उन्होने इस सत्य को कि सरकार सामाजिक सिद्धांतो के अनुसार काम करने वाले राष्ट्रीय सघ के अतिरिक्त और कुछ नही है, राष्ट्र की समझ से परे रखा; यद्यपि इसे जान लेना राष्ट्र के लिए ही लाभप्रद था।

अब तक मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य की सामाजिक और सभ्यता की स्थिति अपने शासन और सुरक्षा के लिए प्रायः सभी आवश्यक कार्यों को सम्पन्न करने में समर्थ है। इसके बाद हमें वर्तमान प्राचीन सरकारो का

परीक्षण करके यह देखना चाहिए कि इन सरकारो के सिद्धात और व्यवहार किस प्रकार के हैं।

सरकार की प्राचीन और नवीन पद्धतियाँ

प्राचीन सरकारो को प्रारम्भ करने वाले आधारभूत सिद्धातो तथा उस स्थिति में जहाँ तक समाज, सस्कृति और वाणिज्य मानव-जाति को ले जाने में समर्थ हैं, जितना अतर है उतना अन्यत्र कही नही हो सकता। प्राचीन पद्धति की सरकार स्वय अपनी उन्नति के लिए सत्ता ग्रहण करती है और नयी पद्धति की सरकार को समाज के सार्वजनिक हित के लिए अधिकार सौंपा जाता है। प्रथम प्रकार की सरकार युद्ध की प्रथा को अक्षुण्ण रख कर अपना पोषण करती है और दूसरे प्रकार की सरकार राष्ट्र को सम्पन्न करने के वास्तविक साधन-स्वरूप शाति व्यवस्था को प्रोत्साहन देती है। पहली, राष्ट्रीय पूर्वधारणाओ को बल प्रदान करती है, और दूसरी सार्वदेशीय वाणिज्य के साधन के रूप मे सार्वदेशीय समाज को प्रगति प्रदान करती है। एक राजस्व (Revenue) की मात्रा से राष्ट्र की सम्पन्नता को मापती है और दूसरी करो की अल्पतम आवश्यक मात्रा द्वारा अपनी उत्तमता सिद्ध करती है।

बर्क ने 'पुराने और नये ह्विगो' के विषय में चर्चा की है। यदि इन व्यर्थ के नामो और भेदो से वे अपना मनोरजन कर सके तो मैं उनके आनन्द में बाधक नही बनूँगा। बर्क के लिए नही, वरन् एबे-सेएस (Abbe Sicyes) के लिए मैं इस अध्याय को लिख रहा हूँ। इन दूसरे सज्जन के साथ राजतत्रीय सरकार के विषय में मेरा विवाद पहले से है, और चूँकि प्राचीन और नवीन सरकारो की तुलना करते समय राजतत्रीय सरकार की चर्चा स्वाभाविक रूप से उठ पडती है, इस लिए मैं उनके सम्मुख अपने विचारो को रखने में इस अवसर का उपयोग कर रहा हूँ। समय-समय पर बर्क का उल्लेख करता रहूँगा।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि आज जिसे सरकार की नवीन पद्धति कहते हैं, वह मनुष्य के मौलिक एव स्वाभाविक अधिकारो पर आधारित होने के नाते, सिद्धान्तत. सभी पद्धतियो से प्राचीन है। किन्तु, चूँकि अत्याचार और शक्ति ने गत कई शताब्दियो तक उन अधिकारो के प्रयोग को रोक रखा था, इसलिए प्राचीन कहने की अपेक्षा उसे नवीन कहना ही भेद की दृष्टि से अधिक अच्छा होगा।

इन दो पद्धतियों का प्रथम सामान्य अन्तर यह है कि प्राचीन सरकार अंशतः या पूर्णतः आनुवशिक होती है, और नवीन सरकार नितांत प्रतिनिधित्वात्मक होती है तथा वह सभी आनुवशिक सरकारों को निम्नांकित कारणों से अस्वीकार करती है।

(१) आनुवशिक सरकार मानव-जाति पर लादी गयी सरकार है।

(२) और आनुवशिक सरकार उन सभी कामो के लिए अनुपयुक्त है जिनके लिए सरकार की आवश्यकता पडती है।

जहां तक पहले कारण का सम्बन्ध है, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि अमुक अधिकार के वल पर आनुवशिक सरकार स्थापित हुई। उसे स्थापित करने का अधिकार मानव-शक्ति की परिधि के भीतर भी नही है। व्यक्तिगत अधिकार का जहाँ तक प्रश्न है, मनुष्य को अपनी सन्तान के ऊपर कोई अधिकार नही हैं; और इसलिए किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियो के समूह को आनुवशिक सरकार की स्थापना करने का अधिकार न था, और न हो सकता है। मरने के बाद यदि सन्तति के स्थान पर स्वयं हम लोग पुनः उत्पन्न होने वाले हों, तो भी हमें इस समय उन अधिकारो को स्वय से छीनने का कोई अधिकार नही है जो दूसरे जन्म में हमें प्राप्त होंगे। फिर किस आधार पर, हम अन्यो के उन अधिकारो को छीन सकते हैं?

अब दूसरी बात पर विचार कीजिए; अर्थात् इस बात पर विचार कीजिए कि आनुवशिक सरकार उन सभी कामो के लिए अनुपयुक्त है जिनके लिए सरकार की आवश्यकता पडती है। पहले हम यह देखें कि सरकार वास्तव में है क्या? फिर इसकी तुलना उन परिस्थितियो के साथ करें जिनके आधीन आनुवशिक सरकारे रहती हैं। सरकार को सर्वदा प्रौढ रहना चाहिए। उसका निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि वह उन सभी आकस्मिक घटनाओ का नियन्त्रण कर सके जो मनुष्य को, व्यक्ति के रूप में, अपने आधीन रखती है। चूंकि आनुवंशिक उत्तराधिकार उन सभी आकस्मिक घटनाओ के आधीन है, इसलिए वह सरकार की सभी पद्धतियो में सर्वाधिक अनियमित और अपूर्ण है।

'मनुष्य के अधिकारों' को कुछ लोगों ने 'समतलन पद्धति' के नाम से संबोधित किया है। किन्तु, वास्तव में, केवल आनुवंशिक राजतन्त्रीय पद्धति

को इस नाम से पुकारना चाहिए क्योकि यह मानसिक समतलेत् [illegible] पद्धति है। अविवेकपूर्ण ढग से यह पद्धति मानव-चरित्र के प्रत्येक प्रकार को [illegible] पद के लिए स्वीकार करती है। बुराई और अच्छाई, अज्ञान और ज्ञान, सक्षेप में सभी प्रकार के चरित्रो को, चाहे वे 'सु' हो या 'कु', यह पद्धति एक ही धरातल पर रखती है। एक के बाद दूसरे राजा गद्दी पर बैठते हैं; विवेकशीलो के रूप में नही, पशुओ के रूप में। उनके मानसिक अथवा नैतिक चरित्रो पर विचार नही किया जाता है।

जबकि राजतत्रीय देशो में स्वय सरकार इस प्रकार की तुच्छ 'समतलत पद्धति' पर निर्मित होती है, तो वहाँ के मनुष्यो की तुच्छ मानसिक स्थिति पर क्या हम आश्चर्य कर सकते हे? इस प्रकार की सरकार स्थिर प्रवृत्ति की नही होती। आज यह एक प्रकार की है, कल बदल सकती है। प्रत्येक उत्तराधिकारी की प्रकृति के अनुसार इसकी प्रकृति भी बदलती रहती है। यह उत्कट भावों और आकस्मिक घटनाओ के माध्यम से काम करने वाली सरकार है। यह शिशुओ, युवको और निर्बल वृद्धो, अर्थात् सभी प्रकार के मनुष्यो द्वारा शासित होती है। सरकार की यह पद्धति प्रकृति के लाभप्रद क्रम के विपरीत काम करती है, क्योकि समय-समय पर यह बच्चो को प्रौढो के ऊपर और बचपन की अपरिपक्व बुद्धि को प्रौढ बुद्धि एव अनुभव के ऊपर रख देती है। सक्षेप में आनुवशिक सरकारें जितनी हास्यास्पद हैं उतनी अन्य किसी प्रकार की सरकार नही हो सकती।

यदि प्रकृति का यह निर्णय होता अथवा यह दैवी घोषणा होती और मनुष्य उसे जानता, कि सदाचार और बुद्धि का आनुवशिक उत्तराधिकार से अनिवार्य सम्बन्ध है, तो आनुवशिक मरकारो के विरुद्ध जो कुछ कहा जाता है उसका निराकरण हो जाता। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि प्रकृति इस प्रकार कार्य करती है मानो वह आनुवशिक पद्धति को अस्वीकार करती हुई उसका उपहास करती है; जब हम यह देखते है कि सभी देशो में उत्तराधिकारियों के मानसिक चरित्र मानव-बुद्धि के सामान्य स्तर से निम्न है; जब हम देखते हैं कि एक राजा अत्याचारी है, दूसरा मूर्ख, तीसरा पागल और चौथा एक साथ ही अत्याचारी, मूर्ख और पागल तीनो हैं; तो आनुवशिक सरकार में आस्था रखना असम्भव हो जाता है।

एबे-सेएस (Abbe Sicyes) के लिए मुझे यह तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही है। उन्होने आनुवंशिक सरकार के विषय मे अपना मत देकर मुझे इस कष्ट से पहले ही बचा लिया है। वे कहते हैं—यदि यह पूछा जाय कि आनुवंशिक अधिकार के बारे में मेरा क्या मत है, तो निस्सकोच मैं यह उत्तर दूंगा कि किसी अधिकार अथवा पद को विरासत का स्वरूप देना, अच्छे सिद्धान्त के रूप में, वास्तविक प्रतिनिधित्व के नियमों की बराबरी नही कर सकता। इस अर्थ में, सरकार की विरासत जिस मात्रा में सिद्धान्त की कालिमा है उसी मात्रा में वह समाज के ऊपर अत्याचार भी हैं। किन्तु, यदि निर्वाचन द्वारा स्थापित सभी राजतंत्रीय सरकारो और अधिनायकतत्रीय सरकारों के इतिहास पर हम थोडा विचार करे तो क्या एक भी ऐसा उदाहरण है जहाँ निर्वाचन-पद्धति आनुवंशिक उत्तराधिकार-पद्धति की अपेक्षा अधिक बुरी नही रही है?

इस पर विवाद करना कि दो में से कौन अपेक्षाकृत अधिक त्रुटिपूर्ण पद्धति हे दोनो को त्रुटिपूर्ण मान लेना है, और इस विषय में हम सब सहमत हैं। एबे-सेएस (Abbe Sicyes) ने उन दोनो में से जिस पद्धति को श्रेष्ठता प्रदान की हैं वह वास्तव में उसकी श्रेष्ठता नही, वरन् निन्दा है। किन्तु इस विषय पर इस प्रकार का तर्क अग्राह्य है; क्योंकि यह तर्क अन्ततः दैव पर अभियोग के रूप में परिणत हो जाता है। मानो, सरकार के विषय में दैव ने मनुष्यो को उन दो बुराइयों, जिनमें से श्रेष्ठ बुराई को एबे (Abbe) ने 'सिद्धान्त की कालिमा और समाज के ऊपर अत्याचार माना है', में से एक को चुनने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नही छोड़ा है।

राजतन्त्रीय सरकार ने आज तक विश्व में जितने दुराचार किये हैं उन पर यदि विचार न किया जाय तो भी उसको आनुवंशिक सम्पत्ति बना देना, असैनिक सरकार (Civil Government) के रूप में उसकी व्यर्थता का सर्वाधिक प्रभावशाली प्रमाण है। जिस कार्य के लिए योग्यताओं और बुद्धि की आवश्यकता है, क्या हमें उसे पतृक सम्पत्ति मानना चाहिए? जिस कार्य के लिए योग्यताएँ और बुद्धि आवश्यक नहीं हैं, वह चाहे जो कुछ हो, अनावश्यक और व्यर्थ है।

आनुवंशिक उत्तराधिकार राजतन्त्र का उपहास है। इस आनुवंशिक

अधिकार ने राजतन्त्र के शीर्षस्थान पर एक शिशु अथवा मूर्ख का बैठाकर उसे अत्यन्त हास्यास्पद स्थिति मे रख दिया है। इस पद्धति के अन्तर्गत साधारण शिल्पकार में तो कुछ गुणो का होना आवश्यक माना जाता है, किन्तु राजा होने के लिए केवल मनुष्य की आकृति की, साँस लेने वाले एक प्रकार के स्व-चालित यन्त्र की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का अधविश्वास कुछ और वर्षो तक चल सकता है, किन्तु वह मनुष्य की जाग्रत बुद्धि के समक्ष अधिक समय तक टिक नही सकता।

यदि बर्क महोदय को निवृत्ति-वेतन (Pension) मिलता है और जैसा कि मेरा विश्वास है उन्हे वह मिलता है, तो केवल एक निवृत्ति-वेतन पाने वाले व्यक्ति के रूप मे नहीं, वरन् एक राजनीतिज्ञ के रूप में वे राजतन्त्र के प्रबल समर्थक हैं। मनुष्य-जाति के विषय में उनका मत अत्यन्त घृणास्पद है, और बदले में उनके प्रति लोगो का वैसा ही मत बन रहा है। उन्होने मनुष्य-समाज को जाल, प्रतिमा और प्रदर्शन आदि से शासित होने वाले जीवधारियो का समुदाय समझ रखा है। किन्तु उन्होने अमेरिका की प्रशसा की है। उन्होने सदैव इस बात को स्वीकार किया है कि इगलैण्ड अथवा यूरोप के किसी भी देश के निवासियो की अपेक्षा अमेरिका के निवासी अधिक जाग्रत हैं।

यद्यपि आनुवशिक और निर्वाचन पर आधारित राजतन्त्रीय सरकारो की तुलना, जैसी एबे (Abbe) ने की है, इस स्थल पर आवश्यक नही है, क्योकि प्रतिनिधित्व की पद्धति दोनो को अस्वीकार करती है। किन्तु यदि मैं तुलना करूँ, तो मेरा निर्णय एबे (Abbe) के निर्णय से भिन्न होगा।

आनुवशिक दावे सम्बन्धी झगडो के कारण होने वाले गृह-युद्ध सख्या में अधिक है और निर्वाचन के कारण होने वाले झगडो की अपेक्षा वह झगड़ अधिक भयानक तथा चिरस्थायी रहे हैं। फ्रास के सभी गृह-युद्ध इसी आनुवशिक पद्धति के कारण हुए। उन युद्धो का आरम्भ या तो उत्तराधिकार सम्बन्धी झगडो से हुआ या राज-प्रतिनिधि अथवा गोद के बच्चे को स्वीकार करने वाली आनुवशिक पद्धति की अपूर्णता से हुआ।

इगलैण्ड का इतिहास इस प्रकार की दुर्गतियो से भरा है। यार्क और लंकास्टर के घरानो के बीच उत्तराधिकार विषयक झगडे पूरी एक शती तक चलते रहे। इसी प्रकार के अन्य झगड़े भी उस समय से होते रहे हैं। सन्

१७१५ ई० और १७४५ ई० के झगडे इसी प्रकार के थे। स्पेन की राजगद्दी के उत्तराधिकार-विषयक झगडे ने तो आधे यूरोप को उलझा रखा था। हालैण्ड की अव्यवस्थाओ के मूल में आनुवंशिक अधिकार ही है। यदि कोई सरकार, जिसके अन्तर्गत कोई आनुवशिक पद है, अपने को स्वतन्त्र कहती है तो वह उस मांसगत कण्टक के समान है जो शरीर में ऐसी उत्तेजना उत्पन्न करता है जो उसीको निकाल फेकने का प्रयत्न करती है।

इतना ही नही, सभी प्रकार के विदेशी युद्धो के मूल में भी यही कारण कार्य करता है। राजतन्त्र के साथ आनुवशिक उत्तराधिकार के गठवन्धन द्वारा वंश-विशेष के स्थायी स्वार्थ की उत्पत्ति होती है। साम्राज्य और राजस्व (Revenue) की प्राप्ति उस सरकार का सतत उद्देश्य हो जाता है। निर्वाचन पर आधारित राजतन्त्र होते हुए भी पोलैण्ड को उन देशो की अपेक्षा कम युद्ध लडने पडे जहाँ की सरकारें आनुवशिक राजतन्त्रीय हैं। पोलैण्ड की सरकार ही एक ऐसी सरकार है, जिसने स्वेच्छा से देश की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार सरकार की प्राचीन या आनुवशिक पद्धति के कुछ दोषों पर प्रकाश डाल लेने के वाद, अव हम नवीन पद्धति अथवा प्रतिनिधि-पद्धति से उसकी तुलना करें।

प्रतिनिधि-पद्धति समाज तथा सभ्यता को अपना आधार और प्रकृति, बुद्धि एवं अनुभव को अपना पथ-प्रदर्शक मानती है।

सभी युगो में और सभी देशों में अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि मानसिक शक्तियो के वितरण में प्रकृति का नियन्त्रण करना असम्भव है। वह अपनी इच्छा से उनका वितरण करती है। किस नियम के अनुसार वह मानव-जाति में उन मानसिक शक्तियो का वितरण करती है, यह मनुष्य के लिए रहस्य ही वना रहता है। मानव-सौन्दर्य के समान ही बुद्धि को आनुवशिक बनाने का प्रयत्न हास्यास्पद है।

बुद्धि मूलत: चाहे जो हो, वह एक निर्बीज पौधे के समान है। उत्पन्न होने पर इसका पोषण किया जा सकता है, किन्तु इच्छानुसार इसे उत्पन्न नही किया जा सकता। समाज के सामान्य समुदाय में सभी प्रकार के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उपयुक्त शक्ति कही न कही सदैव वर्तमान रहती है। आज कोई शक्ति

एक स्थल पर दिखलाई देती है, तो कल दूसरे स्थल पर और बहुत सम्भव है कि यह शक्ति क्रमश विश्व के प्रत्येक कुल में जाकर लौट आयी हो।

यह प्रकृति की व्यवस्था है। अतः सरकार की व्यवस्था भी इसी प्रकार की होनी चाहिए; अन्यथा जैसा कि हम देख रहे हैं, सरकार अज्ञान में पडकर भ्रष्ट हो जायगी। इसलिए आनुवशिक-पद्धति मनुष्य की बुद्धि तथा अधिकारो के विपरीत है और साथ-ही-साथ अन्याय एव मूर्खता है।

साहित्यिक जनतत्र जिस प्रकार प्रतिभावान व्यक्ति को सुन्दर और सार्वलौकिक अवसर प्रदान करने के कारण सर्वोत्तम कृतियो का निर्माण करता है, उसी प्रकार सरकार की प्रतिनिधि-पद्धति बुद्धि को सभी सम्भव स्थलो से एकत्रित करके सर्वोत्तम नियम बनाती हैं। यदि साहित्य और सभी विज्ञान पैतृक बना दिये जाय, तो वे जिस हास्यास्पद तुच्छता को प्राप्त होगे उसका विचार करके मैं मन ही मन हँसता हूँ। सरकार के बारे में भी मेरा यही मत है। आनुवशिक लेखक जितना असगत है, उतना ही असगत है आनुवशिक शासक। मैं यह नही जानता कि होमर (Homer) या यूकलिड (Euclid) के पुत्र थे या नही; किन्तु इतना कहने का साहस करता हूँ कि यदि उन्हे पुत्र होते, और वे अपनी कृति अधूरी छोड गये होते तो वे पुत्र उन कृतियो को पूरा न कर पाते।

जीवन के किसी क्रम मे जो व्यक्ति कभी प्रसिद्ध थे उनके वशजो में आनुवशिक सरकार की मूर्खता का जो प्रमाण मिलता है, क्या उससे भी बढकर किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता हैं? क्या ऐसा भी कोई दृष्टात है जिसमें चरित्र नितात विपरीत न हो गया हो। ऐसा लगता है कि मानसिक शक्तियो की लहर किसी स्रोत मे, जहाँ तक प्रवाहित हो सकती थी वहाँ तक गयी और फिर अपना रास्ता बदलकर अन्यत्र प्रवाहित हुई। आनुवशिक-पद्धति अत्यन्त अविवेकपूर्ण हैं, क्योकि यह पद्धति शक्ति का ऐसा स्रोत स्थापित करती है जिसमें प्रवाहित होना बुद्धि को स्वीकार नही है। इस मूर्खता को बनाये रखने के कारण मनुष्य शाश्वत रूप से असगति-पूर्ण कार्य करता है। वह उस आदमी को अपना राजा, मुख्य न्यायाधीश अथवा व्यवस्थापक स्वीकार कर लेता हैं जिसे वह एक सिपाही के भी पद पर नियुक्त नही करेगा।

सामान्य रूप से यह ज्ञात होता है कि क्रान्तियाँ प्रतिभा या गुणो को उत्पन्न करती है। क्रिन्तु वास्तविकता यह है कि क्रान्तियाँ प्रतिभा और गुणो को उत्पन्न

नही करती; वरन् उन्हें प्रकाश में ला देती हैं। मनुष्य में बुद्धि की ऐसी सुप्त राशि है जो, यदि उसे कार्य करने के लिए उत्तेजित न किया गया तो, उसी शिथिल दशा मे मनुष्य के साथ मृत्यु के गर्भ में विलीन हो जायगी। समाज के हित के लिए उसकी सभी शक्तियो को कार्य में नियोजित करना चाहिए। अत. सरकार की रचना इस प्रकार की हो जिससे शान्त एवं नियमित क्रिया द्वारा वे सभी योग्यताएँ प्रकाश मे आवे जो क्रान्ति के अवसर पर अवश्यमेव प्रकट हुआ करती हैं।

आनुवंशिक सरकार की निःसत्व दशा में उपर्युक्त योग्यताओ का प्रकाशन नही हो सकता, केवल इसलिए नही कि यह उन्हे प्रकाश मे आने से रोकती है, वरन् इसलिए भी कि वह शक्तिहीन बनाने की दिशा में कार्य करती हैं। किसी राष्ट्र का मस्तिष्क जब आनुवंशिक अधिकारो के समान, सरकार विषयक किसी राजनैतिक अन्धविश्वास को स्वीकार कर लेता है, तो वह सभी अन्य विषयों और कार्यों में अपनी शक्तियो का अधिकांश खो बैठता हैं।

आनुवंशिक उत्तराधिकार के अनुसार अज्ञान और ज्ञान दोनो के प्रति एक ही प्रकार की आज्ञाकारिता आवश्यक है। जब मानव मस्तिष्क एक प्रकार का अविवेकपूर्ण सम्मान प्रकट कर सकता है तो वह मस्तिष्क की प्रतिष्ठा से नीचे खिसक आता है। फिर केवल तुच्छ बातो में ही बड़ा होने योग्य रह जाता है। वह स्वय अपने साथ विश्वासघात करता है और उन चेतनाओ का गला घोट देता है जो वास्तविकता का पता लगाने की प्रेरणा देती हैं।

यद्यपि प्राचीन सरकारें मनुष्य की स्थिति का दयनीय चित्र प्रस्तुत करती हैं, किन्तु एक ऐसी प्राचीन सरकार है जो अन्य सभी से भिन्न है। मेरा अभिप्राय है अथीनिया के प्रजातन्त्र से। इतिहास ने जो कुछ प्रस्तुत किया है, उसमें सर्वाधिक प्रशसनीय और कम निन्दनीय तत्व इसी महान असाधारण प्रजातन्त्र में दृष्टिगोचर होते हैं।

'बर्क' को सरकार के मौलिक सिद्धातो का इतना अल्प ज्ञान है कि वे प्रजातंत्र (Democracy) और प्रतिनिधित्व को एक-सा समझते हैं। प्रतिनिधित्व प्राचीन प्रजातन्त्रो को अज्ञात था। उन दिनो जनसमुदाय एकत्रित होता था और (व्याकरण के प्रथम पुरुष के रूप में) नियम बनाता था।

प्राचीन युग का सरल प्रजातन्त्र सार्वजनिक सभा के अतिरिक्त और कुछ

नही था। इससे सरकार के सामान्य सिद्धात एवं स्वरूप का बोध होता है। जब इन प्रजातन्त्रो में जनसख्या की वृद्धि हुई तथा साम्राज्य का विस्तार हुआ तो प्रजातन्त्र का सरल स्वरूप अव्यावहारिक और स्थूल सिद्ध हुआ। उस समय लोगो को प्रतिनिधित्व-पद्धति का ज्ञान नही था। परिणाम यह हुआ कि वे प्रजातन्त्रीय सरकारे या तो अपने उस स्थान से गिर कर राजतन्त्रीय सरकारें बन गयी अथवा उस समय प्रचलित अन्य सरकारो में खप गयी।

यदि उस समय लोगो को प्रतिनिधि-पद्धति का ज्ञान होता जैसा कि इस समय हमें उसका ज्ञान है, तो इस बात का विश्वास करने का कोई कारण नही है कि जिन्हे हम राजतत्रोय और कुलीनतन्त्रीय सरकारे कहते हैं, वे अस्तित्व में आ पाती। जब साम्राज्य का इतना अधिक विस्तार हो गया और जनसख्या इतनी अधिक हो गयी कि सरल प्रजातन्त्रीय सरकार प्रबन्ध करने मे असमर्थ सिद्ध हुई तो उस समय समाज के विभिन्न भागो को एक करने की पद्धति के अभाव तथा गडेरियो और चरवाहो की शिथिल एव ऐकान्तिक स्थिति ने उन अप्राकृतिक सरकार-पद्धतियो को उत्पन्न होने का अवसर प्रदान किया।

ग़लतियो के जिस कूडा-करकट मे सरकार का विषय डाल दिया गया है, उसे साफ करना आवश्यक है। इसलिए मैं अब आगे कुछ अन्य प्रकार की सरकारो की चर्चा करूँगा।

राजदरबारियो और उनकी सरकारो की राजनीति उस सरकार की निन्दा करने की रही है जो उनकी दृष्टि में जनतन्त्रीय सरकार है। किन्तु जनतन्त्रीय सरकार क्या थी अथवा क्या है, यह समझाने का उन्होने प्रयत्न नही किया। आइए, हम इस पर विचार करें।

जिसे 'जनतन्त्र' (Republic) कहा जाता है वह सरकार का प्रकार विशेष नही है। जनतन्त्र सम्पूर्णतः उस अभिप्राय, वस्तु या लक्ष्य का वैशिष्ट्य हैं जिसके लिए सरकार का निर्माण होना चाहिए और जिस पर उसे कार्य करना है। 'जनतन्त्र' अंग्रेज़ी शब्द रिपब्लिक (Republic) का पर्याय है। अंग्रेज़ी में 'रिपब्लिक' (जनतन्त्र) का अर्थ है 'लोक-कार्य' या 'लोक-हित' अथवा यदि इसका शाब्दिक अनुवाद किया जाय तो इसका अर्थ होगा 'लोक-वस्तु'।

इस शब्द का मूल सुन्दर है, क्योकि इससे यह पता चलता है कि सरकार के गुण और कार्य किस प्रकार के होने चाहिए। इस अर्थ में यह शब्द (अर्थात्, 'जन-

तंत्र') राजतंत्र से प्रकृतितः विपरीत है। राजतंत्र का अर्थ है एक व्यक्ति की निरंकुश शक्ति, जिसका उपयोग वह लोक-हित के लिए नही, वरन् 'निज-हित' के लिए करता है।

प्रत्येक सरकार—जो 'जनतंत्र' के सिद्धातो पर कार्य करती या दूसरे शब्दों में, जो 'लोक-हित' को अपना एक मात्र ध्येय नही बनाती—अच्छी सरकार नहीं है। लोक-हित के लिए (व्यक्तिगत और सामूहिक हितो के लिए) स्थापित और संचालित सरकार के अतिरिक्त जनतंत्रीय सरकार और क्या है? सरकार के स्वरूप विशेष से इसका सम्बन्धित होना आवश्यक नही है। किन्तु इसका सर्वाधिक प्राकृतिक सम्बन्ध प्रतिनिधि-पद्धति की सरकार से है; क्योकि यह सरकार उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम समझी जाती है जिसके लिए राष्ट्र इसका भार वहन करता है।

विभिन्न प्रकार की सरकारो ने जनतंत्र की पद्धति को अपनाने का प्रयत्न किया है। पोलैण्ड अपनी सरकार को, जो निर्वाचन पर आधारित राजतन्त्र के साथ-साथ आनुवंशिक कुलीन तन्त्र हैं, जनतन्त्रीय सरकार कहता है। हालैण्ड भी अपनी सरकार को जनतंत्रीय सरकार कहता है, जो मुख्यतः आनुवंशिक कुलीनतंत्रीय सरकार है।

किन्तु अमेरिका की सरकार, जो पूर्ण रूपेण प्रतिनिधि-पद्धति पर आधारित है, गुण और कार्य में वास्तविक जनतंत्रीय सरकार है। राष्ट्र के सार्वजनिक कार्य के अतिरिक्त अमेरिका की सरकार का अन्य कोई कार्य नही है, और इसलिए इसे जनतन्त्रीय सरकार कहना उचित हैं। अमेरिका वालो ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि सरकार का यही, और एक मात्र यही, उद्देश्य रहेगा। इसलिए उन्होने सरकार विषयक आनुवंशिक उत्तराधिकार की प्रथा को अस्वीकार करके केवल प्रतिनिधि पद्धति पर सरकार की स्थापना की।

जिन्होने यह कहा है कि अधिक क्षेत्रफलवाले देशों के लिए सरकार का जनतंत्रीय स्वरूप ठीक नही है। उनकी पहली भूल तो यह है कि उन्होंने सरकार के कार्य को उसका स्वरूप समझ लिया। राज्य विस्तार चाहे जो हो और जनसंख्या चाहे जितनी हो, 'लोक-हित' का अर्थ तो एक ही रहेगा। दूसरी भूल यह है कि यदि सरकार के स्वरूप से उनका कुछ अभिप्राय था, तो वह उसके प्रजातंत्रीय स्वरूप से था। प्राचीन काल में प्रतिनिधित्व-विहीन प्रजातंत्रीय-पद्धति

की सरकारें थी। इसीलिए बात यह नही है कि जनतन्त्र अधिक विस्तृत देश में स्थापित नही हो सकता। वास्तव में बात यह है कि सरल प्रजातत्रीय स्वरूप में जनतत्र अधिक विस्तृत देश के लिए अनुपयुक्त है। फिर यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि यदि कोई राष्ट्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो जाय तथा उसकी जनसख्या मे अधिक वृद्धि हो जाय, तो उस राष्ट्र के 'लोक हित' या सार्वजनिक कार्य करने के लिए किस प्रकार की सरकार सर्वोत्तम है।

ऐसी स्थिति में राजतन्त्र उपयुक्त न होगा, क्योकि सरल प्रजातन्त्रीय सरकार के विपक्ष में जो तर्क हैं वे राजतन्त्र के विपक्ष मे भी ठीक हैं।

कोई एक व्यक्ति किसी राज्य की, चाहे उसका क्षेत्रफल कुछ भी हो, सरकार की वैधानिक स्थापना के लिए सिद्धानो की पद्धति निर्धारित कर सकता है। अपनी शक्तियो के आधार पर कार्य करनेवाले मस्तिष्क की क्रिया के अतिरिक्त यह और कुछ नही है। किन्तु राष्ट्र की विभिन्न एवं बहुसख्यक परिस्थितियो तथा कृषि, व्यापार एव वाणिज्य इत्यादि के विषय में उन सिद्धांतों को क्रियान्वित करने के लिए अन्य प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है जो केवल समाज के विभिन्न भागो के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

वह ज्ञान क्या है? व्यावहारिक ज्ञान-राशि, जो किसी एक व्यक्ति की वस्तु नही हो सकती है, और इसलिए जनसख्या की वृद्धि हो जाने पर, सरकार के प्रजातन्त्रीय स्वरूप के समान राजतन्त्रीय रूप भी, ज्ञान की अपूर्णता के कारण कम लाभप्रद है। सरल प्रजातन्त्रीय सरकार क्षेत्रफल बढ जाने पर अव्यवस्थित हो जाती है और राजतन्त्रीय सरकार अज्ञान और अयोग्यता का शिकार हो जाती है। सभी बडे-बडे राजतन्त्र इस बात की सत्यता सिद्ध करते हैं। इसलिए सरकार के सरल प्रजातन्त्रीय स्वरूप का स्थान राजतन्त्रीय स्वरूप नही ले सकता, क्योकि यह भी उसीके समान असुविधाजनक है।

राजतंत्रीय सरकार आनुवशिक होने पर तो और भी अनुपयुक्त होगी। सरकार का यह स्वरूप ज्ञान का सर्वाधिक बहिष्कार करता है। प्रजातंत्रीय सिद्धातो को माननेवाला उन्नत मस्तिष्क स्वेच्छा से बच्चो, मूर्खों तथा चरित्र की उन सभी विभिन्न तुच्छताओ के द्वारा शासित होने को तैयार नही हो सकता जो मानव-बुद्धि के अपमान स्वरूप इस पाशविक प्रथा की विशिष्टता है।

सरकार के कुलीनतन्त्रीय स्वरूप में राजतन्त्र के सभी दुर्गुण और त्रुटियाँ

हैं; अन्तर केवल इतना है कि इसमें संख्या के अनुसार योग्यताओ की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक रहती है। फिर भी, उनके उचित प्रयोग और उपयोग का कोई निश्चय नही है।

अस्तु, प्रारम्भिक सरल प्रजातंत्र ही वह आधार है, जिस पर वृहद् परिमाण की सरकार निर्मित हो सकती है। प्रारम्भिक सरल प्रजातन्त्रीय सरकार, साम्राज्य के अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होने पर, सिद्धांतो के कारण नही, वरन् अपने स्वरूप के कारण अनुपयुक्त ठहरती है; और राजतंत्रीय तथा कुलीन-तन्त्रीय सरकारे उस स्थिति में अपनी ज्ञान विषयक अयोग्यता के कारण अनुपयुक्त हैं। अस्तु, प्रजातंत्र पर आधारित होकर तथा राजतंत्र एव कुलीन-तन्त्र की भ्रष्ट पद्धतियो को अस्वीकार करके, प्रतिनिधि-पद्धति पर स्थापित सरकार एक साथ ही सरल प्रजातन्त्र की स्वरूप विषयक अपूर्णताओ तथा राजतन्त्रीय एव कुलीनतन्त्रीय सरकारो की ज्ञान सम्बन्धी अक्षमताओ को दूर करने में, प्रकृतितः समर्थ है।

प्रारम्भिक सरल प्रजातन्त्र में समाज अन्य किसी माध्यम के बिना अपना शासन स्वय करता था। प्रजातन्त्र से प्रतिनिधित्व का योग करा देने पर सरकार की एक ऐसी पद्धति का जन्म होता है जो सभी विभिन्न हितो और साम्राज्य तथा जनसंख्या की किसी भी सीमा-विस्तार को सगठित करने तथा समेटने में समर्थ है।

इसी पद्धति पर अमेरिका की सरकार आधारित है। वहाँ की सरकार प्रजातंत्र के साथ प्रतिनिधि-पद्धति का योग है। इस पद्धति ने सरकार के स्वरूप को इस प्रकार के माप से स्थिर किया है कि वह सभी दशाओ में सिद्धान्त के सीमा-विस्तार के समानान्तर चलता है। एथेन्स में जो छोटे आकार का था, अमेरिका में वही वृहद् पैमाने पर होगा। पहला प्राचीन विश्व का आश्चर्य था और दूसरा वर्तमान युग का आदर्श होने जा रहा है। यह सरकार के सभी स्वरूपो में सर्वाधिक बोधगम्य एव व्यवहार-ग्राह्य है, तथा आनुवंशिक पद्धति पर आधारित सरकार की अज्ञानता और असुरक्षा एवं प्रारम्भिक सरल प्रजातन्त्र की असुविधाओं से मुक्त है।

प्रतिनिधित्व-प्रणाली द्वारा शीघ्र ही जिस प्रकार की सरकार का निर्माण होता है उसके अतिरिक्त अन्य किसी ऐसी सरकार-पद्धति को सोच निकालना

असम्भव है, जो इतने विस्तृत भू-भाग और हितो की इतनी बृहद् परिधि में कार्य कर सके। फ्रास की सरकार इस विशाल पद्धति का केवल लघु रूप है। प्रतिनिधित्व-प्रणाली पर स्थापित प्रजातन्त्र (अर्थात् जनतन्त्र) सभी सम्भव स्थितियो में अपने को तदनुकूल बना लेता है। छोटे देशो में भी यह सरल प्रजातन्त्र से श्रेष्ठ है। प्रतिनिधित्व-प्रणाली द्वारा एथेन्स स्वय अपने प्रजातन्त्र को श्रेष्ठ बना सकता था।

हम जिसे सरकार कहते हैं अथवा हमे जिसे सरकार कहना चाहिए, वह उस सामान्य केन्द्र के अतिरिक्त और कुछ नही है, जहाँ समाज के सभी भाग एक मे मिलते हैं। यह कार्य प्रतिनिधित्व-प्रणाली के अतिरिक्त अन्य किसी ऐसी प्रणाली द्वारा सम्पन्न नही हो सकता, जो समाज के विभिन्न हितो के लिए अधिक उपयोगी हो।

यह पद्धति सम्पूर्ण समाज और उसके अगो के हितो के लिए आवश्यक ज्ञान को एक केन्द्र मे लाती है। यह सरकार को निरन्तर प्रौढता की स्थिति मे रखती है। इसका शासन बच्चो या अशक्तो द्वारा नही होता। यह प्रणाली ज्ञान और शक्ति के पार्थक्य को स्वीकार नही करती। यह जनतन्त्रीय पद्धति. जैसा कि प्रत्येक सरकार को होना चाहिए, एक व्यक्ति के कारण होने वाले सभी आकस्मिक परिवर्तनो से मुक्त है। इसी नाते यह राजतन्त्र से श्रेष्ठ है।

राष्ट्र की आकृति मनुष्य की आकृति नही है। राष्ट्र एक वृत्त है जिसमे एक केन्द्र होता है, जहाँ सभी अर्द्धव्यास मिलते हैं। राष्ट्र का वह केन्द्र प्रतिनिधित्व द्वारा निर्मित होता है। जिसे हम राजतन्त्र कहते हैं उसमें यदि प्रतिनिधित्व का समावेश कर दिया जाय तो इस प्रकार जो सरकार बनेगी, वह केन्द्र-भ्रष्ट सरकार होगी। प्रतिनिधित्व स्वतः राष्ट्र द्वारा सौंपा गया राजतन्त्र है। इसलिए वह दूसरे को सहभागी बनाकर अपना अध.पतन नही कर सकता।

'बर्क' ने अपने ससदीय भाषणो एव प्रकाशित ग्रथो में, दो या तीन अवसरो पर ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिनका कोई अर्थ नही है। 'सरकार' के विषय में वे कहते हैं कि जनतन्त्र को आधार और राजतन्त्र को शोधक मानने की अपेक्षा राजतत्र को आधार और जनतन्त्र को शोधक मानना अधिक अच्छा है। यदि 'वर्क' का अभिप्राय यह है कि बुद्धि के द्वारा मूर्खता का सुधार करना, मूर्खता के द्वारा बुद्धि का सुधार करने की अपेक्षा अधिक ठीक

हैं, तो मुझे उनसे केवल इसके अतिरिक्त और कुछ नही कहना है कि क्यों न मूर्खता को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया जाए।

किन्तु 'बर्क' जिसे राजतत्र कहते हैं, वह है क्या? क्या वे समझायेंगे? प्रतिनिधित्व को सभी लोग समझ सकते हैं और यह भी समझते हैं कि इसमें विभिन्न प्रकार के ज्ञान और योग्यताओ का आवश्यक रूप से समावेश होना चाहिए। किन्तु राजतत्र में उन गुणो की कौन सी सुरक्षा है? अथवा जब एक बच्चा राजा होता है तो राजतंत्र में बुद्धि कहाँ रहती है। वह सरकार के बारे में क्या जानता है। फिर राजा कौन है? राजतंत्र कहां है? यदि राजा का काम राज प्रतिनिधि द्वारा निष्पादित होता है, तो राजतन्त्र उपहास सिद्ध होता है।

राज-प्रतिनिधि द्वारा शासन जनतन्त्रीय शासन का एक हास्यास्पद प्रकार है। स्वय राजतन्त्र इससे अधिक क्या है? राजतन्त्रीय सरकार के उतने विभिन्न स्वरूप हैं जितने स्वरूपो की कल्पना की जा सकती है। इसमें स्थिरता का कोई लक्षण नही है, जो कि सरकार में होना चाहिए। प्रत्येक नये राजा का गद्दी पर बैठना एक क्रान्ति है, और प्रत्येक राज-प्रतिनिधि का शासन प्रतिक्रान्ति है। सम्पूर्ण रूप से राजतन्त्र राजदरबार के गुटो और षड्यन्त्रो का, बर्क स्वय जिसके उदाहरण हैं, अविरल दृश्य है।

राजतन्त्र को सरकार के लिए सगत बनाने के निमित्त राजगद्दी पर बैठने वाले प्रत्येक उत्तराधिकारी को बच्चा नही, वरन जन्म से ही वयस्क होना चाहिए; और वह वयस्क भी कैसा, सालोमन (Salomon) के समान। कितनी हास्यास्पद बात है कि जब तक अवयस्क उत्तराधिकारी वयस्क नही हो जाते, तब तक राष्ट्र प्रतीक्षा करे और शासन में व्यवधान उपस्थित हो।

यह दूसरी बात ह कि मेरी समझ कम है अथवा मैं किसी के द्वारा अनुचित रूप से प्रभावित नही किया जा सकता या मुझे किसी प्रकार का कम या अधिक घमण्ड है; किन्तु इतना निश्चित है कि जिसे हम राजतन्त्र कहते हैं उसको मै मूर्खता एव घृणास्पद मानता हूँ। मै उसकी तुलना एक ऐसी वस्तु से करता हूँ जो परदे की आड में रखी हुई है और जिसके बारे में बाहर लम्बी-चौड़ी चर्चाएं हो रही हैं; किन्तु यदि किसी प्रकार से वह परदा हट जाय और लोग उसे देखें तो हँसने लगें।

सरकार की प्रतिनिधि-पद्धति में इस प्रकार की कोई बात सम्भव नहीं है।

राष्ट्र के समान ही, इस सरकार में भी शरीर और मस्तिष्क की शाश्वत आन्तरिक शक्ति रहती है। यह पद्धति विश्व के विशाल रंगमच पर सुन्दर एवं गौरवपूर्ण ढंग से अवतरित होती है। उसके गुण अथवा दोष सभी जानते रहते हैं। जाल-फरेब अथवा रहस्य के द्वारा इसका परिचालन नही होता। इसका कार्य छल-प्रपच की भाषा में नही, वरन् एक ऐसी भाषा में होता है जिसे प्रत्येक हृदय समझ सकता है।

राजतन्त्र की मूर्खता को न देखना विवेक की उपेक्षा करना अथवा बुद्धि को पतित करना है। प्रकृति अपने सभी कार्यों में व्यवस्था रखती है। किन्तु यह एक ऐसी शासन-पद्धति है, जो प्रकृति के विपरीत कार्य करती है। यह शक्तियो की प्रगति को एकदम उलट देती है। इसके अनुसार प्रौढ एव वृद्ध अनुभवी व्यक्ति बच्चो के द्वारा शासित हो सकते हैं और मूर्खता बुद्धि पर शासन कर सकती है। दूसरी ओर प्रतिनिधि-पद्धति सदैव प्रकृति के स्थिर नियमो तथा व्यवस्था के अनुरूप रहती है।

उदाहरण स्वरूप अमेरिका की सघीय सरकार को लीजिए। उसमें काग्रेस के किसी भी सदस्य की अपेक्षा, प्रेसीडेण्ट को व्यक्ति के रूप में, अधिक अधिकार प्राप्त है। पैंतीस वर्ष से कम अवस्था का व्यक्ति उस पद के लिए निर्वाचित नही हो सकता। पैंतीस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मनुष्य की विवेक शक्ति प्रौढ हो जाती है। देश के मनुष्यो तथा उनकी सभी वस्तुओ से परिचित होने का उस व्यक्ति को पर्याप्त अवसर प्राप्त हो जाता है, और देश को भी उसे पहचानने का पूर्ण समय मिलता है।

किन्तु राजतत्रीय-व्यवस्था में, एक राजा के मर जाने पर उत्तराधिकारी के रूप मे चाहे जो हो, उसे राष्ट्र और सरकार के शीर्ष-पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। क्या हम इसे बुद्धिमानी का कार्य कह सकते हैं? क्या वह किसी राष्ट्र के गौरवपूर्ण चरित्र और उचित मर्यादा के अनुकूल है। एक बच्चे को राष्ट्र-पिता कहना कहाँ तक उचित है? अन्य सभी विषयो में इक्कीस वर्ष की अवस्था तक एक व्यक्ति अवयस्क माना जाता है। इस समय के पूर्व एक एकड भूमि का भी प्रबन्ध उसके जिम्मे नही सौंपा जाता, किन्तु यह कहते हुए आश्चर्य होता है कि अठारह वर्ष की आयु में भी उसे राष्ट्र का भार सौंपा जा सका है।

चाहे किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाय, इतना स्पष्ट है और कम-से-कम

मेरे लिए तो अवश्य स्पष्ट है कि राजतन्त्र केवल पानी का बुलबुला है, अथवा धन पाने के लिए केवल दरबार की चाल है। इस छलपूर्ण पद्धति मे जितना अधिक व्यय होता है, वह जनतन्त्रीय सरकार की विवेकपूर्ण पद्धति में सम्भव नही है। जहाँ तक केवल सरकार का प्रश्न है, इस पर अधिक व्यय नही करना पडता। अमेरिका की सघीय सरकार का, जिसके विषय में कहा जा चुका है कि यह प्रतिनिधि पद्धति पर स्थापित है और इगलैण्ड की अपेक्षा लगभग दस गुने बडे देश का शासन कर रही है, व्यय केवल छः सौ हजार डालर या एक सौ तीस हजार पौंड स्टर्लिग है।

मै समझता हूँ कि कोई भी मर्यादावान व्यक्ति यूरोप के किसी राजा के चरित्र की तुलना सेनापति वाशिंगटन के चरित्र से नही कर सकता। फिर भी, फ्रांस और इंगलैण्ड में भी अमेरिका की सघीय सरकार के सम्पूर्ण व्यय का आठ गुना केवल एक व्यक्ति के लिए खर्च होता है। इसके लिए उचित कारण बताना असम्भव है। अमेरिका की सामान्य जनता, विशेषतः गरीब जनता, फ्रास तथा इगलैण्ड की सामान्य जनता की अपेक्षा कर देने में अधिक सक्षम है। किन्तु प्रतिनिधि-पद्धति राष्ट्र भर में ज्ञान का इस प्रकार विस्तार कर देती है कि जनता को छला नही जा सकता। उस स्थिति में राजदरबार की चाल काम नही कर सकती है। इस पद्धति में रहस्य को कोई स्थान नहीं है। प्रतिनिधियो के समान ही, उन प्रतिनिधियो को चुनने वाले व्यक्ति भी कार्य-प्रकृति से अवगत रहते हैं; इसलिए यदि कोई चाल है तो उसका पता सभी को लग जायगा। राष्ट्र में कोई रहस्य नही रह सकता। दूसरी ओर राजतन्त्र के रहस्य, व्यक्तिगत रहस्य के समान ही, उसके दुर्गुण हैं।

प्रतिनिधि-पद्धति में प्रत्येक कार्य का उचित कारण सभी को स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का सरकार में अधिकार है और वह सरकार विषयक जानकारी को अपने कार्य का एक आवश्यक अग मानता है। इसमें उसका स्वार्थ निहित है; क्योंकि सरकार के कार्यों का प्रभाव उसकी सम्पत्ति पर पड़ता है। वह व्यय और लाभ की तुलना करता है और सब से बड़ी बात यह है कि वह उन लोगो के, जिन्हे अन्य सरकारों में नेता कहा जाता है, अन्धानु-करण की प्रथा को स्वीकार नहीं करता।

मनुष्य की बुद्धि को बन्दी बना देने और उसमें यह विश्वास उत्पन्न करने

पर ही अधिक राजस्व (Revenue) प्राप्त किया जा सकता है कि सरकार एक विचित्र रहस्यमयी वस्तु है। राजतन्त्र के द्वारा इस लक्ष्य की पूर्ति होती है। राजतन्त्र शासन की महन्ती है।

एक स्वतन्त्र देश की सरकार यदि उचित रूप से कहा जाय तो, व्यक्तियों में नही, वरन् कानूनो में है। उन कानूनो को कार्यान्वित करने में अधिक व्यय नही होता और जब उन्हे कार्यान्वित किया जाता है तो असैनिक सरकार (Civil Government) का सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो जाता है, इसके अतिरिक्त सब कुछ राजदरबार की 'आविष्कृत योजना' है।

संविधान

यह स्पष्ट है कि जब हम 'सविधान' और 'सरकार' की चर्चा करते हैं तो हम उन्हे भिन्न और पृथक् मानते हैं। सविधान, सरकार का नही, वरन् सरकार का निर्माण करनेवाले लोगो का कार्य है और बिना सविधान के सरकार अधिकार-विहीन शक्ति है।

राष्ट्र के ऊपर प्रयुक्त अधिकारो का कोई मूल-स्रोत होना चाहिए। ये अधिकार या तो सौंपे हुए होने चाहिए अथवा मान लिये गये। इन दो साधन-स्रोतो के अतिरिक्त अधिकार के अन्य कोई मूल-स्रोत नही हैं। सौंपे हुए सभी अधिकार थाती (Trust) हैं और सभी मान लिये गये अधिकार अपहरण। समय इन दो प्रकार के अधिकारो की प्रकृति और उनके गुण को बदल नही सकता।

इस विषय पर विचार करते समय हम अमेरिका की परिस्थितियो को उसी रूप में पाते हैं जो विश्व के आरम्भ में रहा होगा; और सरकार के उद्-गम की जाँच उन्ही तथ्यो के माध्यम से शीघ्र समाप्त हो जाती है जो हमारे समय में ही प्रकट हुए हैं। सरकार के उद्गम की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें प्राचीनता के अन्ध प्रदेश में भटकने की कोई आवश्यकता नही है, और न तो अनुमान करने की ही आवश्यकता है। हम एकाएक उस बिन्दु पर पहुँचते हैं, जहाँ से सरकार आरम्भ होती दिखलायी पड़ती है, मानो हम लोग विश्व के आरम्भ में खड़े हैं। हमारे सम्मुख इतिहास की नही, वरन् किसी 'आविष्कृत

योजना' द्वारा अक्षत और परम्परा की त्रुटियो से मुक्त तथ्यों की वास्तविक पुस्तक खुली पडी है।

मैं, इस स्थल पर, अमेरिकी सविधान के प्रारम्भ की संक्षिप्त चर्चा करूँगा जिससे सरकार और सविधान का अन्तर पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाय।

पाठको को इस बात का पुनर्बोध करा देना अनुचित न होगा कि अमेरिका के 'संयुक्त राज्य' में तेरह, परस्पर-पृथक्, राज्य हैं। इन तेरह राज्यों में से प्रत्येक ने, चार जुलाई सन् १७७६ ई० की स्वातन्त्र्य घोषणा के उपरान्त स्वयं अपने लिए एक सरकार स्थापित की। प्रत्येक राज्य ने, अन्य राज्यो से स्वतन्त्र रूप में, अपनी सरकार की रचना की; किन्तु एक ही सामान्य सिद्धान्त से सभी परिचालित थे। जब कई राज्य-सरकारो की स्थापना समाप्त हुई, तब उन्होने सघीय सरकार के, जो सभी राज्यो के हित अथवा उन राज्यो के पारस्परिक व्यवहारो से सम्बन्धित विषयो या वैदेशिक राष्ट्रो से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों में उन सभी राज्यो के ऊपर कार्य करती है, निर्माण का कार्य आरम्भ किया। मैं उन राज्यो में से एक राज्य की सरकार (पेंसिलवेनिया की सरकार) का एक उदाहरण देते हुए 'सघीय सरकार' की चर्चा करूँगा।

पेंसिलवेनिया का प्रदेश, यद्यपि विस्तार में वह इगलैण्ड के ही समान है, उस समय बारह 'काउण्टियो' में विभक्त था। इंगलिश सरकार के साथ संघर्ष आरम्भ होने के पूर्व, उनमें से प्रत्येक ने एक समिति निर्वाचित की थी। फिलाडेल्फिया का नगर, जिसने भी एक समिति नियुक्त कर रखी थी, सर्वाधिक उपयुक्त सूचना-केन्द्र था। अतः कई समितियो के लिए वह पारस्परिक विचार-विनिमय का केन्द्र बन उठा। जब सरकार के निर्माण का कार्य आरम्भ करने को हुआ, तो फिलाडेल्फिया की समिति ने सभी काउण्टी-समितियों के सम्मेलन का प्रस्ताव किया। सन् १७७६ ई० के उत्तरार्द्ध में, फिलाडेल्फिया नगर में सभी समितियो का सम्मेलन हुआ।

यद्यपि इन समितियो का निर्वाचन जनता द्वारा हुआ था, किन्तु वे स्पष्ट रूप से इस कार्य के लिए नियुक्त नही हुई थी और न तो सविधान बनाने का अधिकार ही उन्हें सौंपा गया था। अमेरिका के अधिकार सम्बन्धी सिद्धांत के अनुसार, वे समितियाँ सविधान बनाने का अधिकार अपनी ही इच्छा से मान नही सकती थीं। अतः वे उस विषय पर केवल परस्पर विचार-विमर्श कर

सकती थी तथा कार्यक्रम की रूप-रेखा निर्धारित कर सकती थीं। इसलिए सम्मेलन ने केवल यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि प्रत्येक काउण्टी से छः प्रतिनिधि संविधान बनाने के अधिकार के साथ, फिलाडेल्फिया की सभा में सम्मिलित हों और संविधान बना लेने पर उसे जनता के सम्मुख विचारार्थ रखें।

इस सभा ने, बेंजमिन फ्रैंकलिन जिसके सभापति थे, पर्याप्त सोच-विचार के बाद संविधान बनाया, जिसे प्रकाशित कर के विचारार्थ जनता के सम्मुख रखा गया; और सभा की बैठक कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गयी।

स्थगन-काल के समाप्त होने पर सभा की बैठक पुनः आरम्भ हुई। उसके समर्थन में जनता का सामान्य मत ज्ञात हो चुका था, अतः उस संविधान को स्वीकार कर लिया गया। उस पर हस्ताक्षर कर के तथा उसे मुद्रांकित कर के जनता की ओर से उसकी घोषणा की गयी।

तत्पश्चात् सभा ने सरकार बनानेवाले प्रतिनिधियों के निर्वाचन की तिथि तथा सरकार की कार्यारम्भ-तिथि निर्धारित की। इस कार्य को सम्पन्न करने के बाद वह सभा भंग हो गयी और उसके सदस्य अपने-अपने घर और पेशे में लौट आये।

इस संविधान में पहले अधिकारों की घोषणा की गयी; इसके पश्चात् सरकार का स्वरूप और अधिकार निश्चित किये गये। न्यायालय तथा जूरियों के अधिकार, निर्वाचन-पद्धति, निर्वाचकों की संख्या और प्रतिनिधियों की संख्या के अनुपात, सभा का कार्य-काल, राष्ट्रीय धन के व्यय की उद्ग्रहण (Levying) एवं लेखन-पद्धति तथा सार्वजनिक अधिकारियों की नियुक्ति-पद्धति आदि का निर्णय उस संविधान में किया गया।

इस संविधान की कोई धारा इसके आधार पर निर्मित होने वाली सरकार के विवेक द्वारा न तो परिवर्तित की जा सकती थी और न उल्लंघित ही। यह संविधान उस सरकार के लिए कानून था। किन्तु अनुभव से लाभ न उठाना बुद्धिमानी नहीं है। इसलिए कि ग़लतियों की राशि संचित न हो जाय और इसलिए भी कि सरकार और प्रदेश की परिस्थितियों का साथ सर्वदा बना रहे, संविधान ने यह तय किया कि प्रत्येक सात वर्षों के बाद एक परिषद् निर्वाचित हो, जो संविधान पर पुनर्विचार करे और आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्द्धन, परिवर्तन एवं संशोधन करे।

यहाँ हम एक नियमित पद्धति का दर्शन करते हैं। हम एक ऐसी सरकार का दर्शन करते हैं जिसका निर्माण संविधान के आधार पर हुआ है तथा देश के व्यक्तियों ने, अपने मूल रूप में, जिसकी स्थापना की। इस स्थल पर हम यह भी देखते हैं कि संविधान सरकार का नियन्त्रण करनेवाला कानून है। हम कह सकते हैं कि वह सविधान प्रदेशों की राजनैतिक बाइबिल था। कदाचित् ही कोई ऐसा घर था जिसमें इसकी एक प्रति न रही हो। सरकार के प्रत्येक सदस्य के पास इसकी एक प्रति थी। जब कभी किसी विधेयक के सिद्धान्त अथवा किसी अधिकार के सीमा-विस्तार पर विवाद आरम्भ होता था, तो सभा के सदस्य तुरन्त अपनी जेब से संविधान की प्रति निकाल कर उस अध्याय को पढ़ने लगते थे जिसका सम्बन्ध विवादग्रस्त विषय से होता था।

इस प्रकार राज्यो में से एक राज्य की सरकार का उदाहरण देने के उपरान्त मैं उन सभी कार्यवाहियो का उल्लेख करूँगा जिनके द्वारा 'संयुक्त राज्य' के संघीय सविधान ने अपना स्वरूप प्राप्त किया।

सन् १७७४ ई० के सितम्बर और सन् १७७५ ई० के मई महीनों की अपनी दो बैठकों में विभिन्न प्रदेशो की, बाद में जिन्हें राज्य कहा गया, विधान-सभाओ से भेजे गये 'प्रतिनिधियों की सभा' के अतिरिक्त 'कांग्रेस' और कुछ नहीं थी; और सामान्य स्वीकृति तथा लोक-संस्था के रूप में काम करने की आवश्यकता से उत्पन्न होने वाले अधिकारों के अतिरिक्त इसके अन्य कोई अधिकार नहीं थे। 'कांग्रेस' ने अमेरिका के घरेलू कामो से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में विभिन्न प्रादेशिक सभाओ के सम्मुख केवल अपने मत प्रस्तुत किये और उन प्रादेशिक सभाओ ने अपने विवेक के अनुसार उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार किया।

'कांग्रेस' की ओर से कुछ भी ऐसा नही किया गया जो अनिवार्य हो। फिर भी इस स्थिति में यूरोप की किसी भी सरकार की अपेक्षा इसे लोगों की श्रद्धा और स्नेह-पूर्ण आज्ञाकारिता अधिक प्राप्त थी। फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' के समान ही, यह उदाहरण इस तथ्य को प्रकट करता है कि सरकार की शक्ति स्वयं इसके भीतर निहित नही है, वरन् राष्ट्र के उस अनुराग और लोकाभिरुचि में है जिसका अनुभव लोगों को सरकार का भार वहन करने में होता है। जब सरकार में इस शक्ति का अभाव होता है तो उसमें शिशु की

निर्बलता होती है और वह यद्यपि फ्रांस की प्राचीन सरकार के समान, कुछ समय तक कुछ व्यक्तियो को कष्ट पहुँचा सकती है ; किन्तु अपने पतन के मार्ग का निर्माण वह स्वय करती है।

स्वतन्त्रता की घोषणा के उपरान्त, जिस सिद्धान्त पर प्रतिनिधि-सरकार की स्थापना होती है, उसके अनुसार यह आवश्यक हो गया कि कांग्रेस के अधिकार की व्याख्या और स्थापना की जाय। प्रश्न यह नही था कि उस समय कांग्रेस ने अपने विवेक के सहारे जिस अधिकार का उपयोग किया उसके अधिकार उससे अधिक हो या कम। यह केवल कार्यवाही की सचाई थी।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सघटन-अधिनियम (Act of Confederation), जो एक प्रकार का अपूर्ण सघीय सविधान था, प्रस्तावित हुआ और पर्याप्त सोच-विचार के उपरान्त सन् १७८१ ई० में इसे स्वीकार किया गया। किन्तु यह 'कांग्रेस' का काम नही था ; क्योकि यह बात प्रतिनिधि-पद्धति पर स्थापित सरकार के सिद्धान्तो के विपरीत थी कि कोई सस्था अपने अधिकार स्वयं तय करे। 'कांग्रेस' ने, सर्व प्रथम सभी राज्यो को उन अधिकारों से अवगत कराया जिन्हे 'संघ' को सौंपना उसे इसलिए आवश्यक जंचा कि उन अधिकारो के बलपर 'सघ' उन सभी कर्तव्यो और सेवाओ को कर सके जिनकी अपेक्षा उससे की जाती है। राज्यो ने उन अधिकारो को 'कांग्रेस' में केन्द्रित करना स्वीकार कर लिया।

यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त दोनों दृष्टान्तों में प्रजा-पक्ष और राजा पक्ष के बीच समझौते जैसी कोई बात नही है। यह समझौता एक सरकार के निर्माण के निमित्त किया गया लोगो का आपसी समझौता था।

राष्ट्र की जनता से समझौता करने में सरकार का एक पक्ष है। इसे मानने का अर्थ हुआ कि हम यह मानते हैं कि सरकार उस समय अस्तित्व में आयी जिस समय अस्तित्व में आने का उसे कोई अधिकार नही था। जनता और उन लोगो में, जो शासन-कार्य करते हैं, समझौते की केवल एक बात है ; और वह यह है कि जब तक जनता यह चाहती है कि वे शासन-कार्य सम्पन्न करे तब तक वह उन्हें पारिश्रमिक देती रहे।

सरकार व्यापार नहीं है जिसे अपने हित के लिए स्थापित करने का अधिकार एक व्यक्ति अथवा मनुष्यो की किसी सस्था को है, वरन् सम्पूर्ण रूप से यह चक्र

लोगो के अधिकारों की थाती (Trust) है; जिन्होने इसे सौंपा है और जो किसी भी समय इसे वापस ले सकते हैं। सरकार के निजी अधिकार कोई नही हैं; वह केवल कर्त्तव्य करती है।

इस प्रकार संविधान की प्रारंभिक रचना के दो उदाहरण देने के बाद, मैं इस बात को स्पष्ट करूँगा कि उन दोनो में, उनकी प्रथम स्थापना के बाद से किस प्रकार के परिवर्तन हुए।

अनुभव ने बताया कि प्रादेशिक सरकारों में प्रादेशिक संविधानो द्वारा न्यस्त अधिकार आवश्यकता से अधिक हैं, और 'सघटन-अधिनियम' द्वारा 'संघीय सरकार' को दिये गये अधिकार अत्यधिक कम हैं। दोष सिद्धान्त में नही, वरन् अधिकार के वितरण में था।

'संघीय सरकार' के नवीन रूप-विधान की आवश्यकता और औचित्य को लेकर समाचार-पत्रो एवं पुस्तिकाओं में बहुत कुछ लिखा गया। पारस्परिक बातचीत अथवा प्रेस के माध्यम से की गयी सार्वजनिक चर्चा के कुछ पश्चात् वर्जीनिया की सरकार ने वाणिज्य-विषयक कुछ असुविधाओ का अनुभव करके 'महाद्वीपीय सम्मेलन' बुलाने का प्रस्ताव किया, जिसके परिणामस्वरूप सन् १७८६ ई० में पांच या छः प्रादेशिक सभाओ के प्रतिनिधि मेरीलैण्ड (Maryland) के अनापोली (Annapolis) नामक स्थान में मिले।

प्रतिनिधियो के इस सम्मेलन ने यह सोच कर कि सुधार-कार्य को करने का हमें पर्याप्त अधिकार नही है, केवल अपना यह सामान्य मत स्पष्ट कर दिया कि कार्य उचित है और उसे सम्पन्न करने के लिए अनुगामी वर्ष में सभी राज्यो की एक 'सभा' होनी चाहिए।

सन् १७८७ ई० की मई का महीना था, जब फिलाडेल्फिया में उस सभा की बैठक हुई; और सेनापति वाशिंगटन उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उस समय तक सेनापति वाशिंगटन का सम्बन्ध किसी 'प्रादेशिक सरकार' अथवा 'कांग्रेस' से नही था। युद्ध की समाप्ति के बाद वे एक साधारण नागरिक के समान रहने लग गये थे। उस सभा ने सभी विषयो पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया; विभिन्न प्रकार के विवादो और परीक्षणों के उपरान्त 'संघीय संविधान' के कई अंशों के विषय में सभी सदस्य परस्पर सहमत हुए। अब दूसरा प्रश्न यह था कि इस संविधान को अधिकार देने और उसे कार्यान्वित करने का ढंग क्या हो।

इस कार्य के लिए सभा के उन सदस्यो ने, राजदरबारियो के गुट के समान, न तो हालैण्ड से किसी को बुलाया और न जर्मनी से; वरन् उन्होने उसे सम्पूर्ण राष्ट्र की बुद्धि और अभिरुचि के ऊपर छोड दिया।

उन्होने सर्वप्रथम यह आदेश दिया कि सविधान प्रकाशित किया जाय। दूसरी बात उन्होने यह तय की कि प्रत्येक राज्य उस प्रस्तावित संविधान पर विचार करने और उसे सुधारने अथवा अस्वीकार करने के लिए स्पष्ट रूप से एक सभा निर्वाचित करे; और ज्योही किन्ही नौ राज्यो से स्वीकृति प्राप्त हो जाय, उसी क्षण से वे राज्य नवीन संघीय सरकार के लिए अपने सदस्यो की आनुपातिक सख्या चुनने का उपक्रम करे। इस कार्य के सम्पन्न हो जाने पर प्राचीन सघीय सरकार समाप्त हो जाय।

तदनुसार सभी राज्यो ने अपनी-अपनी सभा निर्वाचित की। इनमें से कुछ ने अत्यधिक बहुमत के द्वारा और दो या तीन ने सर्वसम्मति से सविधान को स्वीकार किया; अन्यो में अत्यन्त विवाद हुआ और मतभेद रहा।

मेसाच्यूसे (Massachusetts) की सभा में, जिसकी बैठक बोस्टन (Boston) में हुई थी, लगभग तीन सौ सदस्यो में बहुमत केवल उन्नीस या बीस मत से अधिक नही रहा। किन्तु निर्वाचित प्रतिनिधि-पद्धति पर आधारित सरकार की ऐसी प्रकृति है कि बहुमत को शान्तिपूर्वक स्वीकार करके सारा कार्य किया जाता है।

विवादोपरात जब वह सभा समाप्त हुई और मत लिये जा चुके तो विरोधी सदस्यो ने उठकर कहा—"यद्यपि हम लोगो ने इस सविधान के विपक्ष में तर्क प्रस्तुत किये और मत दिये, क्योकि उसके कुछ अश हम लोगो को उचित नही जँचे; किन्तु चूँकि मतदान ने प्रस्तावित सविधान के पक्ष में निर्णय दिया, अतः हम लोग इसका व्यावहारिक समर्थन उसी रूप में करेंगे जिस रूप में हम उस समय करते यदि हम उसके पक्ष में मत दिये होते।"

ज्योही नौ राज्यो ने अपनी सहमति व्यक्त की, (शेष राज्यो ने भी अपनी सभाओ के निर्वाचन के पश्चात् इसी मार्ग का अनुसरण किया) उसी समय प्राचीन 'सघीय सरकार' के स्थान पर नवीन सरकार की स्थापना हुई, और सेनापति वाशिगटन उसके सभापति हुए। इसी स्थल पर मैं यह कहे बिना नही रह सकता कि इन महाशय का चरित्र और सेवाएँ, उन सभी लोगो को, जिन्हें राजा कहा जाता है, लज्जित करने में समर्थ हैं।

वे राजा मानव-जाति के पसीने एवं परिश्रम के आधार पर इतना अधिक वेतन पाते हैं, जिसके लिए न उनमें कोई योग्यता है और न उन्होंने कोई ऐसी सेवा ही की है; दूसरी ओर, सेनापति वाशिंगटन अपनी शक्ति भर प्रत्येक प्रकार की सेवा कर रहे हैं और प्रत्येक आर्थिक पुरस्कार को अस्वीकार कर रहे हैं। प्रधान सेनापति के रूप मे उन्होने कोई वेतन स्वीकार नही किया और 'संयुक्त राज्य' के प्रेसीडेण्ट के रूप में वे कोई वेतन स्वीकार नही करते हैं।

'नवीन सघीय सविधान के निश्चित हो जाने के बाद पेंसिलवेनिया की सरकार ने यह सोच कर कि इसके सविधान के कुछ अश बदल दिये जाने चाहिए, एक सभा निर्वाचित की; प्रस्तावित परिवर्तन प्रकाशित किये गये और सार्वजनिक सहमति के बाद उन्हे स्वीकार किया गया।

इन सविधानो के निर्माण अथवा परिवर्तन में असुविधाएँ या तो अत्यधिक कम हुईं अथवा बिलकुल नही हुई। सामान्य कार्य-क्रम में कोई व्यवधान उपस्थित नही हुआ और लाभ अधिक हुआ। किसी राष्ट्र के अधिकांश लोग गलती को बने रहने देने की अपेक्षा उसे सुधार देना अधिक अच्छा समझते हैं; और जब सार्वजनिक विषयो पर खुला विवाद होता है तथा उस पर स्वतन्त्र सार्वजनिक निर्णय होता है तो, यदि वह निर्णय अत्यधिक शीघ्रता में नहीं किया गया है, वह कभी गलत नही होगा।

सांविधानिक परिवर्तन की उपर्युक्त दोनो स्थितियों में, तत्कालीन सरकारो ने किसी भी प्रकार का भाग नही लिया। सांविधानिक परिवर्तन अथवा रचना सम्बन्धी पद्धति या सिद्धांत विषयक विवादो में सरकार को भाग लेने का कोई अधिकार है भी नही।

संविधान और उनके आधार पर निर्मित सरकारो की स्थापना, सरकार के अधिकारो को क्रियान्वित करने वाले व्यक्तियो के हित के लिए नही होती है। उन सभी विषयो में, काम करने और निर्णय करने का अधिकार उन्हे रहता है जो उसके लिए वेतन देते हैं, न कि उन्हें जो वेतन पाते है।

सविधान, सरकार में भाग करने वालो का नही, वरन् एक राष्ट्र की सम्पत्ति है। अमेरिका में जनता के द्वारा ही संविधानो की स्थापना की घोषणा की गयी है। फ्रांस में 'जनता' के स्थान पर 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु दोनों स्थितियों में संविधान सरकार का पूर्वगामी और सर्वदा उससे भिन्न है।

इंगलैण्ड में, हम बड़ी सुगमतापूर्वक इसे समझ सकते हैं कि, 'राष्ट्र' को छोड़ कर शेष सभी का कुछ-न-कुछ संविधान है। प्रत्येक समाज, सभा अथवा संघ जिसकी स्थापना हो चुकी है, सर्वप्रथम कई मौलिक सिद्धातो पर सहमत हुआ है और उसने उनके अनुसार अपने-अपने स्वरूप का निर्माण किया है; यही उसका संविधान है। तत्पश्चात् उसने अपने कर्मचारियो की, जिनके अधिकारो का उल्लेख उसके सविधान में किया गया है, नियुक्ति की और फिर सभा, समाज अथवा सघ का कार्य आरम्भ हुआ। उन पदाधिकारियो को चाहे जो नाम दिया जाय, सविधान के मौलिक सिद्धात में वृद्धि करने, घटाने या परिवर्तन करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है, केवल वे ही लोग ऐसा कर सकते हैं जिन्होंने उस समाज, सभा अथवा सघ की रचना की है।

प्रतिनिधि पद्धति पर निर्मित सरकार
(Government by Representation)
और
पूर्व दृष्टांत पर आधारित सरकार
(Government by Precedent)

शक्ति की पाशविक प्रवृत्ति को नियन्त्रित और नियमित करने वाले सविधान के अभाव के कारण, इगलैण्ड में कई कानून अविवेकपूर्ण एवं अत्याचारात्मक है और उनका प्रशासन अनिश्चित तथा शंकास्पद है।

जर्मनी के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित होने के समय से ऐसा प्रतीत होता है कि इगलैण्ड की सरकार का, जिसे 'इगलिश सरकार' कहना मैं अपेक्षाकृत कम पसन्द करता हूँ, ध्यान वैदेशिक कार्यो और कर-वृद्धि के साधनो में इस प्रकार पूर्णतः तल्लीन है कि मानों इस सरकार का और कोई काम नही है। घरेलू कार्यों की उपेक्षा की जाती है, और वहाँ नियमित कानून जैसी कोई चीज कदाचित् ही है।

प्रायः प्रत्येक विषय को इस समय 'पूर्व दृष्टात' (Precedent) के बल पर निश्चित करना चाहिए, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, अथवा वह अनुकूल हो या प्रतिकूल,

इस प्रकार का अभ्यास इतना सामान्य हो गया है कि उसके कारण यह संदेह होने लगा है कि इसके मूल में अत्यधिक गहरी राजनीति काम कर रही है।

अमेरिका की क्रांति और विशेषकर फ्रांस की क्रांति के बाद से पूर्वगामी परिस्थितियो और समय द्वारा प्राप्त, इस 'पूर्व दृष्टांत सम्बन्धी सिद्धात' का उपदेश इंगलैण्ड में पूर्वनिश्चित व्यवहार हो गया है। सामान्यतया वे 'पूर्व दृष्टांत' जिन सिद्धांतों और मतो पर आधारित है ठीक उनके विपरीत सिद्धान्तो और मतों पर उन्हे आधारित होना चाहिए था, और जितने अधिक कालान्तर से उन दृष्टातो को लिया जायगा, उनके विषय में उतना ही अधिक सन्देह होगा।

किन्तु उन दृष्टातो और प्राचीन राजाओ के प्रति अंधविश्वासपूर्ण सम्मान का योग करके—जैसा कि महन्त, शव या 'अवशेष' (Relics) का प्रदर्शन करते हैं और उन्हे पवित्र कहते हैं—मनुष्यो को छला जाता है। सरकारें इस समय इस प्रकार कार्य कर रही हैं कि मानो वे मनुष्य में एक भी विचार जाग्रत करने से डरती हैं। वे मनुष्य की शक्तियो को नष्ट करने और क्रान्ति के दृश्यो से उसका ध्यान हटाने के निमित्त, चुपचाप पूर्व दृष्टान्तो की कब्र की ओर उसे लिये जा रही हैं।

वे सरकारे इस बात को समझती हैं कि मनुष्य, जितना वे चाहती हैं उसकी अपेक्षा अधिक—क्षिप्रता के साथ ज्ञान तक पहुँच रहा है, और उनकी पूर्व दृष्टात वाली नीति उनके डरो का मापदण्ड है। प्राचीन समय की धार्मिक महन्ती के समान इस राजनैतिक महन्ती का भी एक समय था, और अब यह अपने विनाश की ओर द्रुतगति से जा रही है। जीर्ण 'अवशेष' और प्राचीन दृष्टान्त, महन्त और सम्राट, सभी साथ-साथ नष्ट होगे।

पूर्व दृष्टात पर स्थापित सरकार सर्वाधिक अधम शासन-पद्धतियो में से एक है। कई स्थितियों में पूर्व दृष्टान्त को चेतावनी के रूप में कार्य करना चाहिए, न कि उदाहरण के रूप में; और उनकी उपेक्षा करनी चाहिए, न कि उनका अनुकरण। किन्तु इसके स्थान पर होता यह है कि उन दृष्टान्तों की राशि को संविधान और कानून के लिए स्वीकार कर लिया जाता है।

पूर्व दृष्टांत का यह सिद्धांत या तो मनुष्य को अज्ञान की स्थिति में रखने की नीति है अथवा यह इस तथ्य की व्यावहारिक स्वीकृति है कि जिस मात्रा में सरकार की उम्र अधिक होती जाती है, उसी अनुपात में उसकी बुद्धि का

क्षय होता जाता है और वह केवल पूर्व दृष्टान्तो के आधार पर चल सकती है, जिस प्रकार लगडे बैसाखी आदि का सहारा लेकर चलते हैं।

यह बात समझ में नही आती कि जिन्हे गर्वपूर्वक उनके पूर्वजों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान कहा जाता है, वे ही व्यक्ति मृतको की बुद्धि की छाया मात्र प्रतीत होते हैं। प्राचीनता को कितने निराले ढग से प्रस्तुत किया जाता है! अपने अभिप्रायो के अनुसार, प्राचीनता के विषय में कभी कहा जाता है कि वह अन्धकार और अज्ञानता का युग था और कभी कहा जाता है कि विश्व को इससे प्रकाश मिलता है।

यदि पूर्व दृष्टान्त के सिद्धान्त का अनुसरण करना है तो सरकार का खर्च वही नही रहना चाहिए। जिनको कुछ काम नही करना है, उन्हें अधिक वेतन देने की क्या आवश्यकता है? यदि सब कुछ पूर्व दृष्टान्त के आधार पर ही होना है, तो विधान की आवश्यकता समाप्त हो गयी, और शब्दकोष के समान 'दृष्टान्त' प्रत्येक विषय को निश्चित कर देगा। अस्तु, या तो सरकार अपनी वृद्धावस्था की निर्बलता को प्राप्त हो चुकी है और उसे पुनर्नवीन करने की आवश्यकता है, अथवा इसकी बुद्धि का उपयोग करने के सभी अवसर बीत चुके हैं।

इस समय हम देखते हैं कि यूरोप भर मे, विशेषतः, इगलैण्ड में राष्ट्र एक दिशा में देख रहा है और सरकार दूसरी दिशा में देख रही है; एक आगे की ओर और दूसरा पीछे की ओर। यदि सरकार को पूर्व दृष्टान्तो के आधार पर चलना है, जब कि राष्ट्र प्रगति पर चल रहा है, तो एक-न-एक दिन उन दोनों का अन्तिम विच्छेद होकर रहेगा, जितनी शीघ्रता एव सभ्यता के साथ वे दोनों इस विषय को तय कर लें उनके लिए वह उतना ही अच्छा होगा।[1]

१ इंगलैण्ड में कृषि, उपयोगी कलाओं, उत्पादन और वाणिज्य आदि की उन्नति सरकार की पूर्व दृष्टांतों का अनुसरण करनेवाली बुद्धि के विपरीत हुई है। इस उन्नति का कारण है व्यक्तियों तथा अनेक संस्थाओं का—जिसमें सरकार का कोई योग अथवा सहारा नहीं है—साहस और उद्योग।

योजना बनाते समय अथवा उसके अनुसार कार्य करते समय किसी व्यक्ति ने सरकार के विषय में कुछ भी नहीं सोचा। वह सरकार से केवल यही आशा करता था कि वह उसे काम करने देगी। दो या तीन मंत्रियों के समर्थक समाचारपत्र लगातार इस राष्ट्रीय उन्नति के भाव को यह कहकर क्षति पहुँचा रहे थे कि यह उन्नति वास्तव में एक मन्त्री के कारण हो रही है। वे समाचारपत्र इस मेरी पुस्तक का श्रेय भी उसी मन्त्री को दे सकते हैं।

यह स्पष्ट हो जाने के बाद कि संविधान सरकार से भिन्न है, अब हम संविधान के भागो पर विचार करें।

भागो के विषय में सम्पूर्ण की अपेक्षा मत-वैभिन्य अधिक होता है। सरकार के सचालन के निमित्त एक राष्ट्र को सविधान की आवश्यकता है। यह एक ऐसी सरल बात है जिसे सभी व्यक्ति, जो प्रत्यक्ष रूप से राजदरबारी नही है, स्वीकार करेंगे। किन्तु उस सविधान के विभिन्न भागों के विषय में नाना प्रकार के मत और प्रश्न उठते हैं।

किन्तु यदि इस विषय की चर्चा को ऐसे क्रम से रखा जाय कि उसे भलीभाँति समझा जा सके तो हमारी कठिनाई कम हो जायगी।

पहली बात यह है कि एक राष्ट्र को सविधान बनाने का अधिकार है।

दूसरी बात यह है कि राष्ट्र अपने इस अधिकार का प्रयोग पहली बार न्यायपूर्ण ढग से करता है या नही। इतना सत्य है कि राष्ट्र के पास जो न्याय-बुद्धि है उसीके अनुसार वह अपने अधिकार का प्रयोग करता है, और ऐसा ही निरन्तर करते रहने से भूले दूर की जा सकेंगी।

जब राष्ट्र में इस अधिकार को स्थापित किया जाता है, तब यह डर नहीं है कि वह अपनी क्षति के लिए इसका प्रयोग करेगा। राष्ट्र यह कभी नहीं चाहेगा कि वह गलती करे।

यद्यपि अमेरिका के सभी सविधान एक ही सामान्य सिद्धांत पर आधारित हैं, किन्तु जहाँ तक उनके विभिन्न भागो का अथवा सरकार को दिये गये अधिकारो के वितरण का प्रश्न है, कोई दो राज्यो के संविधानो में नितान्त अभिन्नता नही है। कुछ अधिक और कुछ कम जटिल हैं।

संविधान बनाते समय सर्वप्रथम यह विचार करना आवश्यक है कि किन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार की आवश्यकता पड़ती है। तत्पश्चात, यह सोचना चाहिए कि उन लक्ष्यों की प्राप्ति के सर्वोत्तम और सब से कम व्यय वाले साधन कौन-से हैं।

'राष्ट्रीय संस्था' के अतिरिक्त सरकार और कुछ नही है, और इस संस्था का लक्ष्य है सार्वजनिक हित—व्यक्तिगत और सामूहिक हित। प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा रहती है कि वह अपना काम करे तथा अपने परिश्रम और सम्पत्ति का भोग सुख, शान्ति एवं सुरक्षापूर्वक कम-से-कम व्यय पर कर सके। यदि

सरकार से व्यक्ति की इस इच्छा की पूर्ति हो जाती है तो उन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाती है, जिनके लिए सरकार की स्थापना होनी चाहिए।

तीन भिन्न-भिन्न भागो में बाँटकर सरकार के विषय में विचार करने की प्रथा—जैसी बन चली है—वे हैं विधान-विभाग, कार्यपालिका-विभाग और न्याय-विभाग।

किन्तु यदि ठीक ढंग से देखा जाय तो वास्तव में असैनिक सरकार (Civil Government) की शक्ति को केवल दो विभागो में बाँट सकते हैं : विधायिनी-शक्ति अथवा कानून बनाने की शक्ति, और दूसरी कार्यपालिका-शक्ति अर्थात् उन कानूनो को कार्यान्वित करने वाली शक्ति। इसलिए असैनिक सरकार का प्रत्येक कार्य इन दो में से किसी एक प्रकार में रखा जा सकता है।

जहाँ तक कानूनो को कार्यान्वित करने का प्रश्न है, जिसे हम न्यायिक शक्ति (Judicial Power) कहते हैं, वास्तव में वही प्रत्येक देश की कार्यपालिका-शक्ति है। यह वह शक्ति है जिससे प्रत्येक व्यक्ति न्याय की प्रार्थना करता है और जिसके कारण कानून का पालन होता है। इंगलैण्ड में, अमेरिका तथा फ्रास में भी, यह शक्ति मजिस्ट्रेट से आरम्भ होकर क्रमशः सभी उच्च न्यायालयो के माध्यम से कार्य करती है।

मैं दरबारियो से यह कहूँगा कि वे यह समझावे कि राजतंत्र को कार्यपालिका-शक्ति (Executive Power) कहने का तात्पर्य क्या है। वास्तव में कार्यपालिका-शक्ति केवल एक सज्ञा है जिसके अन्तर्गत सरकार के कार्य निष्पादित होते हैं।

अपने सिद्धान्तो के औचित्य और राष्ट्र की उस अभिरुचि के—जो उनके प्रति होती है—द्वारा ही कानूनो को बल प्राप्त करना चाहिए। यदि इसके अतिरिक्त उन्हे अन्य किसी प्रकार से अधिकार प्राप्त करना पडा, तो इसका अर्थ होगा कि सरकार की पद्धति में कही अपूर्णता है। जिन कानूनो को कार्यान्वित करना कठिन होता है, वे सामान्य रूप से अच्छे नही हो सकते।

जहाँ तक विधायिनी शक्ति (Legislative power) के प्रबन्ध की बात है, भिन्न-भिन्न देशो में भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं। अमेरिका में इसे दो सदनो में विभक्त किया गया है। फ्रास में केवल एक सदन है। किन्तु दोनों देशो में निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा ही इन सदनो का निर्माण होता है।

बात यह है कि स्वेच्छापूर्वक माने गये अधिकार के चिरकालीन अत्याचार के कारण मानव-जाति को सरकार के सर्वोत्तम सिद्धांतो और पद्धतियों को खोज निकालने के लिए आवश्यक परीक्षण करने के अवसर इतने कम प्राप्त हो सके है कि सरकार विषयक जानकारी अभी आरम्भ हो रही है, और बहुत-सी बातो को तय करने के लिए अभी अनुभव की आवश्यकता है।

दो सदनों के विरोध में निम्नाकिन तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं।

(१) विधान-मण्डल के केवल एक भाग का मतदान द्वारा किसी विषय का निर्णय करना असंगत है; क्योंकि सम्पूर्ण विधान-मण्डल की दृष्टि से वह विषय उस समय केवल विचाराधीन रहता है और बाद में उसकी नवीन व्याख्याएँ हो सकती हैं।

(२) विधान-मण्डल के प्रत्येक सदन में स्वतंत्र रूप से मतदान द्वारा निर्णय करने में इस बात की संभावना रहती है, और अभ्यास में प्राय: यही होता भी है कि अल्पमत बहुमत पर शासन कर बैठे। कभी-कभी तो यह असंगति अधिक हो जाती है।

(३) दोनों सदनों का स्वेच्छापूर्वक एक दूसरे पर अंकुश रखना अथवा उसका नियन्त्रण रखना असंगत है; क्योकि उचित निर्वाचन के सिद्धांत के आधार पर यह सिद्ध नही किया जा सकता कि उन दोनों में से कौन दूसरे की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान अथवा अच्छा है। वे एक दूसरे को बुरे कामों में ही नहीं, अच्छे कामों में भी रोक सकते हैं। इसलिए हम जिन्हें अधिकार का उचित उपयोग करने की बुद्धि नही प्रदान कर सकते अथवा जिनके प्रति हमें यह विश्वास नहीं है कि वे अधिकारो का उचित प्रयोग करेंगे, उन्हें अधिकार देने से जो संकट उत्पन्न होता है हमें उसके प्रति सतर्क रहना चाहिए।

एक सदन के विरोध में यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यह किसी निर्णय में अत्यधिक शीघ्रता कर सकता है। किन्तु इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि जब उस देश का संविधान उन अधिकारो की व्याख्या तथा उन सिद्धांतो की स्थापना कर देता है जिनके आधार पर विधान-मण्डल को कार्य करना है, तो इस दिशा में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली निग्रह वर्तमान है। एक उदाहरण लीजिए; इंगलैण्ड में जार्ज प्रथम के राज्य काल के आरम्भ में सभाओं की कार्य-अवधि को बढाने के विषय में इंगलैण्ड की संसद् ने एक क़ानून स्वीकार किया। यदि उसी प्रकार का कोई विधेयक अमेरिका के विधान-मण्डल में

प्रस्तुत किया जाय तो उसके विषय में सांविधानिक निग्रह प्रस्तुत है ; संविधान में यह उल्लिखित है —'आप यहाँ तक जा सकते हैं, इसके आगे नही।'

किन्तु एक सदन के विरोध में दिये गये तर्क और साथ-ही-साथ दो सदनों के कारण उत्पन्न होनेवाली असगतियो अथवा कुछ मूर्खताओ का निवारण करने के निमित्त निम्नाकित पद्धतियो को प्रस्तावित किया गया है :—

(१) प्रतिनिधित्व केवल एक हो।

(२) उस प्रतिनिधित्व को चिट्ठी द्वारा दो या तीन भागो में बाँट दिया जाय।

(३) प्रत्येक प्रस्तावित विधेयक पर क्रमशः उन सभी भागो में चर्चा हो, जिससे वे सभी एक दूसरे को सुन सकें ; किन्तु मतदान न हो। तदुपरात सभी प्रतिनिधि एकत्र होकर सामान्य चर्चा करें और मतदान द्वारा किसी निर्णय पर पहुँचे।

इस प्रस्तावित सुधार के साथ एक अन्य सुझाव इसलिए प्रस्तावित किया गया है कि प्रतिनिधित्व निरन्तर नवीन होता रहे और वह यह है कि एक वर्ष के बाद एक तिहाई प्रतिनिधियो का कार्य-काल समाप्त कर दिया जाय और नये निर्वाचन द्वारा नये प्रतिनिधियो का चुनाव हो।

दूसरे वर्ष के बाद प्रतिनिधियो के दूसरे तृतीयाश का कार्य-काल समाप्त कर दिया जाय और उनके स्थान की पूर्ति पूर्ववत् हो। प्रत्येक तीसरे वर्ष सामान्य निर्वाचन हो।

किन्तु सविधान के विभिन्न भाग चाहे जिस रूप में व्यवस्थित किये जायं, दासता से स्वतन्त्रता की भिन्नता प्रकट करने के लिए एक सामान्य सिद्धात है ; वह यह है कि सब प्रकार की आनुवशिक सरकारें मानव-जाति के लिए दासता हैं, और प्रतिनिधित्व पर आधारित सरकार स्वतन्त्रता है।

अमेरिका में केवल राष्ट्रपति का पद ही एक ऐसा पद है जो किसी भी विदेशी के लिए वर्जित है; और इगलैण्ड में यही एक पद है जिस पर एक विदेशी नियुक्त किया जाता है। इगलैण्ड में एक विदेशी संसद् का सदस्य नही हो सकता, किन्तु वह राजा हो सकता है। यदि विदेशियो का वर्जन करने के लिए कोई कारण है, तो उनका वर्जन केवल उन पदो के विषय में होना चाहिए जहाँ सर्वाधिक शरारतें की जा सकती हैं और जहाँ, अनुराग और स्वार्थ के प्रत्येक प्रोत्साहन द्वारा सर्वाधिक विश्वास प्राप्त किया जाता है।

किन्तु राष्ट्र, संविधान बनाने के महान कार्य में अग्रसर हो रहे हैं, अतः वे सरकार के उस विभाग की, जिसे कार्यपालिका-विभाग (executive) कहा जाता है, प्रकृति एवं कार्य पर अपेक्षाकृत अधिक यथार्थता के साथ विचार करेंगे। विधान-विभाग और न्यायिक-विभाग क्या है, इसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है; किन्तु इन दोनों से भिन्न, इंगलैण्ड में जिसे कार्यपालिका-विभाग (executive) कहा जाता है वह या तो राजनैतिक आधिक्य है अथवा अज्ञात वस्तुओं का गोलमाल है। केवल एक ऐसे प्रशासकीय विभाग की आवश्यकता है जिसके पास राष्ट्र के विभिन्न भागों से अथवा विदेशों से सूचनाएँ या प्रतिवेदन राष्ट्रीय प्रतिनिधियो के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए भेजे जायं। किन्तु इस विभाग को कार्यपालिका-विभाग कहना सगत नही; और हम इसे विधान-मण्डल की अपेक्षा सर्वदा कम महत्व का मानेंगे। कानून बनाने का अधिकार किसी देश का सब से बड़ा अधिकार है: इसलिए विधान-मण्डल के अतिरिक्त सभी कुछ प्रशासकीय विभाग हैं।

सविधान के विभिन्न भागो के सघटन और सिद्धांतो की व्यवस्था के बाद उन व्यक्तियो की व्यवस्था का महत्व है, जिन्हे राष्ट्र सांविधानिक अधिकारों के निष्पादन का कार्य सौंपता है।

एक राष्ट्र यदि किसी व्यक्ति को किसी विभाग में नियुक्त करता है अथवा कोई विभाग उसे सौंपता है, तो राष्ट्र को उस व्यक्ति के समय और उसकी सेवाओ को उसीके व्यय पर स्वीकार करने का अधिकार नहीं है; और यह बात भी तर्कसम्मत नही है कि सरकार के किसी भाग की सहायता के लिए व्यवस्था की जाय और अन्य के लिए न की जाय।

माना कि सरकार के किसी विभाग के सौंपे जाने का सम्मान स्वयं ही पर्याप्त पुरस्कार है, किन्तु यही बात प्रत्येक व्यक्ति के विषय में होनी चाहिए। यदि किसी देश के विधान-मण्डल के सदस्यो को अपने व्यय पर राष्ट्र की सेवा करनी है, तो जिसे कार्यपालिका-विभाग कहते हैं, चाहे वह राजतन्त्रीय हो अथवा अन्य प्रकार का, उसे भी उसी रूप में राष्ट्र की सेवा करनी चाहिए। एक को वेतन देना और दूसरे से अवैतनिक सेवा स्वीकार करना असंगत है।

अमेरिका में सरकार के प्रत्येक विभाग को समुचित वेतन दिया जाता है, किन्तु किसी को अनावश्यक वेतन नही दिया जाता है। दूसरी ओर, इंगलैण्ड में

सरकार के एक विभाग के निर्वाह के लिए सर्वाधिक अनावश्यक व्यवस्था की जाती है और दूसरे भाग के लिए कोई व्यवस्था नहीं है ; परिणाम यह है कि एक के पास भ्रष्टाचार का साधन प्रस्तुत हो जाता है और दूसरा भ्रष्ट होने की स्थिति में रख दिया जाता है। जैसी व्यवस्था अमेरिका में है, यदि वैसी ही व्यवस्था इगलैण्ड में हो जाय तो वहाँ जो व्यय होता है उसके चौथाई से भी कम खर्च पर भ्रष्टाचार के बहुलाश का उपचार किया जा सकता है।

अमेरिकी सविधान में दूसरा सुधार-कार्य है व्यक्तित्व-निष्ठा-शपथ को कुत्सित समझना। राज्य-निष्ठा-शपथ (Oath of allegiance) केवल राष्ट्र के प्रति होनी चाहिए। एक व्यक्ति को राष्ट्र के प्रतीक-रूप में मानना अनुचित है। राष्ट्र का सुख सर्वोपरि है। अत. किसी व्यक्ति के नाम पर अथवा प्रतीकात्मक पद्धति से राज्य-निष्ठा-शपथ लेकर उसे गूढ नहीं बनाना चाहिए। फ्रास में प्रचलित नागरिक शपथ, ' राष्ट्र, कानून और राजा ' के नाम पर ली जाती है। यह शपथ अनुचित है। यदि शपथ लेना आवश्यक है तो, जैसा कि अमेरिका में होता है, केवल राष्ट्र के प्रति शपथ ग्रहण करने की प्रथा होनी चाहिए।

कानून अच्छे हो सकते हैं और नही भी हो सकते हैं। किन्तु इस शपथ के अवसर पर, राष्ट्र के सुख को बढाने में सहायक होने के अतिरिक्त क़ानून का और कोई अर्थ नही हो सकता और इसलिए ' राष्ट्र ' शब्द में ' कानून ' का अर्थ निहित है। उपर्युक्त शपथ का शेष अश इसलिए अनुचित है कि सभी प्रकार की व्यक्ति-निष्ठा शपथो की प्रथा समाप्त कर देनी चाहिए। ऐसी शपथें, एक ओर तो अत्याचार के अवशेष हैं और दूसरी ओर दासता हैं। शपथ के समय अपनी सृष्टि का पतन देखने के लिए 'सृष्टिकर्त्ता' के नाम का उल्लेख नही होना चाहिए। किन्तु यदि उसका नाम, जैसा कि कहा जा चुका है, राष्ट्र के प्रतीक स्वरूप लिया जाता है तो वह इस अवसर पर आवश्यकता से अधिक है।

किन्तु सरकार की प्रथम स्थापना के अवसर पर शपथ-ग्रहण के लिए चाहे जो क्षमा-प्रार्थना की जाय, किन्तु बाद मे यह प्रथा समाप्त होनी चाहिए। यदि सरकार को शपथ का बल चाहिए तो यह इस बात का प्रमाण है कि वह सरकार संभालने योग्य नही है, और न उसे सभालना चाहिए। सरकार को

जो होना चाहिए, यदि उसे वही बना दीजिए, तो वह अपना भार स्वयं संभाल लेगी।

विषय के इस पक्ष की चर्चा को समाप्त करते हुए मैं यह कहूँगा कि नये सविधान ने पुनर्विचार, परिवर्तन और सशोधन की जो व्यवस्था स्वीकार की है, वह सांविधानिक स्वतन्त्रता की निरन्तर सुरक्षा और प्रगति के लिए किये गये सर्वाधिक सुधारों में से एक है।

भावी पीढ़ियो को सृष्टि के अन्त पर्यन्त नियन्त्रित रखने तथा उनके अधिकारों से उन्हें सर्वदा के लिए वचित करने की मान्यता को जो, 'बर्क' के राजनीतिक मत का आधार-सिद्धान्त है, इस समय इतना घृणास्पद माना जाता है कि उसे विवाद का विषय बनाना उचित नही है।

सरकार-विषयक जानकारी अभी आरम्भ हो रही है। अब तक शक्ति का प्रयोग मात्र होने के कारण सरकार ने अधिकारों की सफल जाँच का निषेध किया और वह पूर्णतः सम्मति के रूप में रही है। जब तक स्वतंत्रता का शत्रु ही उसका निश्चय करने वाला था, तब तक सरकार के सिद्धान्तो की उन्नति वास्तव में कम हुई होगी।

अमेरिका और फ्रांस के सविधानों ने या तो पुनर्विचार के लिए एक समय निश्चित कर दिया है अथवा सुधार विषयक पद्धति का निर्णय कर दिया है।

सिद्धान्तो का, मतों और व्यवहारों से सम्बन्ध स्थापित करने की कोई ऐसी व्यवस्था करना कदाचित् असम्भव है जिसमें कई वर्षों के बाद परिस्थितियो की प्रगति कुछ अंशो में व्यतिक्रम न उत्पन्न कर दे अथवा उसे असंगत न सिद्ध कर दे। इसलिए सुधारों को हतोत्साहित करने या क्रान्तियो को उत्तेजना प्रदान करने वाली असुविधाओ को राशिगत होने से रोकने के लिए सबसे अच्छा मार्ग यही है कि जैसे ही कोई असुविधा दिखलाई पड़े वैसे ही उसका नियमन कर दिया जाय।

मनुष्य के अधिकार सभी पीढ़ियो के मनुष्य के अधिकार हैं, उन पर किसी का एकाधिपत्य नहीं हो सकता। जो अनुसरणीय है वह योग्यता के बल पर अनुसरणीय बना रहेगा; और इसीमें उसकी सुरक्षा निहित है, न कि किसा शर्त में। जब एक व्यक्ति अपने उत्तराधिकारियों के लिए अपनी सम्पत्ति

छोड़ता है तो उसे स्वीकार करने के लिए कोई बन्ध[illegible] फिर सविधानो के विषय में हम अन्यथा व्यवहार क्यो करें ?

वर्तमान समय की स्थिति के अनुकूल, सविधान की जो सर्वोत्तम योजना सम्भव है, कुछ वर्षों के बाद उसकी उत्तमता बहुत कुछ कम हो सकती है। सरकार के विषय में मनुष्य को नित नवीन ज्ञान प्राप्त हो रहा है। वर्तमान प्राचीन पद्धति की सरकारो की अशिष्टता ज्योही समाप्त होगी, उसी क्षण राष्ट्रो की पारस्परिक नैतिक स्थिति बदल जायगी।

मनुष्य को ऐसी अशिष्ट शिक्षा नही दी जायगी कि वह अपनी जाति के अन्य प्राणियो को शत्रु समझे, केवल इसलिए कि संयोगवश उन्होने एक ऐसे देश में जन्म लिया है, जहाँ मनुष्यो को भिन्न भिन्न वर्गों के अन्तर्गत रखा जाता है। चूँकि सविधान का सम्बन्ध वैदेशिक और घरेलू परिस्थितियो से रहेगा, इसलिए वैदेशिक अथवा घरेलू किसी भी परिवर्तन के अनुकूल व्यवस्था करना सविधान का महत्वपूर्ण अग है।

हम इंगलैण्ड और फ्रास की पारस्परिक राष्ट्रीय प्रकृति में परिवर्तन देख रहे हैं जो कि यदि अतीत के कुछ वर्षों पर विचार करें तो स्वय एक क्रान्ति है। कौन जानता था या विश्वास कर सकता था कि फ्रांस की राष्ट्रीय सभा का इगलैण्ड में सार्वजनिक समर्थन होगा अथवा दोनों राष्ट्र परस्पर मैत्री-सम्बन्ध के इच्छुक होंगे।

इससे प्रकट होता है कि मनुष्य को यदि सरकारो द्वारा भ्रष्ट नही किया जाय तो वह प्रकृतितः मनुष्य का मित्र है और उसकी प्रकृति अपने वास्तविक रूप में बुरी नही है। ईर्ष्या और क्रूरता की जिस भावना को, उन दोनो देशो की सरकारो ने उत्तेजित किया और कर-निर्धारण के लिए उपयोगी बनाया, वह इस समय बुद्धि, हित और मानवता के आदेशो को स्वीकार कर रही है।

राजदरबारो की चाले अब सबकी समझ में आने लग गयी हैं और रहस्याडम्बर तथा प्रदर्शनो का वह इन्द्रजाल, इस समय अपनी विनाशावस्था में है। उसे प्राणघातक प्रहार मिल चुका है, और यद्यपि इसके अन्त में अभी कुछ विलम्ब है, किन्तु इसका अत निश्चित है।

मनुष्य की सभी वस्तुओ के समान ही, सरकार को भी सर्वदा सुधार का विषय होना चाहिए। किन्तु युगो से इस पर मानव-जाति में सर्वाधिक अज्ञानी

और दुष्ट मनुष्यों का एकाधिपत्य रहा है। उनके कुप्रबन्ध का प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि प्रत्येक राष्ट्र ऋण तथा करों के भार से कराह रहा है और सारा विश्व बडी तीव्र गति से झगडों में डाल दिया गया है।

सरकारें अभी-अभी इस निकृष्ट स्थिति से बाहर निकल रही हैं, इसलिए सरकार-विषयक सुधार किस सीमा तक जा सकता है, यह निश्चित करने का अभी अवसर नहीं है।

सरकार के मूल तत्वों की विवेचना

मनुष्य के लिए 'सरकार' की चर्चा सर्वाधिक मनोरंजक है। मनुष्य चाहे धनी हो या निर्धन, उसकी सुरक्षा और अधिकांश अशो मे उसकी उन्नति का सम्बन्ध सरकार से है। इसलिए सरकार-विषयक सिद्धान्तो से अवगत होना तथा यह जान लेना कि उन सिद्धान्तो का प्रयोग किस प्रकार होना चाहिए, मनुष्य का स्वार्थ और कर्तव्य है।

पीढियो ने प्रत्येक कला और विज्ञान का अध्ययन किया, उसकी उन्नति की तथा अपने प्रगतिशील परिश्रम द्वारा उसे पूर्णता की स्थिति तक पहुँचा दिया। किन्तु 'सरकार' विषयक विज्ञान अपनी प्रारम्भिक दिशा में ही पडा रहा। अमेरिकी क्रान्ति के आरम्भ काल तक 'सरकार' के सिद्धान्तो में कोई सुधार नही हुआ और उनके प्रयोग में भी कदाचित् ही कोई सुधार हुआ था। फ्रास को छोडकर यूरोप के अन्य देशों में अज्ञानता के सुदूर युगों में स्थापित सरकार के स्वरूप और पद्धतियाँ आज दिन भी प्रचलित हैं; उनकी पुरातनता ने सिद्धान्तो का स्थान ले लिया है। उनके मूल विषय में अथवा उनके अस्तित्व के अधिकारो का अनुसधान करना निषिद्ध है। यदि कोई यह पूछे कि यह कैसे हुआ तो उत्तर अत्यन्त सरल होगा कि वे सरकारें गलत सिद्धान्त पर स्थापित हैं और वास्तविकता का पता लगाने के प्रत्येक प्रयत्न को रोकने में अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करती हैं।

मानव-जाति पर प्रभाव डालने, उसे लूटने तथा दास बनाने के लिए सरकार-विषयक विज्ञान को जिस रहस्यावरण से ढँका गया है उसके बावजूद भी,

सरकार-विषयक जानकारी अत्यन्त बोधगम्य एव अल्पतम रहस्यपूर्ण है। यदि जांच-कार्य उचित बिन्दु से आरम्भ किया जाय तो अल्पतम योग्यता भी घाटे में न रहेगी। प्रत्येक कला अथवा विज्ञान का कोई मूल सिद्धान्त होता है जहाँ से उसका अध्ययन आरम्भ किया जाता है तथा जिसके द्वारा अध्ययन विषयक प्रगति में सहायता प्राप्त होती है। सरकार सम्बन्धी विज्ञान की चर्चा करते समय भी इसी पद्धति का अवलम्बन करना चाहिए।

इसलिए कुलीनतंत्र, प्रजातन्त्र, अल्पजनसत्तात्मक या राजतन्त्र आदि शासन-पद्धतियो के विभिन्न उपवर्गों की चर्चा करके विषय को आरम्भ में ही जटिल न बनाकर, अच्छा यह होगा कि हम सरकार के उन स्वरूपो की चर्चा करें, जिन्हे हम मूल भेद कह सकते हैं या जिनके अन्तर्गत सभी उपभेदो का बोध हो जायगा।

सरकार के मूल भेद केवल दो हैं—

(१) निर्वाचन और प्रतिनिधित्व पर आधारित सरकार।

(२) आनुवंशिक उत्तराधिकार पर आधारित सरकार।

सरकार के सभी स्वरूपो और पद्धतियो का समावेश उपर्युक्त दो भेदो के अन्तर्गत हो जाता है, क्योकि या तो वे निर्वाचन की पद्धति पर स्थापित होंगी अथवा आनुवंशिक उत्तराधिकार पर। जहाँ तक मिश्रित सरकार, जैसी सरकार हालैण्ड में थी और जो इगलैण्ड मे इस समय है, का प्रश्न है, उपर्युक्त वर्गीकरण में कोई अन्तर नही पडता है; क्योकि जब हम उसके भागो पर अलग-अलग विचार करते हैं तो वे या तो प्रतिनिधि हैं अथवा आनुवंशिक।

इसलिए सर्वप्रथम हमें उन दोनो प्रारम्भिक विभागो की प्रकृति की जाँच करनी चाहिए। यदि वे दोनो सैद्धान्तिक दृष्टि से समान सिद्ध होतें हैं, तो हम उनमे से किसे पसन्द करे यह केवल अपनी-अपनी पसन्द की बात होगी। यदि एक, स्पष्टतः दूसरे की अपेक्षा अधिक अच्छा है, तो वह अन्तर हमारे विकल्प का मार्ग-दर्शन करता है। किन्तु यदि उनमें से एक इतना गलत है कि उसे जीवित रहने का अधिकार नही है तो निर्णय स्वय हो जाता है; क्योकि जहाँ दो में से एक को चुनना आवश्यक है, वहाँ एक का निषेध अपने आप दूसरे का स्वीकार हो जाता है।

जो क्रान्तियाँ इस समय विश्व में फैल रही हैं, उनका उद्भव इसी वस्तु-

स्थिति में हुआ; और वर्तमान युद्ध मनुष्य के अधिकारों पर आधारित प्रतिनिधि-पद्धति तथा अपहरण पर आधारित आनुवंशिक-पद्धति के मध्य होने वाला संघर्ष है। जिसे राजतन्त्र और कुलीनतन्त्र कहते हैं, वे आनुवंशिक पद्धति के गौण तत्व या लक्षण हैं, और यदि वह पद्धति समाप्त हो जाय तो वे अपने आप समाप्त हो जायेंगे।

यदि राजतन्त्र और कुलीनतंत्र आदि शब्द न प्रयुक्त हों अथवा इनके स्थान में किन्ही अन्य शब्दों का प्रयोग किया जाय, तो भी सरकार की आनुवंशिक पद्धति में, यदि वह आरम्भ रहे, कोई परिवर्तन नही होगा। किसी भी नाम के अन्तर्गत यह पद्धति वैसी ही रहेगी, जैसी है।

वर्तमान युग की क्रांतियाँ प्रतिनिधि-पद्धति पर आधारित होने के कारण, आनुवंशिक-पद्धति के विरुद्ध अपना चरित्रगत वैशिष्ट्य निश्चित रूप से प्रकट करती हैं। अन्य कोई भेद सम्पूर्ण सिद्धांत को समाविष्ट नही कर पाता है।

अस्तु, विषय का सामान्य आरम्भ कर देने के पश्चात् अब मैं, सर्व प्रथम, आनुवंशिक-पद्धति का परीक्षण करूंगा; क्योंकि समय के विचार से यह पद्धति अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है। प्रतिनिधि-पद्धति वर्तमान युग का आविष्कार है। इसलिए कि मेरे मत के बारे में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न न हो सके, मैं इसी स्थल पर स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि रेखागणित में एक भी ऐसा सिद्धांत नही है जिसमें गणित सम्बन्धी सत्य इस सत्य से अधिक हो कि आनुवंशिक सरकार को अस्तित्व में रहने का कोई अधिकार नही है। इसलिए जब हम एक व्यक्ति से आनुवंशिक अधिकारों का प्रयोग छीन लेते हैं तो हम उससे यह छीन लेते हैं जिसे धारण करने का न तो उसे अधिकार था, न वह किसी कानून या प्रथा के द्वारा उसे प्राप्त हो सकता था, और न उसका प्राप्त हो सकना कभी सम्भव ही है।

आनुवंशिक-पद्धति के विपक्ष में अब तक जितने तर्क प्रस्तुत किये गये हैं, वे मुख्यतः उसकी मूर्खता तथा अच्छी सरकारों के कार्यों के लिए उसकी अयोग्यता पर आधारित रहे हैं। हमारे विवेक और कल्पना के सम्मुख इससे बढ़ कर मूर्खता और क्या प्रस्तुत हो सकती है कि एक राष्ट्र की सरकार—जैसा कि प्रायः होता है—एक ऐसे बालक के हाथों में पड़े जो निश्चित रूप से अनुभवहीन और प्रायः मूर्ख से कुछ ही अच्छा होता है। राष्ट्र के प्रत्येक प्रतिभासम्पन्न, चरित्रवान और प्रौढ़ व्यक्ति का यह अपमान है।

जिस क्षण हम आनुवंशिक-पद्धति पर तर्क आरम्भ करते हैं, उसी क्षण वह उपहासास्पद हो जाती है; मस्तिष्क में उसके विषय में केवल एक विचार उठने दीजिए, सहस्रो विचार उसका अनुगमन करेंगे। तुच्छता, शारीरिक या मानसिक दुर्बलता, बचपना, मतिक्षीणता, नैतिक चरित्र का अभाव सक्षेप में सभी गम्भीर अथवा हास्योत्पादक दोष एक साथ इस पद्धति को उपहासास्पद सिद्ध करते हैं। इस पद्धति के उपहास को पाठको की कल्पना पर छोड कर, मैं प्रश्न के अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण अश की चर्चा कर रहा हूँ; और वह यह है कि क्या इस प्रकार की पद्धति को बने रहने का अधिकार है।

इस बात की सतोषजनक जानकारी के लिए कि किसी वस्तु को बने रहने का अधिकार है, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि उसे उत्पन्न होने का अधिकार था या नही। यदि उसे पैदा होने का अधिकार नही था, तो स्पष्ट है कि उसे बने रहने का अधिकार भी नही है। आनुवशिक पद्धति किस अधिकार से आरम्भ हुई ? कोई व्यक्ति इस प्रश्न पर केवल विचार करना आरम्भ कर दे, और उसे पता चलेगा कि वह कोई भी सतोषजनक उत्तर नही पा सकता।

किसी व्यक्ति अथवा वश का, अपने को तथा अपनी सतानो को सर्वप्रथम, एक राष्ट्र का शासक बनाने तथा अपनी परम्परा स्थापित करने का अधिकार, ठीक वही अधिकार रहा जो रोबेस्पेर (Robespierre) को फ्रास में था। यदि रोबेस्पेर को कोई अधिकार नही था तो उपर्युक्त किसी व्यक्ति या वश को भी कोई अधिकार नही था; और यदि किसी व्यक्ति या वश को कोई अधिकार था, तो रोबेस्पेर को अधिकार क्यो नही था ? किसी वश में अधिकारगत श्रेष्ठता को—जिसके आधार पर वशपरम्परागत सरकारें आरम्भ हो सकती थी—ढूँढ निकालना असम्भव है। जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है, केपेट (Capet), रोबेस्पेर, मॅरट (Marat) आदि सभी एक धरातल पर हैं। यह अधिकार केवल एक का नही है।

यह विचार कि वंशपरम्परागत सरकार किसी एक वश के ऐकान्तिक अधिकार के रूप मे उत्पन्न नही हो सकती थी स्वतत्रता की दिशा में एक कदम है। दूसरी विचारणीय बात यह है कि क्या एक बार उत्पन्न हो कर समय के प्रभाव से यह अधिकार का रूप ले सकती है।

इसे स्वीकार करना मूर्खता को स्वीकार करना होगा; क्योकि यह या तो

समय को सिद्धांत के स्थान पर रखना हुआ, अथवा समय को सिद्धांत से श्रेष्ठ मानना हुआ। किन्तु वास्तविकता यह है कि सिद्धांत के प्रति समय का उतना ही सम्बन्ध और प्रभाव है जितना समय के प्रति सिद्धांत का। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व जो गलती आरम्भ हुई वह इस समय के लिए भी ऐसी गलती है मानो सहस्रो वर्षों का प्रमाण प्राप्त किये हुए है।

सिद्धांतो के लिए समय निरन्तर नवीन बना रहता है। सिद्धांतों पर समय का कोई प्रभाव नही पड़ता है; वह सिद्धांतो की प्रकृति एव गुणो में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं कर पाता है। किन्तु सहस्रो वर्षों से हमें क्या प्रयोजन है? हमारा जीवन-काल उसका एक अल्प अश है और जिस समय जीवन आरम्भ करते हैं, यदि उस समय किसी गलती का अस्तित्व देख लेते हैं, तो हमारे लिए वह गलती उसी समय आरम्भ होती है, और उसका विरोध करने का हमें वही अधिकार है जो तब होता यदि उस गलती का पूर्व अस्तित्व न रहा होता।

आनुवशिक सरकार किसी एक वश में प्राकृतिक अधिकार स्वरूप आरम्भ नही हो सकती थी और न तो आरम्भ होने के बाद ही समय द्वारा परम्परागत अधिकार प्राप्त कर सकती थी। इसलिए अब हमें यह देखना है कि क्या कानून के द्वारा, इस प्रकार की सरकार के निर्माण एव स्थापना का, जैसा कि इंगलैण्ड में हुआ है, अधिकार राष्ट्र को है या नही? मेरा उत्तर है—'नही' और इस उद्देश्य से बनाया गया कोई भी कानून या सविधान राष्ट्र के प्रत्येक तत्कालीन एवं सभी अनुगामी पीढ़ियों के अधिकारो के प्रति विश्वासघात है।

मैं क्रमशः इन दोनो पर अपना विचार व्यक्त करूंगा; पहले इस प्रकार के क़ानून बनाते समय उपस्थित अवयस्को के विषय में और तत्पश्चात् अनुगामी पीढ़ियों के बारे में।

एक राष्ट्र के अन्तर्गत सद्यःप्रसूत शिशु से लेकर आसन्न-मृत्यु वृद्ध पर्यन्त सभी अवस्थाओ के व्यक्ति आ जाते हैं। इनमें से एक अंश अवयस्क होगा और दूसरा वयस्क। साधारणतः अवयस्क सख्या में अधिक होते हैं, अर्थात् इक्कीस वर्ष से कम अवस्था वाले व्यक्तियो की संख्या इक्कीस वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों की संख्या से अधिक होती है।

मैं जिस सिद्धान्त की स्थापना करना चाहता हूँ उसके लिए यह संख्यागत अन्तर आवश्यक नही है, किन्तु इससे उस सिद्धान्त के औचित्य को बल अवश्य

मिलता है। यदि अवस्था में अधिक व्यक्तियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक हो, तो इस दशा में भी यह सिद्धान्त उतना ही ठीक होगा।

अवयस्को के अधिकार उतने ही दिव्य हैं जितने वयस्को के। उनमें अन्तर केवल अवस्थागत है। अधिकारो के विषय में उनमें कोई अन्तर नही है। आज जो अवयस्क है, वयस्क होने पर उन्हे विरासत के रूप में जो अधिकार प्राप्त होंगे, उन्हे अक्षुण्ण बनाये रखना चाहिए। अवयस्को के अधिकार वयस्को के पवित्र सरक्षण में रहते हैं।

अवयस्क अपने अधिकारो को सौंप नही सकता, और संरक्षक उसका अधिकार छीन नही सकता है। परिणामतः राष्ट्र के वयस्क व्यक्तियो को, जो इस समय कानून बनाने वाले हैं और जीवन की यात्रा में उनकी अपेक्षा थोड़े आगे हैं जो अभी अवयस्क हैं तथा जिनको कुछ ही दिनो के बाद स्थान देना होगा, आनुवशिक सरकार अथवा यदि स्पष्ट रूप से कहा जाय, शासको के आनुवशिक उत्तराधिकार की स्थापना करने का अधिकार नही है और न हो सकता है। यह एक ऐसा प्रयत्न है जो राष्ट्र के अवयस्को को कानून बनाने के समय उनके उन अधिकारो से वचित रखता है, जिन्हे वे वयस्क होने पर विरासत के रूप में पायेंगे; साथ-ही-साथ यह उन्हे एक ऐसी शासन-पद्धति के आधीन रख देने का प्रयास है जिसे अपनी आवश्यकता की स्थिति मे वे न तो अपनी स्वीकृति दे सकते हैं और न अस्वीकार कर सकते हैं।

यदि एक व्यक्ति जो इस प्रकार के कानून बनाने के समय अवयस्क है, कुछ वर्षों पूर्व पैदा हुआ होता ताकि वह कानून बनाने के समय इक्कीस वर्ष की अवस्था का होता, तो उस कानून का विरोध करने, उसके अत्याचारात्मक सिद्धान्त एवं औचित्य प्रकट करने और उसके विपक्ष में मत देने का उसका अधिकार सब प्रकार से मान्य होता।

इसलिए यदि कोई कानून उसे वयस्कता प्राप्त करने पर, उन्ही अधिकारों का प्रयोग करने से रोकता है जिनका प्रयोग करने का उसे अधिकार उस समय वयस्क रहने पर होता, तो निस्सन्देह यह एक ऐसा कानून है, जो, राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के, जो कानून बनाने के समय अवयस्क होगा—अधिकारो को छीननेवाला एवं समाप्त कर देनेवाला है और परिणामस्वरूप इस प्रकार के कानून को बनाने का अधिकार नही हो सकता है।

अब में अनुगामी पीढ़ियों के विचार से आनुवंशिक सरकार की चर्चा आरंभ कर रहा हूँ और यह दिखाने जा रहा हूँ कि इस विषय में, जैसा कि अवयस्कों के विषय में कहा जा चुका है, राष्ट्र को आनुवंशिक सरकार की स्थापना का अधिकार नहीं है।

राष्ट्र—यद्यपि उसका अस्तित्व निरन्तर है—सतत नूतनता की स्थिति में रहता है। यह कभी भी स्थिर नहीं रहता। प्रत्येक दिन नये-नये जन्म होते हैं; अवयस्क वयस्कता की ओर बढ़ते हैं और वृद्ध व्यक्ति रंगमंच से अंतर्धान होते रहते हैं। पीढ़ियों की इस सतत प्रवाहित धारा में किसी भी अंश को, अन्य की अपेक्षा अधिकारगत श्रेष्ठता नहीं है। यदि हम किसी भी श्रेष्ठता की कल्पना करें भी तो किस समय अथवा विश्व की किस शताब्दी में हम उस श्रेष्ठता की स्थापना करें? उसके लिए कौन-सा कारण निश्चित करें? किस प्रमाण पर उसे सिद्ध करें और किस कसौटी पर उसकी परख करें?

यदि हम थोड़ा विचार करे तो हमें यह ज्ञात होगा कि हमारे पूर्वज हमारे समान ही, केवल अपने जीवन भर के लिए अधिकारों के महान निःशुल्क क्षेत्र के उपभोक्ता थे। उन्हें उसका ऐकान्तिक स्वामित्व नहीं प्राप्त था और न हमें ही प्राप्त है। सभी युगों के सम्पूर्ण मानव-परिवार का इससे सम्बन्ध है। यदि हम अन्यथा सोचते हैं तो हम या तो दास हैं या अत्याचारी। यदि हम यह सोचते हैं कि हमें किसी पूर्व पीढ़ी को बाँधने का अधिकार था तो हम दास हैं और यदि हम यह सोचते हैं कि हमें अनुगामी पीढ़ियों को बाँधने का अधिकार है तो हम अत्याचारी हैं।

'पीढ़ी' शब्द यहाँ किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसे स्पष्ट करने का प्रयास करना कदाचित् विषयान्तर न होगा।

सामान्य शब्द के रूप में इसका अर्थ पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। पिता, पुत्र और पौत्र इत्यादि पृथक्-पृथक् पीढ़ियाँ हैं। किन्तु, जब हम उस पीढ़ी की चर्चा करते हैं, जिससे उन व्यक्तियों का बोध होता है जिन्हें कानूनी अधिकार प्राप्त है तथा जो उसी प्रकार की अनुगामी पीढ़ियों से भिन्न है, तो उस 'पीढ़ी' शब्द द्वारा उन सभी व्यक्तियों का बोध होता है, जो गणना के समय इक्कीस वर्षों के बीच की अवधि तक अधिकार में रहेंगी, अर्थात् उस पीढ़ी का अधिकार तब तक बना रहेगा जब तक अवयस्कों, जो उस समय तक वयस्क हो पायेंगे, की संख्या

पहली पीढी के शेष व्यक्तियो की सख्या की अपेक्षा अधिक न हो जायँ ।

'एक उदाहरण लीजिए; यदि फ्रास में, इस समय या किसी दूसरे समय चौबीस लाख आदमी हैं, तो बारह लाख पुरुष होंगे और बारह लाख स्त्रियाँ। बारह लाख पुरुषों में से छः लाख वयस्क, अर्थात् इक्कीस वर्ष की अवस्था के होंगे और छ. लाख अवयस्क। शासन का अधिकार उन छ. लाख वयस्को को होगा ।

किन्तु प्रत्येक दिवस कुछ-न-कुछ परिवर्तन प्रस्तुत करेगा। इक्कीस वर्षों में उन अवयस्को में से प्रत्येक, जो उस समय तक जीवित रहेगा, वयस्क हो जायगा, और जो पहले वयस्क थे, उनमें से अधिकाश अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुकेंगे। उस समय जीवित रहने वाले एव कानूनी अधिकार प्राप्त व्यक्तियो में बहुमत उन लोगो का होगा, जिन्हे इक्कीस वर्षों पूर्व कोई कानूनी अधिकार नही था। वे क्रमशः पिता और प्रपिता बन चलेंगे और अन्य इक्कीस वर्षों या इससे कुछ कम समय में अवयस्को की दूसरी पीढी, वयस्कता प्राप्त करके, उनका स्थान ग्रहण करेगी। भविष्य में क्रम इसी प्रकार चलता रहेगा।

यही स्थिति निरन्तर रहेगी। सभी पीढियाँ अधिकारो के विषय में समान है। इसलिए यह स्पष्ट है कि आनुवशिक 'सरकार' की स्थापना करने का अधिकार किसी एक पीढी को नही है, क्योकि वशपरम्परा के आधार पर 'सरकार' की स्थापना करना अर्थात् यह आदेश देना कि भविष्य में विश्व का शासन किस प्रकार होगा और कौन करेगा, एक प्रकार से अन्यो की अपेक्षा अपने अधिकार को श्रेष्ठ मान लेना है।

जहाँ तक अधिकार की बात है, प्रत्येक युग और प्रत्येक पीढी को प्रत्येक स्थिति में अपने लिए काम करने की वही स्वतन्त्रता है, और होनी चाहिए जो पूर्वगामी पीढी और युग को थी। मृत्यु के उपरात शासन करने की कल्पना और मिथ्याभिमान सर्वाधिक उपहासास्पद एवं क्रूर अत्याचार है। मनुष्य, मनुष्य की सम्पत्ति नही है; और न तो अनुगामी पीढ़ियाँ किसी एक पीढी की सम्पत्ति हैं।

इंगलैण्ड की ससद् का इतिहास इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो किसी भी देश में प्राप्त होने वाले सिद्धान्त के अभाव और विधान विषयक अज्ञानता के सर्वाधिक उदाहरण स्वरूप याद रखने योग्य है। घटना इस प्रकार है.—

सन् १६८८ ई० में इंगलैण्ड की संसद् ने विलियम और मेरी नामक दम्पत्ति को हालैण्ड से बुलाया और उन्हे इगलैण्ड की गद्दी पर बैठा दिया। इतना कर लेने के उपरान्त, उस संसद् ने विलियम और मेरी की सन्तानो को देश के शासन का अधिकार देने के अभिप्राय से एक क़ानून बनाया जो इस प्रकार है—"हम आध्यात्मिक और लौकिक कुलीन और लोक सभा के सदस्य, इंगलैण्ड की जनता के नाम पर अत्यन्त विनम्रता एवं विश्वास के साथ अपने को, अपने उत्तराधिकारियो को और भावी सन्तानो को सर्वदा के लिए, विलियम, और मेरी, उनके उत्तराधिकारियों तथा उनकी अनुगामी पीढियों के आधीन रखते हैं।" जैसा कि एडमण्ड बर्क ने उदधृत किया है, एक दूसरे अनुगामी क़ानून में, उपर्युक्त संसद् ने इगलैण्ड की तत्कालीन जनता के नाम पर, उस जनता को, उसके उत्तराधिकारियो और उसकी सभी अनुगामी पीढियो को, समय के अन्त पर्यन्त विलियम-मेरी, उनके उत्तराधिकारियो और उनकी सभी अनुगामी पीढ़ियो के साथ (कानून के बन्धन में) बाँधने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार के विधान बनाने वालो की अज्ञानता पर हँस देना ही पर्याप्त नही है, वरन् उनके सिद्धान्त विषयक अभाव की निन्दा करना आवश्यक है। सन् १७८६ ई० में फ्रांस की संविधान-सभा ने वही ग़लती की जो इंगलैण्ड की संसद् ने की थी; उसने उस वर्ष के सांविधानिक विधेयक के रूप में कैपेट (Capets) वंश में आनुवंशिक उत्तराधिकार को स्थापित करना स्वीकार किया।

इसे सर्वदा स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक राष्ट्र को वर्तमान समय में अपने इच्छानुसार अपना शासन करने का अधिकार है। किन्तु आनुवंशिक सरकार मनुष्यो की दूसरी पीढी का शासन करने के लिए है; और उसे जिनका शासन करना है, उनका या तो अस्तित्व ही नहीं है अथवा वे अवयस्क हैं। अत: उनके लिए इस सरकार की स्थापना करने के अधिकार का भी अस्तित्व नही है; और इस प्रकार के अधिकार को मान लेना सन्तानो के अधिकार के प्रति विश्वासघात है।

मैं आनुवंशिक उत्तराधिकार पर स्थापित सरकार की चर्चा यहीं समाप्त करके अब निर्वाचन और प्रतिनिधित्व द्वारा स्थापित सरकार की, जिसे संक्षेप में 'प्रतिनिधि सरकार' कह सकते हैं, चर्चा आरम्भ कर रहा हूँ।

अपवर्जनात्मक तर्क (Reasoning by exclusion) के अनुसार यदि

अशिष्ट, कभी-कभी उपहासास्पद और सर्वथा अनुचित है। यदि मताधिकार के लिए आवश्यक सम्पत्ति का परिमाण या मूल्य अधिक हुआ तो अधिकांश जनता मताधिकार से वर्जित हो जायगी और सरकार तथा उसका समर्थन करने वाले लोगो का विरोध करने के लिए सघटित होगी। चूँकि शक्ति वहुमत में रहती है, इसलिए वह ऐसी सरकार और उसके समर्थको को जब चाहे पदच्युत कर सकती है।

इस भय के निवारण हेतु, सपत्ति के अल्प परिमाण को मताधिकार की कसौटी निर्धारित करना स्वतन्त्रता का अपमानपूर्ण प्रदर्शन है। क्योकि इस प्रकार, स्वतन्त्रता आकस्मिक घटना और क्षुद्रता की वस्तु होगी। जब एक गर्भिणी घोडी भाग्यवश एक घोडा या खच्चर—जिसका मूल्य मताधिकार के लिए निश्चित धन के बराबर हो—पैदा करके अपने स्वामी को मताधिकार प्रदान कर सकती है, अथवा अपनी मृत्यु से अपने स्वामी से उसका मताधिकार छीन सकती है, तो इस अधिकार के मूल्य का अस्तित्व किसमें माना जायगा। जब हम यह सोचते है कि योग्यता के बिना सम्पत्ति को कई प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है, और बिना अपराध के उसे खोया जा सकता है, तो सपत्ति को अधिकार की कसौटी निर्धारित करने के विचार को हमें घृणित समझना चाहिए।

मताधिकार से वचित करना, उन वचित किये जाने वाले व्यक्तियो के नैतिक चरित्र के लिए कलक है। समाज के किसी भाग को अन्य भागो के विषय में इस प्रकार की व्यवस्था करने का कोई अधिकार नही है। कोई भी बाह्य परिस्थिति इसका औचित्य सिद्ध नही कर सकती। न तो सम्पत्ति नैतिक चरित्र का प्रमाण है, और न गरीबी नैतिक चरित्र के अभाव का प्रमाण है।

इसके विपरीत सम्पत्ति, प्रायः बेईमानी का अनुमान-सिद्ध प्रमाण है, और निर्धनता निर्दोषता का अस्वीकारात्मक प्रमाण है। इसीलिए, यदि अल्प या अधिक परिमाण में, सम्पत्ति को कसौटी निर्धारित करना है तो जिस साधन के द्वारा उसका अर्जन हुआ है, उसे भी कसौटी मानना चाहिए।

मताधिकार से अपवर्जन (Exclusion) केवल एक स्थिति में न्याय-सगत है, और वह यह है कि इसका प्रयोग उन लोगो के लिए दण्ड स्वरूप किया जाय जो अन्यो से इस अधिकार को छीन लेने का प्रस्ताव करे। प्रतिनिधियों

अधिकारो को छीनने में अपनी आर्थिक सम्पत्ति का उपयोग करता है, अथवा उस आर्थिक सम्पत्ति के कारण प्राप्त सामर्थ्य के बल पर अन्य की सम्पत्ति या अधिकारो को छीनने की बात सोचता है, वह अपनी सम्पत्ति का उपयोग अग्न्यास्त्रो के समान करता है, और यह उचित है कि उससे उसकी वह सम्पत्ति छीन ली जाय।

समाज में कुछ व्यक्तियों के संघ द्वारा, अन्यो को उनके अधिकारो से वंचित करने के लिए वैषम्य की सृष्टि की जाती है। जब कभी सविधान के किसी अनुच्छेद अथवा किसी कानून में यह निश्चित किया जाता है कि मत देने या निर्वाचन करने और निर्वाचित होने का:अधिकार केवल उन लोगो को होगा जिनके पास एक निश्चित परिमाण में संपत्ति होगी; तो जिनके पास उस परिमाण में सम्पति नही है, उन्हे अधिकार-वचित करने के लिए यह उन लोगो का संघटन है जिनके पास उस परिमाण में सम्पत्ति है। यह तो समाज के स्वतः निर्मित अंश के रूप में अपने तईं अन्यो को वंचित करने का अधिकार मान लेना हुआ।

यह मानी हुई बात है कि जो व्यक्ति अधिकार-साम्य का विरोध करते हैं, वे यह नही चाहते कि उन्हें अधिकार से वंचित किया जाय। इस स्थिति में 'कुलीन तन्त्र' (Aristocracy) उपहास की वस्तु ठहरती है। कुलीनों के मिथ्याभिमान को एक अन्य स्वार्थ-पूर्ण विचार से प्रोत्साहन प्राप्त होता है, और वह यह है कि 'अधिकार-साम्य' के विरोधी (अर्थात् कुलीन) सोचते हैं कि वे एक ऐसे सुरक्षित खेल में भाग ले रहे हैं जिसमें हानि का नही, वरन् लाभ का ही अवसर है। जिन अधिकारो का वे विरोध करते हैं यदि उनसे अधिक अधिकार उन्हे न प्राप्त हो सकें, तो कम-से-कम उतने अधिकार उन्हें मिलेंगे ही।

इस प्रकार का विचार उन सहस्रो व्यक्तियों के लिए प्राण-घातक सिद्ध हो चुका है, जिन्होने समान अधिकार से सन्तुष्ट न होकर अधिक के लिए प्रयत्न किया; और परिणाम यह हुआ कि उनके सभी अधिकार नष्ट हो गये तथा जिस अपमानजनक वैषम्य की स्थापना का उन्होने प्रयत्न किया उसका उन्होंने स्वयं अनुभव किया।

सम्पत्ति को मताधिकार की कसौटी बनाना सभी प्रकार से भयानक,

प्रारम्भिक साधन हैं—कृषक और निर्माणकर्त्ता; जबकि उन्हे अपनी उपयोगिता और समाज के सदस्य विषयक अपने अधिकार के कारण अपने महत्त्वों का बोध होता है, तो उसका पूर्ववत् शासन करना अब सम्भव नही है। जाल का पता जब एक बार लग जाता है तो उसकी पुनरावृत्ति नही की जा सकती है, और यदि फिर भी उसे करने का प्रयत्न किया गया तो वह प्रयत्न या तो उस जाल का उपहास होगा अथवा उसके विनाश का निमन्त्रण।

यह निश्चित है कि सम्पत्ति असमान होगी। उद्योग, प्रतिभागत श्रेष्ठता, प्रबन्ध-दक्षता, अत्यधिक उड़ाऊपन, सुअवसर तथा कुअवसर अथवा इनके साधन, निरन्तर सम्पत्तिगत विमषता की सृष्टि करते रहेगे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो धन से घृणा तो नही करते, किन्तु धन-प्राप्ति के साधन या कठोर परिश्रम को नत मस्तक होकर न तो स्वीकार करेंगे और न अपनी स्वतन्त्रता और आवश्यकता के अतिरिक्त धन के लिए व्याकुल होगे। दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें सभी प्रकार के साधनो द्वारा धन अर्जन करने की उत्कट आकाक्षा रहती है, जिनके जीवन का मुख्य लक्ष्य है धन की प्राप्ति और जो धर्म के समान धन की उपासना करते है। सम्पत्ति को ईमानदारी के साथ अर्जित करना चाहिए, अपराधपूर्ण ढग से उसका उपयोग नही होना चाहिए; किन्तु जब ऐकान्तिक अधिकारो के लिए इसे कसौटी बना दिया जाता है तो इसका उपयोग निरन्तर अपराधात्मक होता है।

ऐसी सस्थाओ में जो केवल आर्थिक हैं—जैसे बैक या वाणिज्य-सघ, उसके सदस्यों के अधिकार सम्पूर्णतः उनके द्वारा उस सस्था में लगायी गयी पूँजी पर आधारित होते हैं। उन सस्थाओ के शासन में पूँजीगत अधिकारो के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के अधिकारो का प्रतिनिधित्व नही होता। वे पूँजी के अतिरिक्त और कुछ नही जानती।

किन्तु प्रतिनिधि-पद्धति पर व्यवस्थित 'असैनिक-सरकार' रूपी सस्था की स्थिति इससे भिन्न है। इस प्रकार की 'सरकार' को प्रत्येक वस्तु और राष्ट्रीय समाज के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति की, चाहे उसके पास सम्पत्ति हो या न हो, जानकारी रहती है। इसलिए सिद्धान्तत प्रत्येक व्यक्ति और सभी प्रकार के अधिकारो का—सम्पत्ति को प्राप्त करने और उसे रखने का अधिकार जिन में से एक है, किन्तु सर्वाधिक आवश्यक नही है—प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

को निर्वाचित करने के लिए मत देने का अधिकार वह मौलिक अधिकार है, जिसके द्वारा अन्य सभी अधिकारों का रक्षण होता है।

इस अधिकार को छीन लेना मनुष्य को दासता की स्थिति में रख देता है। क्योंकि दासता का अर्थ है दूसरे की इच्छा के आधीन होना और वह, जिसे प्रतिनिधि के निर्वाचन में मताधिकार नही है, इसी स्थिति में है। इसलिए मनुष्यों के किसी वर्ग को मताधिकार से वंचित करने का प्रस्ताव सम्पत्ति-अपहरण के प्रस्ताव के समान ही अपराध-पूर्ण है।

अधिकार के साथ कर्तव्य-भावना का योग होना चाहिए। पारस्परिक क्रिया द्वारा अधिकार कर्तव्य हो जाते हैं। मैं जिस अधिकार का उपभोग करता हूँ, वह अधिकार दूसरो के उसी अधिकार की रक्षा करने के रूप में, मेरा कर्तव्य हो जाता है, और मेरे अधिकार की रक्षा करना उसका अपना कर्तव्य हो जाता है। जो व्यक्ति कर्तव्यो का उल्लघन करते हैं, न्यायतः उनका अधिकार जब्त हो जाना चाहिए।

यदि राजनैतिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो 'सरकार' की शक्ति और स्थायी सुरक्षा, उसको संभालने में अभिरुचि रखने वाले व्यक्तियो की संख्या की आनुपातिक है। इसलिए समानाधिकार के द्वारा सम्पूर्ण समाज में उस अभिरुचि को उत्पन्न करना सच्ची राजनीति है; क्योंकि अपवर्जन (Exclusion) भय पैदा करता है। मनुष्यो को मताधिकार से अपवर्जित करना सम्भव है, किन्तु अपवर्जन के विरुद्ध क्रान्ति करने के अधिकार से उन्हे अलग रखना असम्भव है, और जब सभी अधिकार छीन लिये जाते हैं तो क्रान्ति करने के अधिकार को पूर्ण बना दिया जाता है।

जब मनुष्यो को यह विश्वास दिलाया जा सकता था कि उन्हें कोई अधिकार नही है; अधिकार केवल मनुष्य के वर्ग विशेष के होते हैं या 'सरकार स्वयं' अपने अधिकार से अस्तित्व में है, उस समय अधिकारपूर्वक उनका शासन करना कठिन नही था। मनुष्यों की अज्ञानता और अन्धविश्वासपूर्ण शिक्षा ने इस दिशा मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

किन्तु जब कि, अज्ञानता दूर हो गयी है और उसीके साथ अन्धविश्वास भी मिट चला है, जबकि मनुष्य यह सोचते हैं कि प्रकृति स्वेच्छा से जिन सम्पत्तियों को पैदा करती है, उनके अतिरिक्त विश्व की सभी सम्पत्तियों के

के समय वहाँ के शान्त निवासियो से छीनी गयी थी। इतनी बडी रियासतो को सचाई के साथ प्राप्त करने की सम्भावना नही थी। यदि यह पूछा जाय कि उन रियासतों को किस प्रकार से प्राप्त किया गया तो उसका एकमात्र उत्तर होगा, अपहरण के द्वारा। इतना निश्चित है कि उन रियासतो को व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, कृषि अथवा अन्य किसी श्लाघ्य कार्य द्वारा नही प्राप्त किया गया था।

फिर उन्हे कैसे प्राप्त किया गया? 'कुलीन जन'? आपको अपने उद्भव पर लज्जा होनी चाहिए; क्योकि आपके पूर्वज चोर थे। वे अपने युग के राबेसपेर (Robespierres) और जैकोबिन (Jacobins) थे। डाका डालने के बाद उन्होंने काल्पनिक नामो और पदवियों के अन्तर्गत अपने वास्तविक नामों को छिपाकर, अपने अपमान का परिमार्जन करने का प्रयत्न किया। आततायियों का यही शाश्वत आचरण है।

जिस प्रकार सम्पत्ति ईमानदारी से प्राप्त किये जाने पर, अधिकारो की समानता द्वारा सर्वाधिक रूप से सुरक्षित रहती है, उसी प्रकार छल से प्राप्त होने पर उसकी सुरक्षा अधिकारो के एकाधिपत्य पर निर्भर रहती है। जिस व्यक्ति ने अन्य की सम्पत्ति का अपहरण किया है, उसका दूसरा प्रयत्न होगा उस अन्य व्यक्ति से सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकार रूपी शस्त्रो को छीन लेना। डाकू जब विधान बनानेवाला हो जाता है, तो वह अपने को सुरक्षित समझता है। इगलैण्ड की सरकार का वह अश, जिसे राज्य-सभा कहा जाता है, मूलतः उन लोगो से बना था जिन्होने वही लूट-कार्य किया था, जिसकी मैं चर्चा कर रहा हूँ। उन्होंने जिन सम्पत्तियो का अपहरण किया था उन्हें बचाने का यह एक सघटन था।

किन्तु 'कुलीन तन्त्र' (Aristocracy) के उद्भव-विषयक अपराध के अतिरिक्त, मनुष्य के नैतिक और प्राकृतिक चरित्र पर इसका हानिकर प्रभाव पड़ा है। दासता के समान यह भी मानव-शक्तियो को निर्बल बना देता है; क्योंकि जिस प्रकार दासता में झुका हुआ मस्तिष्क चुपचाप अपनी लचीली शक्ति खो बैठता है, उसी प्रकार जब मानव-मस्तिष्क का पोषण मूर्खता द्वारा होता है तो वह अपनी शक्तियों के प्रदर्शन के लिए असमर्थ होकर निर्बल पड जाता है। तुच्छ बातो में आनन्द लेनेवाले मस्तिष्क का महान होना असम्भव है। उद्देश्यों का बचपना मनुष्य को खा जाता है।

मनुष्य-शरीर की रक्षा सम्पत्ति-रक्षा की अपेक्षा दिव्यतर है। इसके अतिरिक्त; अपनी जीविका-प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का काम अथवा सेवा करने या अपने परिवार का पालन-पोषण करने की शक्ति प्रकृतितः सम्पत्ति है। उसके लिए वही सम्पत्ति है ; उसने उसे प्राप्त किया है और उसकी यह सम्पत्ति उसी प्रकार रक्षणीय है, जिस प्रकार उस शक्ति से रहित अन्य किसी व्यक्ति की बाह्य सम्पत्ति रक्षा की वस्तु हो सकती है।

मेरा यह विश्वास रहा है कि समाज के प्रत्येक भाग से यथासम्भव शिकायत के प्रत्येक कारण और हिंसा की प्रत्येक प्रवृत्ति को दूर करना सम्पत्ति की, वह अल्प हो या अधिक, सर्वाधिक सुरक्षा है ; और यह समानाधिकार के द्वारा ही सम्भव है। जब अधिकार को सुरक्षा प्राप्त होगी, तो परिणाम स्वरूप सम्पत्ति भी सुरक्षित रहेगी। किन्तु जब सम्पत्ति को असमान अथवा ऐकान्तिक अधिकारो का निमित्त बना दिया जायगा, तो सम्पत्ति रखने का अधिकार निर्बल पड जायगा तथा क्रोध एवं उपद्रव को उत्तेजना प्राप्त होगी। क्योंकि, यह विश्वास करना अप्राकृतिक है कि जिस सम्पत्ति के प्रभाव से समाज के अधिकारो को क्षति पहुँचती है उस समाज के अन्तर्गत वह सम्पत्ति सुरक्षित रह सकती है।

प्रकृति समय-समय पर अरिस्टाटल (Aristotle), सुकरात (Socrates) और प्लेटो (Plato) जैसे योग्य एव विश्वविख्यात असाधारण व्यक्तियो को उत्पन्न किया करती है। ये महानुभाव वास्तव में महान या कुलान थे। किन्तु जब सरकार कुलीन व्यक्तियो (Nobles) की निर्माण-शाला स्थापित करती है तो उसका यह कार्य बुद्धिमानो का निर्माण करने के कार्य जैसा ही मूर्खतापूर्ण है। सरकार के बनाये हुए सभी कुलीन नकली हैं।

'कुलीन' की सज्ञा को यदि केवल बचपना मान लिया जाय तो कदाचित् इसका अपमान कुछ कम हो जाय। हम प्रदर्शनो को निस्सार समझकर क्षमा कर देते हैं, उसी प्रकार पदवियो के प्रदर्शन को क्षमा कर सकते हैं। किन्तु 'कुलीनो' का मूल प्रदर्शन से बुरा है। उस वर्ग का उद्‌भव अपहरण के पेट से हुआ है। सभी देशों में प्रारम्भिक कुलीन लुटेरे थे और बाद के चाटुकार।

सभी लोग इस बात को जानते हैं कि इगलैण्ड (अन्य देशों में भी यही बात मिलेगी) में आज जो बडी-बड़ी रियासतें हैं, वे सभी विजय (Conquest)

आधार पर हम उस 'बिन्दु' का पता लगायेंगे जहाँ हमें रुकना है और जो एक ही देश के मनुष्यो के—जिनका कुछ ही अश स्वतन्त्र होगा—बीच अन्तर स्थापित करेगा।

यदि सम्पत्ति को कसौटी बनाया जाता है, तो यह स्वतन्त्रता के प्रत्येक नैतिक सिद्धात से पूर्णत. दूर चला जाना होगा; क्योकि तब तो अधिकार का सम्बन्ध केवल वस्तु से होगा, और मनुष्य उस वस्तु का केवल अभिकर्त्ता (Agent) होगा। इसके अतिरिक्त, सम्पत्ति को कसौटी बनाने का अर्थ है उसे झगडे का कारण बना देना। उसका परिणाम यह होगा कि सम्पत्ति अपने विरुद्ध युद्ध को उत्तेजना प्रदान ही नही करेगी, वरन् उसका औचित्य भी सिद्ध करेगी। मैं इस सिद्धात को मानता हूँ कि जिनके पास सम्पत्ति नही है, उनके अधिकारो को छीनने के लिए, जब सम्पत्ति का उपयोग किया जाता है, तो उसका वह उपयोग ऐसी स्थिति में अन्यास्त्रों के उपयोग के समान ही अन्यायपूर्ण उद्देश्य के लिए होता हैं।

जहाँ तक अधिकारो का सम्बन्ध है, प्रकृति के राज्य में सभी व्यक्ति समान हैं; किन्तु शक्ति का जहाँ तक प्रश्न है, सभी समान नही हैं। निर्बल व्यक्ति बलवान से अपनी रक्षा स्वय नही कर सकते। इस स्थिति में 'नागरिक-समाज' की सस्था का उद्देश्य शक्ति-साम्य स्थापित करना है, जो अधिकार-साम्य के समानान्तर हो तथा उससे उन अधिकारो की सुरक्षा हो। यदि उचित रूप से बनाये जायँ तो एक देश के क़ानूनो का यही उद्देश्य होता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए अपनी शक्ति की अपेक्षा कानून की शक्ति को अधिक सफल समझकर उसकी सहायता लेता है, और इसलिए सरकार और विधान के, जिसके द्वारा सभी लोग शासित होगे और न्याय प्राप्त करेंगे, निर्माण में सभी मनुष्यो का समान अधिकार होना चाहिए। अमेरिका और फ्रास के समान विशाल देशो और समाजो में, इस व्यक्तिगत अधिकार का उपयोग केवल निर्वाचन और प्रतिनिधित्व द्वारा हो सकता है; और 'प्रतिनिधि-सरकार' की यही से उत्पत्ति होती है।

अब तक मैंने अपनी चर्चा को केवल सिद्धान्त की बातो में सीमित रखा। सर्वप्रथम मैंने यह सिद्ध किया कि आनुवशिक सरकार को अस्तित्व विषयक अधिकार नही है, किसी भी अधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त पर इसकी स्थापना

मौलिक सिद्धांतों के चिन्तन द्वारा अपनी देशभक्ति को समय-समय पर नवीन बनाना सभी अवस्थाओं, विशेषकर क्रांति की दशा में आवश्यक है; और वह आवश्यकता तब तक बनी रहती है, जब तक सही विचार अभ्यास के द्वारा अपनी स्थापना स्वय नही कर लेते। वस्तुओ के मूल तक जाकर उनकी जानकारी प्राप्त करना, उन्हें ठीक रूप से समझना है और उनके उद्‌भव एव विकास-क्रम को सदैव ध्यान में रखने से हम उन्हे कभी भूल नही सकते।

अधिकारो के मूल का अन्वेषण इस बात को प्रकट करेगा कि अधिकार एक व्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्ति को अथवा मनुष्यों के एक वर्ग के द्वारा अन्य वर्ग को दिये गये दान नही हैं। पहला दाता कौन हो सकता था ? या किस सिद्धांत के अनुसार अथवा किस आधार पर उसे दान देने का अधिकार हो सकता था ?

'अधिकारो का घोषणा-पत्र' न तो घोषणा करनेवाले की सृष्टि है और न उनका दान। यह उस सिद्धांत का प्रकाशन है, जिस पर व्यक्तियों का अस्तित्व है; साथ-ही-साथ अधिकारो का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक नागरिक-अधिकार का आधार कोई-न-कोई प्राकृतिक अधिकार है, और मनुष्यो के बीच उन अधिकारों की पारस्परिक सुरक्षा का सिद्धात इसके अंतर्गत है। चूंकि मनुष्य के मूल के अतिरिक्त अधिकारों का कोई अन्य मूल ढूंढ निकालना असम्भव है, अतः यह स्पष्ट है कि अधिकारो का सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्वाधिकार से है, और इसलिए सभी मनुष्यो के अधिकार समान होने चाहिए।

अधिकारो की समानता स्पष्ट और सरल है। प्रत्येक व्यक्ति इसे समझ सकता है। अपने अधिकारो को समझने पर वह अपने कर्तव्यों को भी समझ सकता है; क्योंकि जहाँ सभी के अधिकार समान हैं, वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारो की सर्वाधिक सफल सुरक्षा के रूप में अन्यो के अधिकारो के रक्षण की आवश्यकता को पूर्णतः स्वीकार करेगा।

किन्तु यदि सविधान के निर्माण में, हम अधिकार-साम्य के सिद्धात से हट जाते हैं अथवा उसमें कुछ सशोधन करने का प्रयत्न करते हैं, तो हम आपत्तियों की एक ऐसी भूल-भुलैयां में पड़ जायेंगे, जहाँ से लौट आने के अतिरिक्त निकलने का कोई उपाय नही होगा। हमें कहाँ रुकना है ? अथवा किस सिद्धान्त के

द्वारा समाज का सघटन होता है, अनुसार बहुमत सबके लिए नियम बन जाता है और अल्पमत उस नियम की व्यावहारिक आज्ञाकारिता स्वीकार कर लेता है। यह बात अधिकार-साम्य सिद्धात के सर्वथा अनुकूल है ; क्योंकि पहली बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार है, किन्तु किसी को यह अधिकार नही हैं कि उसका मत शेष लोगो का शासन करे। दूसरी बात यह है कि पहले से यह तय नही रहता कि अमुक व्यक्ति का मत अमुक विषय के अमुक पक्ष में होगा ; कुछ विषयो पर वह व्यक्ति बहुमत में हो सकता है और कुछ विषयो पर अल्पमत में। अस्तु, जब एक स्थिति में वह अपने प्रति आज्ञाकारिता की आशा रखता है, तो उसी नियम के अनुसार दूसरी स्थिति में उसे अनुवर्तन करना चाहिए।

फ्रांस में क्रान्ति के समय जितने उपद्रव हुए, उन सबका उद्भव अधिकार-साम्य के सिद्धात के कारण नही, वरन् उस सिद्धान्त के उल्लघंन के कारण हुआ। अधिकार-साम्य के सिद्धान्त का बार-बार उल्लघन किया गया, वह भी बहुमत के द्वारा नही अल्पमत के द्वारा ; और उस अल्पमत में सम्पत्तिवान तथा सम्पत्तिहीन दोनो प्रकार के मनुष्य सम्मिलित थे। इसलिए अब तक के अनुभव के आधार पर भी सम्पत्ति, अधिकार अथवा चरित्र की कसौटी नही हो सकती।

कभी-कभी यह सम्भव है कि अल्पमत ठीक हो और बहुमत गलत ; किन्तु ज्योही अनुभव इसे सिद्ध कर देगा, उसी क्षण अल्पमत बहुमत की ओर बढेगा, और अधिकार-साम्य तथा मत-स्वातत्र्य की शान्त क्रिया द्वारा वह गलती स्वय ठीक हो जायगी। इसलिए किसी भी प्रकार से विप्लव का औचित्य सिद्ध नही हो सकता, और जहाँ अधिकार-साम्य तथा मत-स्वातन्त्र्य है, वहाँ विप्लव कभी भी आवश्यक नही हो सकता है।

इसलिए अधिकार-साम्य के सिद्धान्त को क्रान्ति और तत्परिणामस्वरूप सविधान का आधार मानते हुए, सविधान में सरकार के विभिन्न अवयवो की व्यवस्था किस प्रकार हो यह विषय मत की प्रभाव-सीमा के भीतर पड़ता है।

इस प्रकार के प्रश्न पर कई प्रकार की पद्धतियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं, और यद्यपि सर्वोत्तम पद्धति का निर्णय करने में अनुभव अभी भी अपर्याप्त है; किन्तु मैं सोचता हूँ कि उसने पर्याप्त रूप से यह निश्चित कर दिया है कि सबसे

नहीं हो सकती और यह सरकार सब सिद्धान्तो का उल्लंघन करती है। दूसरी बात जो मैंने स्पष्ट की वह यह है कि निर्वाचन और प्रतिनिधित्व-पद्धति पर स्थापित सरकार का मूल मनुष्य के प्राकृतिक और शाश्वत अधिकारो में है।

मनुष्य अपने इस अधिकार का उपयोग कई रूपों में कर सकता है। प्राकृतिक जीवन की स्थिति में अपना विधान वह स्वयं बना सकता है। छोटे-छोटे प्रजातंत्रीय देशो का, जहाँ कि कानून बनाने के लिए सभी लोग एकत्रित हो सकते हैं, मनुष्य विधान विषयक शक्ति के अपने अंश को स्वयं में रख सकता है और प्रतिनिधियो की 'राष्ट्रीय सभा' में उसका प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियो के निर्वाचन में वह अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है। किन्तु सभी दशाओ में अधिकार का मूल एक ही है। जैसा कि कहा जा चुका है अधिकार विषयक उपर्युक्त तीन प्रकार के उपयोगो में से प्रथम शक्ति में अपूर्ण है; दूसरा केवल छोटे-छोटे प्रजातन्त्रीय देशो में ही व्यवहार्य है, किन्तु अधिकार-प्रयोग का तीसरा प्रकार मानवीय सरकार की स्थापना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

सिद्धांत के बाद मत का प्रश्न उठता है और इन दोनो का अंतर जान लेना आवश्यक है। मनुष्यो के अधिकार समान होने चाहिए। यह मत की बात नहीं, वरन् अधिकार की बात है और परिणामतः सिद्धांत की बात है; क्योकि मनुष्य अपने अधिकारों को आपस में एक दूसरे से दानस्वरूप प्राप्त नही करता, वरन् वे उसके निजी अधिकार हैं। समाज संरक्षक हैं, न कि दाता। अमेरिका और फ्रांस के समान विशाल समाजो में सरकार विषयक व्यक्तिगत अधिकार का उपयोग निर्वाचन और प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त अन्य किसी रूप से नही हो सकता। इसलिए उस स्थिति में जब कि सरल प्रजातन्त्र अव्यवहार्य है, प्रतिनिधि-पद्धति ही एक मात्र सरकार-पद्धति है, जो सिद्धांतानुकूल है।

किन्तु सरकार-यन्त्र के विभिन्न पुर्जो की व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिए, यह मत का विषय है। यह आवश्यक है कि सभी भाग अधिकार-साम्य के सिद्धांत के अनुकूल हो। जब तक इस सिद्धांत का श्रद्धापूर्ण अनुसरण होता रहेगा तब तक कोई भी तात्विक त्रुटि नही हो सकती, और सरकार के उस अंश में की गयी गलती चिरकाल तक टिक नही सकती जो मत की प्रभाव-सीमा के भीतर पड़ता है।

मत के सभी विषयो में सामाजिक समझौते या उस सिद्धांत के, जिसके

स्थिति में शरीर मस्तिष्क के आधीन रहता है, क्योंकि दो-दो सार्वभौम प्रभुत्वों की, एक कानून बनाने वाला और दूसरा कानून का निष्पादन करने वाला, कल्पना करना असम्भव है।

कार्यपालिका-शक्ति को यह निर्णय करने का अधिकार नहीं है कि वह काम करे या न करे; क्योंकि कानून जिस काम की आज्ञा देता है वह उसके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकती है; कानून के अनुसार काम करना उसके लिए अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट है कि कार्यपालिका-विभाग में शासन-सम्बन्धी वे सभी विभाग सम्मिलित हैं, जो कानून का निष्पादन करते हैं और जिनमें न्याय-विभाग (Judiciary) प्रमुख है।

किन्तु मानव-जाति ने 'कानूनो' के निष्पादन के अधीक्षण तथा यह देखने के लिए कि कानूनो का निष्पादन विश्वासपूर्वक ढग से हो, एक प्रकार के प्राधिकार को आवश्यक माना है। कानूनो के शासकीय निष्पादन के साथ इस अधीक्षण-अधिकार का योग स्थापित करने के कारण हम कार्यपालिका-शक्ति से घबराते हैं। 'सयुक्त राष्ट्र' अमेरिका के सभी शासन-विभाग, जिन्हे कार्यपालिका-विभाग कहा जाता है, कानून के निष्पादन का अधीक्षण करनेवाले शासन-विभाग के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है, और वे विधान-मण्डल से इतने अधिक स्वतन्त्र हैं कि वे केवल कानूनो के द्वारा उसके विषय का ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा विधान-मण्डल के द्वारा अन्य किसी माध्यम से उनका नियन्त्रण अथवा निर्देशन नही हो सकता।

तर्कसगत एव अनुभवसिद्ध कुछ ऐसी बातें हैं, जो इस विषय का निर्णय करने में हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती हैं। पहली बात यह है कि किसी व्यक्ति को असाधारण अधिकार नही देना चाहिए; क्योकि इसके अतिरिक्त कि वह इसके दुरुपयोग के प्रलोभन में पड सकता है। इसके द्वारा राष्ट्र भर में सघर्ष और विप्लव को उत्तेजना मिलेगी। दूसरी बात, व्यक्तियो के हाथो में चिरस्थायी अधिकार नहीं देना चाहिए, चाहे उनकी सख्या कुछ भी हो। समय-समय पर किये गये परिवर्तनो के कारण होनेवाली असुविधाएँ, उन व्यक्तियो के चिरकाल तक अधिकार मे रहने के कारण उत्पन्न होने वाले सकट की अपेक्षा कम भयकारक है।

बुरी पद्धति कौन है। सर्वाधिक बुरी पद्धति वह है, जो अपने विचारो एवं निर्णयों में, एक व्यक्ति के साहस और उत्कट भावो के वशीभूत है। सम्पूर्ण विधान-मण्डल केवल एक सभा में समाविष्ट होता है तो वह समूह के रूप में इकाई है। विचार की सभी स्थितियो में नियन्त्रण रखना आवश्यक है। इसलिए इसकी अपेक्षा कि सभी प्रतिनिधि एक साथ बैठकर किसी विषय पर विवाद करे, अच्छा यह होगा कि प्रतिनिधियो को चिट्ठी डालकर दो भागो में बाँट दिया जाय ताकि वे दोनों एक दूसरे का विचार और सशोधन कर सकें।

प्रतिनिधि-सरकार का स्वरूप विशेष में सीमित होना आवश्यक नहीं है। जिन स्वरूपो के अन्तर्गत इसकी स्थापना हो सकती है उन सबके मूल में एक ही सिद्धान्त है। मनुष्यो का अधिकार-साम्य वह मूल है, जहाँ से सरकार-वृक्ष उत्पन्न होता है। शाखाओ की व्यवस्था वर्तमान मतो अथवा भावी अनुभवो के सर्वोत्तम निर्देश के अनुसार होगी। जहाँ तक ब्रिटेन की 'राज्य-सभा, जिसे चेस्टरफील्ड 'असाध्यो का अस्पताल' कहते है, भ्रष्टाचार से उत्पन्न होने वाली अप्राकृतिक 'मास-ग्रन्थि' है। जनता के अधिकार से उत्पन्न विधान-मण्डल की शाखाओ में से किसी एक, और उपर्युक्त राज्य-सभा के बीच का सादृश्य, मानव-शरीर के प्राकृतिक अग और नासूरयुक्त मांस-ग्रन्थि के बीच स्थित सादृश्य की अपेक्षा अधिक नही है।

सरकार के कार्यपालिका-विभाग की चर्चा के आरम्भ में ही हम 'कार्य-पालिका' (Executive) शब्द का अर्थ निश्चित कर लेना आवश्यक है।

शक्ति को केवल दो वर्गों में रखा जा सकता है, अर्थात् कानून बनाने की शक्ति और उसे निष्पादित करने की शक्ति। प्रथम प्रकार की शक्ति, मनुष्य की उन शक्तियो के तुल्य है जो इस बात पर विचार करती है और निर्णय करती है कि हमें क्या करना है। दूसरे वर्ग की शक्ति मनुष्य की उन ऐन्द्रिक शक्तियों के समान हैं, जो उस निर्णय को निष्पादित करती है।

यदि पहली शक्ति निर्णय करती है और दूसरी उसे निष्पादित नही करती तो, यह निर्बलता की स्थिति हुई। यदि दूसरे प्रकार की शक्ति प्रथम प्रकार की शक्ति के पूर्व-निर्णय के बिना ही कार्य करती है तो यह उन्माद की स्थिति होगी। इसलिए कार्यपालिका-विभाग वास्तव में एक कार्यकारी विभाग है तथा विधान-मंडल के आधीन है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्वास्थ्य मे

और न अधिकार, स्थापना हुई। सदाचार और अपराध आकस्मिक घटनाओं पर निर्भर थे; और जो कभी देशभक्ति थी, वही बाद में विश्वासघात हो गयी।

सविधान के अभाव के नाते ही यह सब हुआ, क्योकि सविधान की प्रकृति और इच्छा दलगत शासन को रोकने की होती है। इसी लिए सविधान ऐसे सामान्य सिद्धात की स्थापना करता है जो दल की प्रवृत्ति और शक्ति को सीमित और नियन्त्रित रखता है, और जो सभी दलो को आदेश देता है—'तुम सब इस सीमा तक जा सकते हो, इससे आगे नही, किन्तु सविधान के अभाव मे मनुष्य पूर्णतः अपने दल की ओर देखते हैं, और इसके बदले कि सिद्धात दल का शासन करे, दल स्वय सिद्धात का शासन करने लगता है।

दण्ड देने की उत्कट इच्छा स्वतन्त्रता के लिए सर्वदा घातक है। इसके कारण मनुष्य सर्वोत्तम कानूनो के अभिप्राय को बढा-चढा कर अथवा गलत ढंग से स्पष्ट करते हैं। जो अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना चाहता है, उसे अपने शत्रु को भी अत्याचार से बचाना चाहिए। क्योकि यदि वह अपने इस कर्तव्य का उल्लघन करता है, तो वह एक ऐसा पूर्व दृष्टान्त स्थापित करता है जिसका कुपरिणाम उसे ही भोगना पड़ेगा।

पेरिस, जुलाई १७९५ ई०

टॉम पेन

स्वतन्त्रता के कुछ रक्षा-साधनों की चर्चा करने के उपरान्त, मैं इस विषय को समाप्त करूँगा; क्योंकि स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही आवश्यक नही है, उसका रक्षण भी उतना ही आवश्यक है।

सर्वप्रथम स्वातन्त्र्य-स्थापना का मार्ग निर्मित करने के लिए निरंकुश शासन को विनष्ट करने में प्रयुक्त साधनो, और निरंकुश शासन की समाप्ति के बाद उपयोग में लाये जानेवाले साधनो के भेद को जान लेना आवश्यक है।

उपर्युक्त दो प्रकार के साधनो में से प्रथम प्रकार के साधनो का औचित्य आवश्यकता द्वारा सिद्ध होता है। वे साधन सामान्यतः विप्लव हैं; क्योंकि जब तक निरकुश सरकार किसी देश में स्थापित है तब तक किसी भी अन्य साधन का उपयोग कदाचित् ही सम्भव है। यह भी निश्चित है कि क्रान्ति के आरम्भ में क्रान्तिकारी दल शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग करता है, जो सिद्धान्त की अपेक्षा, परिस्थितियो द्वारा अधिक सचालित होता है। यदि इस प्रकार का प्रयोग बराबर होता रहेगा तो स्वतन्त्रता की स्थापना कदापि नही हो सकती है, और यदि उसकी स्थापना हो भी गयी तो वह शीघ्र ही विनष्ट कर दी जायगी। क्रान्ति के समय इस प्रकार की आशा नही करनी चाहिए कि सभी व्यक्ति एक ही समय अपना मत बदल सकते हैं।

अब तक ऐसा कोई सत्य अथवा सिद्धान्त नही रहा है, जो इतने निर्विरोधात्मक रूप से स्पष्ट रहा हो कि सभी लोगो ने उसमें एक साथ ही विश्वास कर लिया हो। किसी सिद्धान्त की अंतिम स्थापना के लिए समय और बुद्धि को परस्पर मिलकर कार्य करना चाहिए। इसलिए जो लोग किसी सिद्धान्त या मत की सत्यता में अन्यो की अपेक्षा अधिक शीघ्रता के साथ विश्वास कर लेने में सक्षम हैं, उन्हें चाहिए कि वे उन लोगो को पीड़ित न करें, जिन्हें उस सत्यता को समझने में विलम्ब लगता है। क्रान्तियो का नैतिक सिद्धान्त है समझाना, न कि नष्ट करना।

यदि दो वर्षों पूर्व संविधान बना होता, जैसा कि होना चाहिए था, तो मेरे मतानुसार उन हिंसाओ का निवारण हो पाता, जिन्होंने उस समय फ्रांस को बर्बाद किया और क्रांति के चरित्र को क्षति पहुँचायी है। उस स्थिति में, राष्ट्र एकता के बन्धन में होता और प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्य का ज्ञान होता। किन्तु इसके बदले, एक क्रांतिकारी सरकार की, जिसका न कोई सिद्धांत था